Volume I, E - Journal
Jan. to March 2015

Reg. No. MPHIN/28519/12/1/2012-TC
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 0.715 (2014)

Naveen Shodh Sansar

(An International Multidisciplinary Refereed Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

अनुक्रमणिका/Index

01. अनुक्रमणिका /Index 02
02. क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 04/05
03. निर्णायक मण्डल 06
04. प्रवक्ता साथी........ 08
05. सामाजिक मूल्य एवं उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्ध (डॉ. आलोक कुमार सक्सेना, डॉ. मंजू सक्सेना) 10
06. सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में वर्तमान मानवीय व्यथा (डॉ. मंजू सक्सेना, डॉ. अनूप सक्सेना) 12
07. अधिकार प्राप्ति का ब्रह्मास्त्र-सूचना का अधिकार अधिनियम-2005(डॉ. केशव मणि शर्मा) 14
08. संगीत चिकित्सा एक वैज्ञानिक पद्यति (डॉ. श्रीपाद् आरोणकर) 18
09. निमाड़ में राम भक्ति शाखा के संत दीनदास (डॉ. मधुसूदन चौबे) 20
10. निमाड़ में सगुण पथ के पथिक संत फकीरानाथ (डॉ. मधुसूदन चौबे) 22
11. जैव मण्डल में कार्बन - उत्सर्जन की भूमिका (डॉ. दिवाकर प्रसाद चतुर्वेदी) 24
12. शक्तिशाली केन्द्र की अवधारणा (डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आर्य, डॉ. शीला आर्य) 27
13. परमारकालीन मुद्राएँ (डॉ. शेखर ब्रम्हने) 29
14. जीवन का लक्ष्य : समाज सेवा (डॉ. अनिता दुबे) 32
15. स्वतंत्रता के पश्चात् देश के आर्थिक विकास में कृषि का योगदान (डॉ. विजय प्रकाश मिश्रा) 34
16. राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में चित्रित नारी की समस्याएँ (नरबू डूमा) 37
17. श्रेष्ठ संस्कारों के निर्माण में उच्च शिक्षा की भूमिका (डॉ. कांति पचौरी) 39
18. घरेलू जल शोधन के प्रति पारिवारिक रुझान - ग्वालियर शहर के विशेष संदर्भ में (कंचन दुबे) 41
19. प्राथमिक एवं माध्यमिक शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर का तुलनात्मक मूल्यांकन (अर्जुमन बानो, डॉ. मंजू दुबे) 44
20. राजनीति और धर्म-महात्मा गांधी के विचारों के संदर्भ में (डॉ. नितिन सहारिया) 47
21. भारत में 1857 से पूर्व अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष (डॉ. नितिन सहारिया) 50
22. हड़प्पा सभ्यता और सरस्वती नदी (डॉ. नितिन सहारिया) 52
23. Faculty Retention In Private Commerce Colleges, Indore (Dr. Abha Singh, Pallavi Mane) 55
24. Human Resource Accounting Practices at Infosys (Yagna Joshi) 59
25. Economic Growth And Role of Legislation (Dr. Prabhakar Pandey, J.K. Patel) 61
26. Training Needs of Non Governmental Organizations In Kota Block (Jobert V Joseph, Lovegy Pappachan) 63
27. Jeans instability of Hall plasma under the influence of Suspended particles (V.K. Ojha, D.L. Sutar, R.K. Pensia, N.K. Dabkara) 65
28. The Best Approach To Environmental Management Is An Integrated Approach For Environment Problem & its Effect (Dr. Kanti Pachori) 68
29. Symbolism in the poetry of W.B. Yeats (Dr. Pratibha Rajpoot) 72
30. भारत और वैश्वीकरण - सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भ (डॉ. उमेद प्रसाद विश्वकर्मा) 74
31. मनुष्य के जीवन मे जैव विविधता का महत्व (डॉ. दयाराम साहू) 78
32. आर्थिक विकास में कृषि जैव विविधता का महत्व (डॉ. दयाराम साहू) 81
33. कोल इण्डिया लिमिटेड में प्रशिक्षण की भूमिका (डॉ. दीपचंद भावंरकर) 85

34. कार्यस्थल पर अच्छे वातावरण का महत्व कोल इण्डिया लिमिटेड के संदर्भ में (डॉ. दीपचंद भावंरकर) 87
35. जनकल्याणकारी योजनाओं के प्रभावों का मूल्यांकन (विश्लेषणात्मक अध्ययन) (डॉ. राजेश कुमार लोखण्डे) .. 89
36. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ और कमियाँ (डॉ. राजेश कुमार लोखण्डे) 92
37. प्रसिद्ध कहानियों पर बनी हिन्दी फिल्मों का आकलन (डॉ. मजीद कुरैषी) 94
38. सामाजिक चेतना के कारकों के निर्धारण में वैश्वीकरण का प्रभाव (डॉ. उमेद प्रसाद विश्वकर्मा) 99
39. छत्तीसगढ़ की औद्योगिक नीतियों का जनजातियों पर प्रभाव - एक अध्ययन (जैनेन्द्र कुमार पटेल) 104
40. Agonies of the times author lived in and the subsequent manifestation of violence 106
in the novels of Ernest Hemingway (Haroon Bashir Kar)
41. Human Resource Information System:An Innovative Strategy for Human Resource 108
Management (Dr. Aalok Kumar Yadav)
42. महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा का समालोचनात्मक परिप्रेक्ष्य (डॉ. बी. के. गुप्ता) 111
43. गैरतगंज ब्लाक में कृषि का निदानात्मक अध्ययन (रत्नेश नारायण श्रीवास्तव) 113
44. Stress Management (Dr. Anita Dani) 115
45. भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी एवं सहयोग की भूमिका (डॉ. आराधना शुक्ला, निधि श्री).............. 117
46. भारत में बचत और विनियोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. स्वाति शर्मा)... 119
47. आजादी की हठ ठा. प्रतापसिंह बारहठ (डॉ. मनोज दाधीच).. 120
48. Women Empowerment (Sudha Jain).. 123
49. नशा और पारिवारिक जीवन (डॉ. पुनीता चोर्डिया) 126
50. संविधान व संविधानवाद: सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में (डॉ. शिप्रा राठौड़) 129
51. Sarojini Naidu: Poetic Craftsmanship in Indian Tradition (Dr. Jatinder Kohli) 134
52. राजस्थान में लोक सन्त परम्परा का समाज पर प्रभाव (डॉ. मन्जू गुप्ता) 137
53. जन संचार साधन एवं जनजातीय समाज (डॉ. सुनीता शर्मा) 140
54. Levels Of Demographic Development In Western Rajasthan (A comparative study 142
from 1981 to 2001) (Dr. B.L.Jat)
55. राजस्थानी एवं अवधी के जन्म से यज्ञोपवीत तक के लोकगीतों का तुलनात्मक विवेचन(डॉ. विनीता कौशिक) .. 146
56. Psychoanalytic Study of the Female Protagonists in the Select Works of Anita Desai 149
(Ms. Savita Verdia)
57. विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में योग की भूमिका (समरजीत सिंह) 151
58. स्वामी दयानन्द का हिन्दी व नारी जागरण और भारतेन्दु युग (दत्तात्रेय गौतम) 153
59. A Study of Relationship Between Over Buying from Malls and Financial Distress 158
(Nalini Udaram Lambat)
60. एलोरा गुफा चित्रों का सौन्दर्य (डॉ. निशा गुप्ता).. 162
61. मादक द्रव्यों का सेवन एक मनौवेज्ञानिक समस्या (डॉ. सरिता माथुर) 164
62. भारत की सामाजिक परम्पराओं मे परिवर्तन (डॉ. हरिचरण मीना) 166
63. Problems in Adoption of Improved Agro-Techniques of Mustard Crop by the Farmers 170
of Pisagan Panchayat Samiti Block in Ajmer District (Dr. Govind Prakash Acharya)

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National)

मानद्

(01) डॉ. मनीषा ठाकुर .... फुल्टन कॉलेज, एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका

(02) श्री अशोककुमार .... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम

(03) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी .... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल

(04) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा .... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

(05) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव .... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत

(06) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. .... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

(07) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. .... (पूर्व) संकायाध्यक्ष, वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत

(08) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे .... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत

(09) प्रो. डॉ. संजय भयानी. .... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत

(10) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम .... अध्यक्ष, वाणिज्य, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत

(11) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत

(12) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा .... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत

(13) प्रो. डॉ. संजय खरे .... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत

(14) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय .... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत

(15) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा .... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत

(16) प्रो. अखिलेश जाधव .... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत

(17) प्रो. डॉ. कमल जैन .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत

(18) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से .... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत

(19) प्रो.डॉ. वन्दना जैन .... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

(20) प्रो. डॉ. हरदयाल अहिरवार .... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत

(21) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी .... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत

(22) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव .... अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत

(23) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत

(24) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया .... प्राध्यापक, वनस्पति, टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत

(25) प्रो. डॉ. विवेक पटेल .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत

(26) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी .... प्राध्यापक, वाणिज्य, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

(27) प्रो. डॉ. आर.के. गौतम............ प्राध्यापक ,वाणिज्य, शासकीय मानकुंवर बाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत

(28) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा .... प्राध्यापक, वाणिज्य एवं प्रबंध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत

(29) प्रो. डॉ. आर.पी. सहारिया .... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय जे.एम.पी. महाविद्यालय तख्तपुर जिला,बिलासपुर (छ.ग.) भारत

(30) प्रो. डॉ. गायत्री वाजपेयी .... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत

(31) प्रो. डॉ. अविनाश शेन्द्रे .... विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र, प्रगति कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, डोम्बीवली, मुम्बई (महाराष्ट्र) भारत

(32) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता .... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्वविद्याय, इंदौर (म.प्र.) भारत

(33) प्रो.डॉ. बी.एस. मक्कड़ .... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

(34) प्रो.डॉ. पी.पी. मिश्रा .... विभागाध्यक्ष, गणित, छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना, (म.प्र.) भारत

(35) प्रो.डॉ. सुनील कुमार सिकरवार.... प्राध्यापक, रसायन, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत

(36) प्रो.डॉ. के.एल. साहू................ प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

(37) प्रो.डॉ. मालिनी जॉनसन .... प्राध्यापक, वनस्पति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

(38) प्रो.डॉ. विशाल पुरोहित .... एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.) भारत

****

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव..........प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत

(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत ....निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत

(03) प्रो. डॉ. संजय जैन ....सहायक नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत

(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी ....प्राचार्य, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत

(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय ....प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्ता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

(06) प्रो. डॉ. अशोका श्रीवास्तव.......प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

(07) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल ....प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत

(08) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर ......प्राचार्य, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

(09) प्रो. डॉ. मंगल मिश्र ....प्राचार्य, श्री क्लॉथ मार्केट, कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

(10) प्रो. डॉ.आर.के. भट्ट ....प्राचार्य, शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

(11) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा ....प्राचार्य एवं संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा (म.प्र.) भारत

(12) प्रो. डॉ. टी.एम. खान ....प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला-धार (म.प्र.) भारत

(13) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड ....संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

(14) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी...........अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत

(15) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल ....अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत

(16) प्रो. डॉ. मंजु दुबे....................संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत

(17) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी ....प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

(18) प्रो. डॉ. के.एल. जाट..............प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, भौतिकी विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

(19) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव ....प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजनीति विभाग शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला-रतलाम (म.प्र.) भारत

(20) प्रो. डॉ. नटवर लाल गुप्ता ....प्राचार्य, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

****

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

विज्ञान संकाय

गणित:- .... **(1) प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता,** संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित**, शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(2) प्रो.डॉ. रवि कटारे, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह** अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायन:- .... **(1) प्रो. डॉ. मनमीत कौर मक्कड़,** शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

वनस्पति:- .... **(1) प्रो. डॉ. सुचिता जैन,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)
(2) प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकी:- .... **(1) प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा,** एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)
(2) प्रो. डॉ. अमृता खत्री, माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या,** शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायन:- .... **(1) डॉ. कंचन डींगरा,** शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. आर.एस. रघुवंशी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. सुयश कुमार, शासकीय आदर्श महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञान:- .... **(1) डॉ. एच.जी. वरूधकर,** आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

वाणिज्य संकाय

वाणिज्य :- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.के. जैन,** शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. शैलेन्द्र भारल , शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

प्रबंध एवं व्यवसाय प्रशासन संकाय

प्रबंध :- .... **(1) प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी**, अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. आनन्द तिवारी , शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

मानव संसाधन:- .... **(1) प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी**, पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

व्यवसाय प्रशासन:- .... **(1) प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा ,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

विधि संकाय

विधि:- .... **(1) प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा,** प्राचार्य, शासकीय माधव विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

कला संकाय

अर्थशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.सी. रांका,** श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. अंजना जैन, एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.)

राजनीति:- .... **(1) प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अनिल जैन, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. सुलेखा मिश्रा, मानकुंवर बाई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

दर्शनशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

समाजशास्त्रः- .... (1) **प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. इन्दिरा बर्मन ,** शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(4) **प्रो. डॉ. उमा लवानिया ,** शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला-सागर (म.प्र.)

हिन्दीः- .... (1) **प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(2) **प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला,** वनस्थली विद्यापीठ (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. कला जोशी,** श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

अंग्रेजीः-......................... (1) **प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. अजय भार्गव,** शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. मंजरी अग्निहोत्री,** शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

संस्कृतः- .... (1) **प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंजबासौदा जिला विदिशा (म.प्र.)

इतिहासः-....................... (1) **प्रो. डॉ. नवीन गिडियन,** शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोलः- .... (1) **प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. अर्चना भार्गव,** शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

मनोविज्ञानः- .... (1) **प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** प्राचार्य, शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. सरोज कोठारी,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकलाः- .... (1) **प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव,** महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीतः- .... (1) **प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. श्रीपाद अरोणकर,** राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.)

****** गृह विज्ञान संकाय ******

आहार एवं पोषण विज्ञानः- .... (1) **प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. मधु गोयल,** स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. संध्या वर्मा,** शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकासः-................. (1) **प्रो. डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. आभा तिवारी,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंधः- ... (1) **प्रो. डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. नम्रता अरोरा,** वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

****** शिक्षा संकाय ******

शिक्षा .... (1) **प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) **प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर,** प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव,** बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

****** शारीरिक शिक्षा संकाय ******

शारीरिक शिक्षा .... (1) **प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

****** ग्रन्थालय विज्ञान संकाय ******

ग्रन्थालय विज्ञान .... (1) **डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रवक्ता साथी (मानद्)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत ....ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर ....शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी ....शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डॉ. मनोज महाजन ....शासकीय महाविद्यालय, सोनकच्छ, जिला देवास (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा ....कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला- नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ. एस.पी. पंवार ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षितिज पुरोहित ....जैन कला-वाणिज्य-विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार ....शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा ....शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक ....शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान............................शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ. गेंदालाल चौहान............................शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र ....शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन ....शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. कमला चौहान ....शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. डॉ.आभा दीक्षित ....शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी ....शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी ....स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. अनिता गगराड़े............................शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय पंडित ....शासकीय एम.जे.बी. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. रामबाबू गुप्ता ....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. अंजना सक्सैना............................शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) प्रो. डॉ. सोनाली नरगुन्दे ....पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) प्रो. डॉ. भारती जोशी ....अजीवन शिक्षण विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(29) प्रो. डॉ. एम.डी. सोमानी ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) प्रो. डॉ. प्रीति भट्ट ....शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) प्रो. डॉ. संजय प्रसाद ....शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर ....सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. मोहन वास्केल ....शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला - झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. नितिन सहारिया ....शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी ....शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गाँधी ....महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा............................श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ.ओमप्रकाश शर्मा ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्योपुर (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव ....शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे ....शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. हेमलता चौहान ....शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता............................शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर ....शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. आशा साखी गुप्ता ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

(48) प्रो. डॉ. हेमसिंह मण्डलोई ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला- सतना (म.प्र.)
(50) डॉ. राजेश कुमार ....शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला-सतना (म.प्र.)
(51) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश ....शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला-विदिशा (म.प्र.)
(54) प्रो. युवराज श्रीवास्तव ....सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा-बिलासपुर (छ.ग.)
(55) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी ....शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. ए.के. पाण्डे ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे................................शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. शशि प्रभा जैन ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर-मालवा (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी ....शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल............................शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(61) डॉ. सुरेश कुमार विमल...............................शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(62) प्रो. डॉ. अमरचन्द्र जैन ....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. रश्मि दुबे ....शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. ए.के. जैन ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा..................................शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव ....शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला ....शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया ....शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला-छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो.डॉ. विम्मी बहल...................................शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला - शाजापुर (म.प्र.)
(71) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल.................................शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान ....शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला-शाजापुर (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा...............................शासकीय महाविद्यालय, नई गढ़ी, जिला- रीवा (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा ....शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. जया शर्मा ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी ....शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. इशरत खान ....शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर ....शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सीहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. केशवमणि शर्मा ....पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. रेणु राजेश ....शासकीय नेहरु अग्रणी महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)
(82) प्रो. डॉ. अविनाश दुबे ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)
(83) प्रो. डॉ. वी.के. दीक्षित..............................छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)
(84) प्रो. डॉ. राम अवेधश शर्मा ....एम.जे.एस. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)
(85) प्रो. डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री ....सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(86) प्रो. डॉ. समीर कुमार शुक्ला ....शासकीय चन्द्र विजय महाविद्यालय, डिण्डोरी (म.प्र.)
(87) प्रो. डॉ. आर.सी. पान्टेल.............................शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला-धार (म.प्र.)
(88) प्रो. डॉ. अनूप परसाई ....शासकीय जे. योगानन्दन छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(89) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन............................इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(90) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ ....राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(91) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख ....एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(92) प्रो. डॉ. गजेन्द्र सिरोहा..............................पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(93) प्रो. डॉ. कृष्णा पैन्सिया..............................हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला- प्रतापगढ़ (राज.)
(94) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह ....केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(95) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल ....शोध सलाहकार, नई दिल्ली

सामाजिक मूल्य एवं उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्ध

डॉ. आलोक कुमार सक्सेना * डॉ. मंजू सक्सेना **

प्रस्तावना – सामाजिक मूल्य एक समाज में प्रचलित वे मानक, लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर एक सामाजिक प्रस्थितिधारक व्यक्ति अपनी स्वयं की अथवा अन्य व्यक्तियों की भूमिकाओं के सम्बन्ध में मूल्यांकन करता है। मूल्यों का एक सामाजिक-सांस्कृतिक आधार या पृष्ठभूमि होती है, इसलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में भिन्नता देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ, भारतीय सामाजिक परिवेश में विवाह विच्छेद को उचित नहीं माना जाता है, किन्तु पाश्चात्य समाजों में यह निंदनीय नहीं है। अत: सामाजिक मूल्व वे मानक हैं जो कि सामाजिक जीवन के अन्त:सम्बन्धों को परिभाषित एवं विश्लेषित करने में सहायक होते हैं। सामाजिक मूल्य सामाजिक गुणों के विकास की आधारशिला हैं। विद्यार्थियों के सामाजिक गुणों के विकास की प्रक्रिया को समाज में प्रचलित सामाजिक मूल्यों की व्यवस्था के संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

सामाजिक मूल्य – जर्मन समाज विज्ञानी मैक्स वेबर सामाजिक मूल्य की अवधारणा में आदर्शात्मक तत्व (normative element) की अपेक्षा मूल्य तटस्थता (objectivity) को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। वे सामाजिक क्रिया को कर्त्ता के संदर्भ में समझने पर विशेष बल प्रदान करते हैं। सरल शब्दों में यह माना जा सकता है कि वेबर सामाजिक मूल्य की अवधारणा में आदर्शात्मक तत्व की उपस्थिति को तो स्वीकार करते हैं, तथापि वे यह मानते हैं कि कर्त्ता परिस्थितियों के संदर्भ में स्वयं आकलन करता है और क्रिया के विकल्पों में से किसी एक या कुछ को चयनित करता है। कर्त्ता का यह विकल्प चयन 'प्रेरकों' एवं संस्थागत साधनों की उपलब्धता से अवश्य प्रभावित होता है। संक्षेप में वेबर की विश्लेषण प्रणाली के आधार पर यह समझा जा सकता है कि सामाजिक मूल्यों में आदर्शात्मकता एवं उनके व्यावहारिक अनुपालन की भिन्नता को किस प्रकार मूल्य तटस्थता के संदर्भ में विश्लेषित किया जा सकता है।

फ्रांसिसी दार्शनिक इमाइल दुर्खाइम ने सामाजिक मूल्यों को आदर्श मानने पर बल दिया है। दुर्खाइम के अनुसार मूल्य की विवेचना एक 'सामाजिक तथ्य' के रूप में ही करनी चाहिए। सामाजिक तथ्य की भांति ही सामाजिक मूल्य की दो विशेषताएँ होती हैं – बाह्यता और बाध्यता। सामाजिक मूल्य समाज के सदस्यों की पारस्परिक अन्त:क्रियाओं का परिणाम इस रूप में हैं कि कुछ क्रिया-व्यवहारों को सामाजिक स्वीकार्यता प्रदान कर दी जाती है। व्यवहार प्रतिमान एक बार स्थापित हो जाने के पश्चात् किसी एक व्यक्ति की क्षमता, दक्षता या व्यक्तिगत स्तर पर उसके अनुपालन से सम्बन्धित नहीं होते हैं। स्थापित व्यवहार प्रतिमानों के रूप में सामाजिक मूल्य व्यक्ति की परिधि से स्वतन्त्र होकर एक आदर्शात्मक सामाजिक सत्ता की स्थापना कर देते हैं। इसी अर्थ में सामाजिक मूल्यों में बाह्यता का गुण परिलक्षित होता है। सामाजिक मूल्यों द्वारा आदर्शात्मक सामाजिक सत्ता की स्थापना के फलस्वरूप इसमें बाध्यता का गुण भी निहित होता है। स्पष्ट है कि सामाजिक मूल्य किसी एक समाज में उसके सदस्यों के व्यवहारों के आदर्शात्मक स्वरूप को प्रतिबिम्बित करते हैं।

मूल्यों का समाजशास्त्र – प्रत्येक प्रस्थितिधारी मनुष्य को अपने पारिस्थितिगत पर्यावरण से एक सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता होती है, अपने जीवन निर्वाह एवं सांसारिक जीवन सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना होता है, अपने समाज के अन्य सदस्यों के साथ सामाजिक जीवन में सहभागिता निभानी पड़ती है तथा अपने व्यक्तित्व व संस्कृति के मध्य पारस्परिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया में सम्मिलित होना पड़ता है। अत: व्यक्ति की इन सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ अधिमानों, मानकों एवं सामूहिक अभिलाषाओं को व्यवहार प्रतिमान के रूप में समाज द्वारा निश्चित कर दिया जाता है। किसी एक समाज में समय विशेष में प्रचलित व्यवहार प्रतिमानों को व्यक्ति सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित कर लेता है। विख्यात भारतीय चिंतक डॉ. राधाकमल मुकर्जी ने सामाजिक मूल्य की अवधारणा को पूर्व व पश्चिम की विचारधाराओं के एक समन्वय के रूप में प्रस्तुत करते हुए 'मूल्य' को परिभाषित किया है कि यमूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं जिनको अन्तर्मन से अपनाना, सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। इसलिए डॉ. मुकर्जी के मतानुसार मनुष्य को मूल्य अपने पर्यावरण से, स्वयं से, समाज और संस्कृति से ही नहीं अपितु मानव अस्तित्व व अनुभव से भी प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि मूल्यों का विकास औपचारिक स्तर की अपेक्षा अनौपचारिक स्तर पर अधिक प्रभावी होता है।

उच्च शिक्षा एवं सामाजिक मूल्य – शिक्षा सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत एक औपचारिक साधन माना गया है। सामान्यत: शिक्षा के दो स्तरों का उल्लेख किया जाता है- विद्यालय स्तर तथा उच्च शिक्षा अर्थात् महाविद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर। बालक के व्यक्तित्व निर्माण में प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उच्च शिक्षा का सम्बन्ध विषय के विशेषीकरण तथा शोध कार्य से है, तथापि यह विद्यार्थी को द्वैतियक जीवन में प्रवेश-पूर्व व्यक्तित्व की दृढ़ता तथा शारीरिक व मानसिक परिपक्वता प्रदान करने में अवश्य ही सहायक है।

प्रासंगिक प्रश्न यह है कि जब उच्च शिक्षा शोध एवं विषय विशेषज्ञता पर बल प्रदान करती है तो इसके अंतर्गत सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक गुणों के विकास की आवश्यकताओं का अनुभव क्यों किया जा रहा है।

* प्राध्यापक (अंग्रेजी) शासकीय महाविद्यालय, घट्टिया (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) शासकीय के. पी. महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

कारण स्पष्ट है, समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। सामाजिक मूल्यों के निर्धारण में स्पष्टता का अभाव है। बालक के व्यक्तित्व निर्माण की बुनियाद कमजोर है। स्कूली शिक्षा की बुनियाद पर ही उच्च शिक्षा की इमारत खड़ी होती है। वस्तुस्थिति यह है कि विद्यार्थी के व्यक्तित्व निर्माण का कोई सुनियोजित प्रयास किया ही नहीं जा रहा है। स्कूली शिक्षा के स्तर पर एवं महाविद्यालयीन शिक्षा के स्तर पर भी ऐसे प्रयासों की नितान्त कमी दिखलाई देती है, जो कि विद्यार्थी के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जब हम व्यक्तित्व निर्माण या सामाजिक गुणों के विकास की चर्चा कर रहे होते हैं तो सामान्यत: हमारे नीतिकार यह मानकर चलते हैं कि पाठ्यक्रम में समावेश मात्र से ही हम अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति कर सकते हैं। यही हमारी बुनियादी भूल है।

सामाजिक मूल्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए डॉ. राधाकमल मुकर्जी द्वारा दो प्रकार के मूल्यों का वर्णन किया गया है। मुकर्जी के अनुसार 'साध्य-मूल्य' वे लक्ष्य या संतुष्टियां हैं जिन्हें जीवन तथा मस्तिष्क-विकास व विस्तार की प्रक्रिया में मनुष्य तथा समाज द्वारा अपने लिए स्वीकार कर लिया जाता है। इसके विपरीत 'साधन मूल्य' वे मूल्य हैं जिन्हें मनुष्य और समाज प्रथम प्रकार के मूल्यों की सेवा करते हुए एवं उन्हें उन्नत करने के साधन के रूप में मानते हैं। स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सुरक्षा, सत्ता, पेशा, प्रस्थिति आदि से सम्बन्धित मूल्य 'साधन-मूल्य' हैं क्योंकि इनका उपयोग अस्तित्व कुछेक लक्ष्यों व संतोषो की प्राप्ति के साधन के रूप में देखा जाता है। साध्य मूल्यों को अमूर्त (abstract) या लोकातीत (transcendent) मूल्य तथा साधन मूल्यों को विशिष्ट (specific) या अस्तित्वात्मक (existential) मूल्य भी कहा जाता है। संक्षेप में, साध्य, अमूर्त या लोकातीत मूल्यों का सम्बन्ध समाज एवं व्यक्ति के जीवन के उच्चतम आदर्शों तथा लक्ष्यों से होता है, जबकि साधन, विशिष्ट या अस्तित्वात्मक मूल्यों को लौकिक लक्ष्यों की पूर्ति के साधन या उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सामान्यत: मनुष्य का सम्बन्ध साध्य मूल्यों की अपेक्षा साधन मूल्यों से अधिक होता है तथापि साधन मूल्यों के उचित चुनाव व संस्थागत प्रयुक्ति के बिना साध्य मूल्यों की पूर्णता सम्भव नहीं हो सकती है। डॉ. मुकर्जी के मतानुसार साध्य व साधन मूल्यों के उचित समन्वय से ही सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है तथा सामाजिक संगठन को सुदृढ़ किया जा सकता है। यह मध्यमार्ग है और सर्वाधिक उपयुक्त मार्ग भी है।

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन - सारांश में जब हम उच्च शिक्षा के अंतर्गत विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों के विकास हेतु गुणवत्ता प्रबंध पर विचार करते हैं तो एक महत्वपूर्ण तथ्य को तो स्पष्ट रूप से रेखांकित कर ही लिया जाना चाहिए कि निर्धारित पाठ्यक्रम व परीक्षा योजना से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह हमारे आचरणों की समग्र व्यवस्था तथा सामाजिक प्रस्थिति व भूमिका के उचित निर्धारण से सम्बन्धित है। संक्षेप में, विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों व मूल्यों के विकास हेतु निम्नानुसार उपायों पर विचार किया जाना चाहिए -

1. महाविद्यालयों का अपना स्वयं का भवन एवं परिसर हो। महाविद्यालयीन परिसर इतना विशाल हो कि उसमें विस्तृत रूप से क्रीड़ा गतिविधियों के संचालन का स्थान/ मैदान हो तथा विस्तृत आवासीय परिसर भी हो।
2. महाविद्यालय / संस्थानों का अधोसंरचनात्मक विकास इस प्रकार हो कि शैक्षणिक व शैक्षणेत्तर गतिविधियों हेतु पृथक्-पृथक् विभागों की व्यवस्था की जा सके। विभिन्न कार्यक्रमों का सुगमतापूर्वक आयोजन किये जा सकने योग्य अधोसंरचनात्मक विकास किया जाना चाहिए।
3. समग्र विकास हेतु अधोसंरचानात्मक ढाँचा ही पर्याप्त नहीं होता है, अपितु मानव संसाधनों का विकास उससे भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। नियमित योगाभ्यास हेतु नियमित एवं योग्य योग-शिक्षकों की नियुक्ति, खेल विशेषज्ञों की नियुक्ति, व्यक्तित्व-निर्माण प्रशिक्षकों की नियुक्ति आदि आवश्यक रूप से की जानी चाहिए। नियुक्तियां तदर्थवाद पर आधारित न होकर नियमित आधार पर योग्य युवाओं को अवसर प्रदान करने में सक्षम नीति-निर्माण किया जाना चाहिए।
4. परिसर में नियमित योगाभ्यास की व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए। साथ ही जिम, स्वीमिंग पूल इत्यादि भी विकसित किए जाने चाहिए।
5. नियमित प्रार्थना सभाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। नगर के समस्त धर्माचार्यों से इस सम्बन्ध में अनुबंध किया जा सकता है। किसी धर्म विशेष के स्थान पर सर्वधर्म समभाव का वातावरण निर्मित किया जाना चाहिए। नैतिक गुणों के विकास के लिए धार्मिक संस्थाओं का सहयोग आवश्यक है, साथ ही भारतीय समाज की जटिलताओं के दृष्टिगत सर्वधर्म समभाव ही श्रेष्ठ उपाय है।
6. मध्यप्रदेश के समस्त शासकीय महाविद्यालयों में एक समान गणवेष (uniform) लागू किए जाने पर विचार किया जा सकता है। प्राध्यापकों एवं कर्मचारियों हेतु भी यूनिफार्म निर्धारित की जा सकती है। ड्रेस कोड समस्या का हल नहीं है, आवश्यकता यूनिफार्म की है ताकि यूनीफार्मली समानता का भाव उत्पन्न किया जा सके।
7. लक्झरी सामानों के उपयोग पर प्रतिबंध यदि विद्यार्थियों के लिए आवश्यक समझा जाता है, तो शिक्षकों, कर्मचारियों एवं उच्चाधिकारियों द्वारा अर्थात् समग्र रूप से उसका पालन होना चाहिए।

सार संक्षेप में विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्य व गुणों के विकास के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों के समग्र विकास की आवश्यकता पर चिंतन आवश्यक हो गया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Johnson, H.M., Sociology : A Systematic Introduction, Allied Pub. Ltd., Mumbai.
2. Mukerjee, Radha Kamal, The Social Structure of Values, S. Chand & Co., New Delhi.
3. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ, समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, दिल्ली ।

****

सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में वर्तमान मानवीय व्यथा

डॉ. मंजू सक्सेना * डॉ. अनूप सक्सेना **

प्रस्तावना – वैश्वीकरण के इस दौर में तृतीय विश्व की स्थिति में कोई सुधार नहीं है। रहन–सहन के स्तर में प्रगति दृष्टिगत होती है लेकिन अकाल, भुखमरी गरीबी भी उसी गति से बढ़ रही है। वनों के क्षरण, ओजोन परत में छेद का होना, बाढ़, भूकम्प का प्रकोप, इबोला जैसे वायरस का बढ़ते प्रभाव पर कहीं न कहीं अतिभौतिकवादी संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है, चाहे वह उत्तरांचल का कहर हो या जम्मू कश्मीर का विनाश, चाहे सुनामी का ताण्डव हो या हुदहुद का आतंक। सम्पूर्ण सृष्टि विनाश की ओर जाती दिखाई देती है। पंत सचेत करते हुए कहते हैं–

तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद मर्दित
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिभायें खण्डित,
हर लेते हो विभव कला कौशल चिर संचित,
आधि, व्याधि, वहुवृष्टि वात उत्पात, अमंगल,
वह्नि बाढ़, भूकम्प तुम्हारे विपुल सैन्य दल,
अहं निरंकुश! पदाघात में जिनके विहवल
हिल हिल उठता है टल–मल
पद दलित धरा तल

निरंतर रासयनिकों के प्रयोग, जैव हथियारों के निर्माण, जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग, पेस्टीसाइड का उपयोग, मिलावटी सामग्री का बढ़ता चलन से पर्यावण प्रदूषित होता जा रहा है जिससे एक ओर तो सृष्टि और संतति दोनों की ही मानसिक सुख शांति भंग हो रही हैं, वहीं दूसरी ओर शारीरिक विकलांगता भी बढ़ रही है। पंत मनुष्य की कातरता की ओर इंगित करते हुए कहते है –

जगत की शत कातर चीत्कार,
वेधती बधिर, तुम्हारे कान
अश्रु स्त्रोतों की अगणित धार, सींचती उर पाषाण
अरे क्षण–क्षण सौ सौ नि:श्वास
छा रहे जगती का आकाश।
चतुर्दिक घहर, घहर, आक्रांति,
ग्रस्त करती सुख शांति।

बढ़ता भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, घोटाले अविकसित देशों पर ऋणों का बोझ, आतंकवादी हमले सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा किए जाने वाले सैन्य आक्रमण सम्पूर्ण विश्व में 'विकास की दर की वृद्धि' को भले ही इंगित कर रहे हैं, लेकिन सामान्य जीवन स्तर व्यतीत करने वाले आम मनुष्य के लिये प्रतिदिन भय एवं चिंताओं के प्रश्नचिन्ह खडे क़र रहे हैं। पंत जी कहते हैं –

किसी को सोने के सुख साज,
मिल गये यदि ऋण भी कुछ आज,
चुका लेता दुख कल ही ब्याज
काल को नहीं किसी की लाज

व्याख्यानों और भाषणों में भले ही अनाथाश्रम, बाल सुधार गृह, बाल कल्याण से सम्बन्धित कानूनों की बात कर लें लेकिन गरीबी, भुखमरी के कारण बच्चों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। आज भी एक रोटी की तलाश में बच्चे मजबूर हो जाते हैं। पंतजी लिखते हैं –

मेरे आँगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लड़के आ जाते हैं अक्सर
नंगे तन, गदबदे सांवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले–पर फुर्तीले,
जल्दी से टीले के नीचे उधर उतर कर,
वे चुन ले जाते कूडे से निधियाँ सुंदर
सिगरेट की खाली डिब्बी, पन्नी चमकीली
फीतों के टुकडे, तस्वीरें नीली पीली

वर्तमान में अबोध बालिकाओं के साथ यौन शोषण, नारी का उत्पीड़न, कन्या भ्रूण हत्या जैसी वीभत्स घटनाओं से पंत जी की कविता अछूती नहीं रही। वह प्रतीकात्मक रूप से सहन भाव से अभिव्यकत करते हैं –

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात
चार दिन सुखद चांदनी रात
और फिर अंधकार अज्ञात

समाज का भौतिकवादी स्वरूप, सामूहिक परिवारों का विघटन, निरंतर बढ़ता निकम्मापन, आधुनिकता की गलत व्याख्या, सत्ता और शक्ति के दम पर भयभीत करने की प्रवृत्ति, मनुष्य की दयनीय स्थिति का चित्र खींचते हुए कहते हैं –

खड़ा द्वार पर लाठी टेके
वह जीवन का बूढ़ा पंचर

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) शासकीय के. पी. महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय माखनलाल चतुर्वेदी स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत

सिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलती हड्डी के ढांचे पर
पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोई जल रहा जानवर
पैशाचिक सा कुछ दुखों से
मनुज गया शायद उसमें मर

पंतजी का काव्य युग की वास्तविकता को प्रस्तुत करता है। उनकी कविता अपनी समग्र संरचना में एक लोककल्याणकारी अभिलाषा का चित्रण करती है। यही वह तत्व है जिसके भीतर से उन्होंने विश्व–मानव और नव–मानव की परिकल्पना को अपने काव्य में सार्थक किया है। वे सच्चे अर्थों में सम्पूर्णता के कवि' है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. तारापथ – सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 1995.

****

अधिकार प्राप्ति का ब्रह्मास्त्र-सूचना का अधिकार अधिनियम-2005

डॉ. केशव मणि शर्मा *

शोध सारांश – डॉ. केशव मणि शर्मा, प्राध्यापक वाणिज्य को राष्ट्रीय सेवा योजना के विश्वविद्यालय स्तरीय चिन्तन शिविर भाबरा दिनांक 20 से 24 अक्टूबर 1997 के आयोजन पर व्यय राशि रूपये 5,641/– डॉ. महेन्द्र नागर पूर्व राज्य सम्पर्क अधिकारी, रासेयो द्वारा गबन की गई थी। 16 वर्ष बाद दिनांक 10 फरवरी, 2014 को सूचना के अधिकार अधिनियम के माध्यम से खुलासा होने पर डॉ. केशव मणि शर्मा के खाते में जमा कर दी गई।

इसी प्रकार बिहार के डूमराव गाँव निवासी धीरेन्द्र कुमार को न्यायिक परीक्षा 2007 में 451 अंक प्राप्त करने के बावजूद भी बिहार लोक सेवा आयोग ने अनुत्तीर्ण घोषित कर दिया गया जबकि सूचना का अधिकार अधिनियम के माध्यम से ज्ञात हुआ कि उससे 100 अंक कम प्राप्त करने वालों का चयन कर दिया गया। धीरेन्द्र कुमार सूचना का अधिकार अधिनियम के कारण आज जज हैं। बुराड़ी इलाके में हूबर अपार्टमेण्ट दिल्ली के बिल्डर श्री पी.के. गुप्ता द्वारा भ्रष्टाचार के दम पर नगर निगम, पुलिस तथा बैंक के साथ मिलकर कई मंजिला इमारत लालडोरा की जमीन पर अवैध रूप से बना डाली परन्तु आर.टी.आई. के माध्यम से श्री राजेश ने 2005 में इसका भण्डाफोड़ कर कई लोगों को इस धोखाधड़ी से तो बचाया ही साथ ही धमकी के बावजूद भी बिल्डर को सजा दिलवाई।

आर.टी.आई. कार्यकर्ता सुभाषचंद्र अग्रवाल की सूचना के आधार पर ही दिल्ली के पांश लुटियंस में 17 पूर्व मंत्रियों के अवैध कब्जे से 36 में से 19 बंगलों को मुक्त करवा कर जनता के पैसे का दुरूपयोग रोका। आर.टी.आई. से जहाँ एक ओर जजों की सम्पत्ति सार्वजनिक करने का निर्णय हुआ वहीं दूसरी ओर मुरैना के जिला न्यायालय के लोक सूचना अधिकारी श्री एस.आर. अनगरे पर 10 अप्रेल 2008 को सुनाए गये फैसले में रू. 25,000/– का जुर्माना लगाया। नीमच के डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा ने सूचना का अधिकार अधिनियम के माध्यम से न केवल अपनी सर्विस बुक में लाल स्याही से अंकित टिप्पणी को विलोपित करवाया बल्कि ऐसा करने वाले प्राचार्य को भी दण्ड दिलवाया।

राजस्थान के राजसमुन्द जिले में विजयपुरा में 800 ऐसे फर्जी हस्ताक्षरों को पहचाना गया जिनके द्वारा रू. 70 लाख की सरकारी जमीन को कोड़ियों के भाव नीलाम किया गया।

उत्तरप्रदेश के बहराईच जिले के केशव गाँव में एक भी इन्दिरा आवास 2005 के पूर्व स्वीकृत नहीं था। आर.टी.आई. में सूचना मांगने पर प्रशासन सक्रिय हुआ एवं 32 आवास बने। शेष पात्रों की सूची भी दीवार पर लगी।

प्रस्तावना – पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के अनुसार, सरकार एक रूपये की मदद भेजती है लेकिन उस आदमी तक केवल 19 पैसे ही पहुँच पाते हैं, जिसकी मदद के लिये राशि भेजी गई। 'आखिर 81 पैसे कहाँ गायब हो जाते हैं लोकतांत्रिक सरकार में 81 पैसे गायब होने की कहानी जानना आम आदमी का हक है क्योंकि यह राशि उसके लिये भेजी गई थी ? आम आदमी को यह जानने के लिये भारत सरकार ने 12 अक्टूम्बर 2005 को सूचना का अधिकार अधिनियम लागू किया जो जम्मू कश्मीर को छोड़कर शेष समस्त भारत में लागू होता है। यद्यपि राजस्थान में यह 26 जनवरी 2001 से ही लागू है। इसके लागू होने से अनेक लोगों ने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये इसका उपयोग किया। सरकारी कार्यालयों के लोक सूचना अधिकारियों को 30 दिन में आम नागरिक की प्रार्थना पर वांछित दस्तावेजों की प्रतिलिपियां उपलब्ध करवाने का दायित्व सौंपा गया एवं उल्लंघन करने पर रू. 250/– प्रतिदिन एवं रू. 25,000/– अधिकतम जुर्मने का प्रावधान भी किया गया। यद्यपि इस अधिनियम से नौकरशाही में हड़कम्प तो मचा ही पारदर्शिता के भय से भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगा है। खासकर सरकारी नौकरियों में भर्ती, पदोन्नति, भाई–भतीजावाद, पक्षपात आदि पर।

शोध प्रविधि एवं उद्देश्य – उक्त शोध–पत्र मुख्यत: केस स्टडी पर आधारित है जिसके माध्यम से शोधकर्ता को सन् 1997 में प्राप्त होने वाली उसके अधिकार की शासकीय राशि देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना प्रकोष्ठ द्वारा रूपये 5,641/– दिनांक 10 फरवरी 2014 को 16 वर्ष बाद प्राप्त हुई। इस प्रकार शोधकर्ता डॉ. केशव मणि शर्मा के साथ ही बिहार के धीरेन्द्रकुमार, दिल्ली के राजेश, मुरैना के वकील लज्जाराम पाण्डेय सहित अनेक आमजन के अधिकार प्राप्ति की केस स्टडी पर आधारित उक्त शोध लालफीताशाही एवं नौकरशाही से पीड़ित आमजन को जागरूक करने के उद्देश्य पर आधारित है।

शोध का क्षेत्र – भारत इस अधिनियम को लागू करने वाला विश्व में 61वाँ देश है अर्थात 60 देशों में यह अधिनियम पूर्व से ही लागू है। शोध का क्षेत्र केस स्टडी के माध्यम तक ही सीमित रहा है अर्थात शोधकर्ता ने जो स्वयं देखा है महसूस किया है उन्हीं घटनाओं पर उक्त शोध आलेख केन्द्रित है। साथ ही अधिकारियों की लापरवाही के कारण इस अधिनियम के माध्यम से जागरूकता लाना भी शोधकर्ता की भूमिका संबंधी सीमित क्षेत्र रहा है। शोधपत्र में अधिकांश प्राथमिक समंकों का उपयोग किया गया है फिर भी

* प्राध्यापक (वाणिज्य) बी. एस. एन. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.) भारत

आवश्यकतानुसार द्वितीयक समंकों को भी यथा स्थान शामिल किया जाकर शोधपत्र को जनोपयोग बनाने का प्रयास किया है।

शोधपत्र –'जिस चीज को पर्दे में रखा जाता है उसे देखने की ललक प्रत्येक मन में ज्यादा रहती है।' गोपनीयता अविश्वास की जड़ है जबकि पारदर्शिता विश्वास का आधार माना जाता है। भ्रष्टाचार एवं गोपनीयता एक सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ गोपनीयता रहेगी वहाँ भ्रष्टाचार पनपने की संभावना अधिक रहेगी और जहाँ पारदर्शिता रहेगी वहाँ भ्रष्टाचार पर स्वत: रोक लगेगी। लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी ने भी कहा था 'प्रजातन्त्र में जनता सर्वोपरि है। जनता के दायरे से हमें किसी को अलग नहीं रखना चाहिये।' डॉ. ज्ञान प्रकाश पिलानिया ने भी इस संबंध में कहा है कि 'सूचना का अधिकार भ्रष्टाचार से लड़ने के लिये जनता का ब्रह्मास्त्र है।'

मैं उच्च शिक्षा विभाग में प्राध्यापक हूँ। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर के राष्ट्रीय सेवा योजना प्रकोष्ठ के तत्कालीन कार्यक्रम समन्वयक डॉ. महेन्द्र नागर द्वारा मुझे विश्वविद्यालय स्तरीय 5 दिवसीय चिन्तन शिविर के आवास एवं भोजन की व्यवस्था संबंधी दायित्व सौंपा गया। इन्दौर, खण्डवा, खरगौन, बड़वानी, धार, झाबुआ, बुरहानपुर, अलीराजपुर सभी जिलों से आये लगभग 150 छात्र-छात्राओं के आवास एवं भोजन की उत्तम व्यवस्था मेरे द्वारा पूर्ण ईमानदारी, निष्ठा एवं उत्साह से की गई।

आजादी के स्वर्ण जयंती वर्ष पर शहीदे आजम चन्द्रशेखर आजाद की पवित्र जन्म स्थली भाभरा में 20 से 24 अक्टूबर 1997 तक आयोजित इस विश्वविद्यालयीन चिन्तन शिविर में विद्यार्थियों को आशीर्वाद देने हेतु देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री सुरेश गोडल, कुलपति डॉ. भरत छपरवाल, राष्ट्रीय युवा योजना दिल्ली के निदेशक डॉ. एस.एन. सुब्बाराव, कलेक्टर श्री मनोज श्रीवास्तव, प्रदेश सरकार के पाँच केबिनेट मिनिस्टर, केन्द्र सरकार के 2 केबिनेट मिनिस्टर, मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंह, राज्यपाल मा. मोहम्मद सफी कुरैशी साहब के अतिरिक्त 500 स्वतन्त्रता संग्राम सैनानियों सहित उपराष्ट्रपति श्री कृष्ण कान्त जी जैसे वी.वी.आई.पी. पधारे।

मेरे द्वारा उक्त आयोजन का व्यय लेखा मात्र रू. 12,741/- विश्वविद्यालय को भेजा गया। विश्वविद्यालय द्वारा मुझे राहत राशि रू. 7100/- भुगतान कर दी गई शेष राशि रू. 5,641/- प्राप्ति हेतु मेरे द्वारा 15 वर्षों में लगभग 21 पत्र सम्बन्धित अधिकारियों को लिखे गये। भारत सरकार के पत्र क्रमांक/पी 6/रासेयो/क्षेके/म.प्र./2006-07/782 दिनांक 31 अक्टूम्बर 2006 तथा क्रमांक पी 21/रासेयो/ क्षेके/मप्र/2012/1197 दिनांक 31 दिसम्बर 2012 तथा मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग मंत्रालय के पत्र क्रमांक 292/81/2013/38-3 भोपाल दिनांक 15.02.2013 द्वारा कुल सचिव तथा कार्यक्रम समन्वयक सेवा योजना को भुगतान हेतु निर्देशित किये जाने के बाद भी आवेदक भुगतान का इन्तजार करता रहा किन्तु भुगतान नहीं मिला।

अन्तत: आवेदक द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम में आवेदन दिया तो कार्यक्रम समन्वयक डॉ. प्रकाश गढ़वाल के पत्र क्रमांक रासेयो/ 2013-14/203/Speed Post दिनांक 4 Feb 2014 के द्वारा आवेदक को सूचित किया कि 'जानकारी बहुत अधिक पृष्ठों की है। अत: आप दिनांक 18.02.2014 को कार्यालयीन समय पर शासन के नियमानुसार अवलोकन करने का कष्ट करें।' अपील के माध्यम से दस्तावेज प्राप्त हुए तो ज्ञात हुआ कि, आवेदक जिन रू. 5,641/- प्राप्ति हेतु 15 वर्षों से संघर्ष कर रहा है उसका भुगतान तो 15 वर्ष पूर्व ही डॉ. महेन्द्र नागर स्वयं प्राप्त कर चुके हैं। डॉ. महेन्द्र नागर द्वारा गबन की गई उक्त राशि रू. 5,641/- अन्तत: वसूल कर आवेदक को 16 वर्षो बाद दिनांक 10 फरवरी, 2014 को आवेदक के खाते में जमा कर दिया गया। इस प्रकार आवेदक जिस अधिकार को प्राप्त करने हेतु 15 वर्षों से संघर्षरत था फिर भी लालफीताशाही के कारण सफल नहीं हो पाया उसे सूचना अधिकार अधिनियम के माध्यम से 1 वर्ष में ही प्राप्त कर लिया।

समस्याएँ – इस प्रकार सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 नागरिकों के लिये अधिकार प्राप्ति का ब्रह्मास्त्र तो साबित हो ही रहा है। बावजूद इसके आजकल अनेक ऐसे अधिकारी जो सही कार्य पारदर्शिता से नहीं कर रहे हैं वे सूचना के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत दस्तावेज देने में किसी न किसी तरह की बाधाएँ पैदा करते रहते हैं, जिनके कुछ प्रमाण निम्नानुसार है –

1. कार्यालय जिला सत्र न्यायाधीश अलीराजपुर म.प्र. के पत्र क्रमांक क्यू लेखा/2013 अलीराजपुर दिनांक 12.06.12 में आवेदक मनीष वाणी को दस्तावेजों की नकल प्राप्ति हेतु सूचित किया गया कि, 'आप दस्तावेजों की नकल प्राप्ति हेतु राशि रू. 14,684/- के गैर न्यायिक स्टाम्प 7 दिन में इस कार्यालय में प्रस्तुत करें।' शायद न्यायाधीश महोदय को 'सूचना का अधिकार (फीस एवं लागत का विनिमय) नियम-2005 की धारा 4 का ज्ञान नहीं है।'
2. प्राचार्य, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर के पत्र क्रमांक 914/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 12/4/12 में आवेदक डॉ. केशवमणि शर्मा को सूचित किया गया कि, 'रू. 88/- संस्था को स्वयं उपस्थित होकर 7 दिवस में जमा कर रसीद प्राप्त करें। साथ ही यथोचित प्रारूप प्रपत्र संलग्न करें।' आवेदक द्वारा रू. 88/- प्राचार्य के खाते में जमा करने के बावजूद भी जानकारी नहीं दी एवं पत्र क्रमांक 957/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 25.04.12 द्वारा आवेदन निरस्त कर दिया गया। शायद उच्च शिक्षा प्राप्त इस प्रथम श्रेणी अधिकारी को सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 की धारा-7 एवं 20 का ज्ञान ही नहीं है।
3. प्राचार्य, शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा डॉ. आर.के. जाटवा के पत्र क्रमांक 1856/स्था/14 राजगढ़ दिनांक 01.11.2014 द्वारा आवेदक केशवमणि शर्मा को सूचित किया गया कि, 'निर्धारित प्रपत्र में आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया। निर्धारित प्रपत्र में आवेदन होने पर उस पर विचार कर वांछित जानकारी आपको प्रदान की जायेगी।' शायद मोटी तनख्वाह रू. सवा लाख प्रतिमाह से अधिक प्राप्त करने वाले इस प्रथम श्रेणी अधिकारी को मधु भादुड़ी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण के मामले में 16 जनवरी, 2006 को दिये गये फैसले का ज्ञान ही नहीं है, जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि आवेदन सादे कागज पर दिया जा सकता है। इस बात का उल्लेख अधिनियम में भी स्पष्ट रूप से किया गया है।
4. प्राचार्य पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, ए.बी. रोड़, शाजापुर के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर आमजन की सुविधा के लिये एक बोर्ड प्रदर्शित किया गया है जिसमें सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के अंतर्गत सूचना प्राप्ति संबंधी विवरण निम्नानुसार दर्ज है –

'लोक सूचना अधिकारी-डॉ. एन.के. सोनी, सहायक लोक सूचना अधिकारी डॉ. आर.के. जैन इस कार्यालय से सूचना प्राप्त करने के लिये मुख्य लिपिक श्री बी.के. वर्मा एवं उनकी अनुपस्थिति में श्री किशोर पाटीदार, सहायक ग्रेड-3 को लिखित आवेदन अपरान्ह 2 बजे से 3 बजे के मध्य प्रस्तुत कर रसीद प्राप्त करें।'

यहाँ उल्लेखनीय है कि अधिनियम की धारा 6 में सूचना प्रदाय हेतु लोकसूचना एवं सहायक लोक सूचना अधिकारी की व्यवस्था का तो उल्लेख है परन्तु मुख्य लिपिक एवं उनकी अनुपस्थिति में सहायक ग्रेड-3 को आवेदन लेने का प्रावधान अधिनियम में नहीं किये गये हैं।

समय का स्वेच्छा से निर्धारण। उक्त प्रदर्शित बोर्ड में लोकसूचना अधिकारी एवं प्राचार्य द्वारा 2 बजे 3 बजे के मध्य सूचना का अधिकार अधिनियम में आवेदन प्राप्ति हेतु केवल एक घण्टा स्वेच्छा से समय निर्धारित किया गया है जबकि अधिनियम में न तो इस प्रकार के अधिकार लोक सूचना अधिकारी को दिये गये हैं और न ही केवल एक घण्टे का उल्लेख किया गया है। कार्यालयीन समय में कभी भी आवेदन स्वयं द्वारा, डाक द्वारा या अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा भी दिया जा सकता है।

सूचना का अधिकार अधिनियम के प्रति संवेदनशीलता की कमी इससे भी परिलक्षित होती है कि लोक सूचना अधिकारी डॉ. एन.के. सोनी लगभग 5 माह पूर्व 31 अक्टूबर 2014 को सेवानिवृत्ता हो चुके हैं जबकि श्री किशोर पाटीदार लगभग 2 वर्ष से उच्च शिक्षा विभाग की सेवा में ही नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक अधिकारियों को तो यह भी पता नहीं है कि उनके कार्यालय में कौन लोग सूचना अधिकारी हैं तथा कौन प्रथम एवं द्वितीय अपीलीय अधिकारी हैं ?

एक ओर लोक सूचना अधिकारी 9 वर्ष के अनुभव से यह महसूस करने लगा वह दस्तावेज आर.टी.आई. आवेदक को उपलब्ध नहीं करवायेगा तो आवेदक चुप हो जायेगा और यदि प्रथम अपील भी करेगा तो वहाँ से भी जानकारी मिलने में कोई मदद इसलिये नहीं मिल पायेगी कि वह विभागीय अधिकारी ही है। द्वितीय अपील के लिये आवेदक जायेगा तो वर्ष भर तक उसका नम्बर ही नहीं आयेगा तब तक जानकारी के उपयोग का महत्व कम हो जायेगा और फिर राज्य आयोग भी उसे 15 दिवस में जानकारी उपलब्ध करवाने हेतु निर्देश देगा कोई जुर्माना तो करेगा नहीं। साथ ही आवेदक को स्वयं के खर्चे से भोपाल जाना होगा जबकि लोक सूचना अधिकारी के विभाग द्वारा T.A./D.A. दिया जावेगा। क्रियान्वयन की इस जटिल प्रक्रिया एवं सरकार की इस अधिनियम के प्रति संवेदनाएँ कम होने से अधिनियम का उद्देश्य ही शिथिल होता जा रहा है।

राज्य सूचना आयोग के 31 दिसम्बर 2013 तक के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि आयोग में 50 प्रतिशत से भी अधिक अपील लम्बित है। 2005 में अधिनियम के लागू होने से 31 दिसम्बर 2013 तक कुल 30,057 अपील/शिकायतें आयोग को प्राप्त हुईं, जिनमें से केवल 14,927 का ही समाधान हुआ। उक्त तिथि को 2032 शिकायतें तथा 13,098 अपील इस प्रकार कुल 15,130 प्रकरण लम्बित थे, जिनमें सर्वाधिक 2,177 आदिवासी बहुल जिले बालाघाट के हैं। दूसरा स्थान भोपाल 1,277 तथा तीसरा स्थान सिवनी 1,081 जिले का है।

सन् 2012 में सूचना आयुक्त एवं मुख्य सूचना आयुक्त की सेवानिवृत्ति के पश्चात नियुक्ति नहीं होने के कारण लम्बित प्रकरणों की संख्या में वृद्धि होती रही। श्री अजय दुबे की जनहित याचिका पर माननीय उच्च न्यायालय ने म.प्र. सरकार को 31 जनवरी 2014 के पूर्व उक्त पदों पर नियुक्ति करने संबंधी आदेश दिये। सरकार की इस अधिनियम के प्रति संवेदना इस तथ्य से प्रतिपादित होती है कि उच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद भी अभी तक सूचना आयुक्तों की नियुक्तियाँ नहीं हो पाई हैं।

सुझाव - सामाजिक विकास को यदि वास्तव में यदि नई गति देना है तो बढ़ते हुए लम्बित मामलों की संख्या को कम करने हेतु निम्नानुसार सुझाव दिये जाते हैं -

1. प्रथम अपीलीय अधिकारी के अधिकारों में वृद्धि की जावे एवं उन्हें दण्ड देने का अधिकार दिया जावे।
2. सूचना आयुक्तों की संख्या अधिनियम के अनुसार बढ़ाकर 10 की जावे। सूचना आयुक्तों की नियुक्तियाँ की जावे।
3. सूचना आयुक्तों के मुख्यालय की स्थापना प्रत्येक संभाग स्तर पर की जावे।
4. सूचना प्रदान नहीं करने वाले लोक सूचना अधिकारी को अनिवार्यत: दण्डित किया जावे।
5. आवेदक द्वारा आवेदक देकर सूचना नहीं लेने पर दण्ड का प्रावधान किया जावे।
6. प्रक्रिया शुल्क में समानता लाई जावे अथवा प्रथम अपील हेतु रू. 50/- के स्थान पर रू. 20/- तथा द्वितीय अपील हेतु रू. 100/- के स्थान पर रू. 50/- शुल्क निर्धारित किया जावे। वर्तमान में केवल आन्ध्र प्रदेश ही एक ऐसा राज्य है जहाँ शहरी अथवा जिला स्तर हेतु प्रक्रिया शुल्क रू. 10/-, उपजिला स्तर हेतु रू. 5/- तथा ग्रामीण क्षेत्र हेतु किसी भी प्रकार का प्रक्रिया शुल्क नहीं है।
7. अन्य व्यक्ति से आवेदन दिलवाने वाले व्यक्ति के लिये सजा का प्रावधान किया जावे।
8. द्वितीय अपील के प्रकरणों के निराकरण के लिये सेवानिवृत्त व्यक्तियों के स्थान पर युवा एवं कर्मठ व्यक्तियों की नियुक्ति की जावे।
9. आर.टी.आई. को पाठ्यक्रम में शामिल किये जाने संबंधी संशोधन किये जावें।
10. अधिनियम को क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों एवं लाभार्थियों को उचित प्रशिक्षण दिया जावे।

निष्कर्ष - इस प्रकार यदि उपरोक्त सुझावों पर अमल किया जावे तो सामाजिक विकास को सूचना के अधिकार अधिनियम के माध्यम से एक नई गति एवं दिशा प्राप्त हो सकेगी। साथ ही जिस प्रकार शाजापुर के डॉ. केशव मणि शर्मा, बिहार के श्री धीरेन्द्र कुमार, दिल्ली के श्री राजेश कुमार, मुरैना के श्री लज्जाराम पाण्डे, नीमच के डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वारा अपने अधिकारों इस अधिनियम के माध्यम से प्राप्त करने का सफल प्रयास किया उसी तरह अन्य पीड़ित व्यक्ति भी इस अधिनियम की सहायता के माध्यम से अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास कर सकते हैं। यदि कोई शासकीय अधिकारी/कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी की स्वेच्छाचारिता से पीड़ित है तो वह अधिनियम की धारा 4(1)(डी) के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत कर सकता है, जिसका स्पष्टीकरण लोक सूचना अधिकारी द्वारा पीड़ित व्यक्ति को दिया जायेगा।

फोटो दिनांक 10 मार्च 2015

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. आयुक्त, उच्च शिक्षा, म.प्र. शासन का पत्र क्र. रासेयो/2008/38/457 भोपाल, दिनांक 15 अक्टुबर 2008
2. भारत सरकार युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय क्षैत्रिय केन्द्र भोपाल का पत्र क्रमांक/पी.6/रासेयो/क्षै के/म.प्र./2006-07/782 दिनांक 31.10.06
3. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र./रासेयो/08/1104 जोबट दिनांक 06.12.08 दे.अ.विश्वविद्यालय इन्दौर में प्राप्ति दिनांक 08.12.08
4. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्रं. 2/97/98/2881 दिनांक 24/12/1997
5. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/111/दिनांक 01/01/1998
6. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/क्यू-1/98/दिनांक 23.01.98
7. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/129 दिनांक 27/03/98
8. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/143 दिनांक 15/07/98
9. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98-99/03/2127/दिनांक 12/08/98
10. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/146 दिनांक 11/09/98
11. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/190 दिनांक 20/05/99
12. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/99/196 दिनांक 14/07/98
13. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/99/194 दिनांक 14/07/97
14. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/2009/241 दिनांक16.05.2000
15. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्र. रासेयो/2/99-2000/1863 दिनांक 08/06/2000
16. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/2000/241 दिनांक10.07.2000
17. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्र. रासेयो/3/2002/1468/दिनांक 06/06/02
18. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/545/दिनांक 30/07/2003
19. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/821/दिनांक 04/11/2003
20. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/402/दिनांक 21/07/2004
21. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/क्यू-3/दिनांक 15/05/2005
22. गालवा, डॉ. हनुमान, आम आदमी और सूचना का अधिकार, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, नवम्बर 2009
23. भारत सरकार के पत्र क्रमांक पी 21/रासेयो/ क्षेके/मप्र/2012/1197 दिनांक 31 दिसम्बर 2012
24. मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग मंत्रालय का पत्र क्रमांक 292/81/2013/38-3 भोपाल दिनांक 15.02.2013
25. कार्यक्रम समन्वयक डॉ. प्रकाश गढ़वाल का पत्र क्रमांक रासेयो/2013-14/203/Speed Post दिनांक 4 Feb 2014
26. कार्यालय जिला सत्र न्यायाधीश अलीराजपुर म.प्र. का पत्र क्रमांक क्यू लेखा/2013 अलीराजपुर दिनांक 12.06.12
27. प्राचार्य, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर का पत्र क्रमांक 914/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 12/4/12
28. प्राचार्य, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर का पत्र क्रमांक 957/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 25.04.12
29. प्राचार्य, शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा डॉ. आर.के. जाटवा का पत्र क्रमांक 1856/स्था/14 राजगढ़ दिनांक 01.11.2014
30. इकोनोमिक टाईम्स दैनिक समाचार पत्र 19 जनवरी 2014
31. शर्मा डॉ. एल.एन. राष्ट्रीय शोध संसार नीमच।
32. प्राचार्य शासकीय पी.जी. महाविद्यालय शाजापुर के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर प्रदर्शित बोर्ड।

****

संगीत चिकित्सा एक वैज्ञानिक पद्धति

डॉ. श्रीपाद् आरोणकर *

शोध सारांश – संगीत चिकित्सा विज्ञान और कला का समन्वय है। भारत में सामगान के माध्यम से वैदिक काल से ही संगीत ईश्वर प्राप्ति का साधन रहा है। पाश्चात्य संगीत निर्देशकों ने भी संगीत के माध्यम से विभिन्न रोगों के उपचार हेतु अनुसंधान किये। संगीत गीत वाद्य और नृत्य का समन्वित रूप है। ध्वनि एवं लय के माध्यम से शरीर में परिवर्तन आते है। विज्ञान की भाषा में विभिन्न हारमोंस का स्त्रावण होता है तथा मानव तनाव चिन्ताएं आदि से मुक्त होकर ध्यान एवं एकाग्रता की ओर उन्मुख होता है। मेरा प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र में संगीत चिकित्सा के सामान्य ज्ञान से जनमानस को अवगत कराना है।

शब्द कुंजी – संगीत चिकित्सा संप्रेषण कौशल विकास हार्मोन, चिकित्सा पद्धति मनोरोग।

प्रस्तावना – भारतीय संगीत पद्धति अत्यंत गूढ़ है, जो दर्शन और योग पर आधारित है। मानव–जीवन का सर्वप्रधान लक्ष्य आत्मिक शांति और आनन्द बोध है। भारतीय संगीत आत्मानंद और आत्ममार्ग का निर्देशक है। मनोरंजन किसी भी संगीत से हो सकता है, लेकिन समाधि के लिए भारतीय शास्त्रीय संगीत ही उपयुक्त है। शास्त्रीय संगीत में राग होते है। स्वर और वर्ण से अलंकृत उस ध्वनि विशेष को राग कहते है जो जन चित्त को रंग देती है। जन चित्त को रंगने का तात्पर्य गूढ़ है। भारतीय वाङ्मय एवं लोक प्रज्ञा के सभी क्षेत्रों में व्यवहृत राग, शब्द से सकेतित सभी मूर्त भौतिक पदार्थ तथा अमूर्त भाव अंततोगत्वा एक ही स्थिति का बोध कराते है भावनात्मक तथा मानसिक तनाव दूर करने संगीत योग अत्यंत लाभदायक है। इससे चरम आनंद की प्राप्ति होती है। संगीत समाधि में चेतना जागृत होते हुए भी आप शांत प्रसन्न चित्त और संतुलित बने रहते है।

संगीत योग द्वारा विभिन्न प्रकार के अनेक रोगों से मुक्ति मिलती है। मानसिक शक्तियों को बढ़ाकर मंदबुद्धि बच्चे की चिकित्सा में भी संगीत लाभदायक है। संगीत योग से अपने अन्दर की प्रतिरोध शक्ति या उपचार शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। संगीत का प्रभाव मानव पर दो तरह से पड़ता है। भावनात्मक और बौद्धिक। भावानुभूति और भावाभिव्यक्ति का अध्ययन भिन्न रूप से हुआ है। रस शास्त्र में विभाव,अनुभाव, भाव, मनोविज्ञान के कारण, प्रक्रिया और भाव ही है। मनोविज्ञान में जो मन है वही रसशास्त्र में चेतना है जिसकी तीन अवस्था–जागृत,स्वप्न और सुषुप्ति कही गई है। चेतना के विभिन्न कार्य के अनुसार उसे मन बुद्धि, चित कहा गया। इनमें से सत्य–असत्य का विवके करने वाली को बुद्धि तथा अनुभव करने वाली को चित कहा गया। चित्त के विषय में सारा रस शास्त्र समा जाता है योग में चित निरूपण की दृष्टिहै। संगीत द्वारा चित्त की वृत्तियाँ शीघ्र ही शुद्ध और शांत हो जाती है।

संगीत द्वारा सुप्त चेतना को एक नया आयाम प्राप्त होता है। संगीत की तरंगे चेतना के अनत: पटल को भेदकर अचेतन मन मे प्रवेष कर जाती है जिससे मन इन तरंगों के आकर्षण में तन्मय हो जाते है। संगीत में मस्तिष्क में विशेष प्रकार की अल्फा तरंगे उत्पन्न होती है जो आसानी से संसार से परे एक नई चेतना में ले जाती है। जहाँ मन को आनंद की अनुभूति होती है। संगीत के माध्यम से इन तरंगों को और अधिक मात्रा में उत्पन्न करने में सहायता मिलती है। संगीत व्यक्ति को मानसिक शांति देकर झकझोर देता है और उसे स्वत: ही कुछ समय के लिए अन्तर्मुखी बना देता है। जिसमें डूबकर वह आलौकिक आनंद की अनुभूति करता है।

'संगीत ध्वनि पर आधारित है। उसमें **सा,रे,ग,म,प,ध,नि** सात स्वर होते है। **जो हमारे शरीर में स्थित सात चक्रों को प्रतिध्वनित्व करते है।** जब योगानुकूल पद्धति से इन सात चक्रों को संगीत के माध्यम से सिद्ध कर लिया जाता है। तो व्यक्ति चेतना के सामान्य स्वर का अतिक्रमण कर लेता है। ध्वनि के तीन अंग होते है–शब्द (ध्वनि), अर्थ तथा प्रत्यय (पहिचान)। ध्वनि के विभिन्न प्रकार होते है। प्रत्येक ध्वनि में अर्थ तरंग तथा आवृत्तियाँ होती है। शब्द एक शक्ति है जो गत्यात्मक होती है। हमारे मस्तिष्क में अनेक केन्द्र है जो विभिन्न प्रकार की तरंगे छोड़ते है। इनसे ऊर्जा के विभिन्न स्वरूप उत्पन्न होते है जो धनीभूत होकर ठोस पदार्थ का रूप धारण करते है। ध्वनि के इसी सिद्धांत पर समूचा मंत्रशास्त्र आधारित है। जो आइन्सटीन के सूत्र ई–बराबर एम सी सक्वेयर से परिचित है वे इस बात को अच्छी तरह से समझ सकते है। संगीत का मौलिक उपकरण स्वर है। स्वर नाद से उत्पन्न होता है। नाद के बिना कुछ नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि की नादात्मक है। नाद योग ध्वनि विज्ञान है। नाद योग के अभ्यास से मस्तिष्क की निराशा दूर होती है। ध्यान सफल होता है। मन शांत होता है, आनन्द बोध होता है। नाद योग का साधक अपने अन्दर ही विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है जिनसे उसे बड़ा आनंद मिलता है। उस मन स्वयं ध्वनि के साथ मिलकर एकाकार हो जाता है। नाद की सामान्यत: चार अवस्थाएँ होती है। गहन ध्यान में प्रकाश और शांति एक ही होते है। पश्यन्ति मानसिक ध्वनि को, मध्यमा कंठ की सूक्ष्म ध्वनि को, तथा बैखरी सहज सुनी जा सकने वाली ध्वनि को कहते है। प्रकृति के नियम के अनुसार चेतना धरातल पर जीवनी शक्ति का प्रकाश जिस अंग पर नहीं पड़ता है, वह अंग विकृति का केन्द्र हो जाता है। रोग से ग्रसित वे ही अंग होते है, जिन पर जीवनीशक्ति के प्रवाह की तरंगे नहीं पहुँचती । मानसिक रोग, अल्सर, लकवा आदि इसके उदाहरण है। यदि व्यक्ति एकाग्रता के द्वारा अपनी जीवनीशक्ति की तरंगे रूग्ण स्थान पर प्रावहित कर सके तो बिना औषधि के सेवन किये ही ऐसे रोगों से वह मुक्त हो सकता है और संगीत तरंगे इसके एक सक्षम माध्यम है, लेकिन इसके लिए गहन साधना की आवश्यकता होती है।

प्रकृति द्वारा निर्मित प्रत्येक वस्तु लयबद्ध है। बहती नदियों के कल–कल, पक्षियों का कलरव, सभी ग्रहों एवं तारक मण्डल का अपने–अपने मार्ग पर अपनी–अपनी गति से चलना, सूर्य का अपने समय पर उदय–अस्त

* विभागाध्यक्ष (संगीत) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

होना, धरती का अपनी धुरी पर एक लय के साथ नियम गति से घूमना एवं हृदय की धड़कन सभी कुछ तो लयबद्ध है। आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि वैज्ञानिकों का एक बहुत बड़ा समूह नृत्य के रहस्यों को उजागर करने में उसके विभिन्न आयामों के विकास की तरफ पूरा ध्यान दे रहा है। इस शाखा को 'डांस मेडिसिन' (नृत्य औषधि) का नाम दिया गया है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है हमारा अचेतन मन ऐसी कई नागवार बातों से भरा पड़ा है जिसे हम आम जीवन में अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं। उदाहरण के लिए आपके बॉस ने आपको किसी बात के लिए डांटा-झड़पा। आपको बहुत गुस्सा आया। आप उस गुस्से को अभिव्यक्त नहीं कर पाए, उसे पी गए। बचपन से अब तक हमारे माता-पिता ने समाज ने हमें जो रूप दिया उस प्रक्रिया में ऐसी बहुत सी बातें थीं जिन्हें हमने दबा दिया है। हाल ही में कैलिफोर्निया के एक डॉक्टर रॉकफोर्ड ने साठ शादी-शुदा जोड़ों पर अलग-अलग स्थितियों में नृत्य के प्रयोग करवाए। जिसके परिणाम आश्चर्यजनक हैं। उनके अनुसार एक अच्छे स्वस्थ संबंध के लिए अचेतन का साफ होना अत्यंत आवश्यक है। पति-पत्नि संबंधों में कलह का कारण समझना अत्यंत कठिन है। क्योंकि उनका अचेतन आपस में बहुत उलझ चुका है। डॉ. रॉकफोर्ड कहते है इस पर सीधे कार्य नहीं किया जा सकता। इसलिए नृत्य को एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया।

नृत्य अचेतन को सहज रूप से मुक्त करने में सक्षम है क्योंकि वह हमारे भीतर बहुत गहरे में विराजमान है। अगर आप माइक्रोस्कोप से शरीर के सबसे छोटे अणु को देखेंगे तो उसे भी आप नृत्य करता पाएंगे। जब आप मस्ती में संगीत के साथ लयबद्ध हो नृत्य करते हैं, उसमें डूब जाते हैं, ऐसी मुद्राएं लेते हैं जो कभी न ली हों, न कभी कदम जो उठाए हों-जब आप इस स्थिति में पहुंचते हैं तब आप मस्तिष्क के उस हिस्से को नहीं छूते जो हमारे जीवन को नियंत्रित करता है। हम मस्तिष्क के उस हिस्से से अनायास संबंधित हो जाते हैं जो गहरा है, अचेतन है। जैसे ही यह सेतु बनता है अचेतन की गठानें खुलती हैं और नृत्य द्वारा सहज रूप से अभिव्यक्त होने लगती है। ऐसे समय में नियंत्रित न रहने का सुझाव दिया जाता है।

डॉ. रॉकफोर्ड के प्रयोग में नृत्य के बाद साफ आंखों के साथ लोगों को जोड़ों में नृत्य करने को कहा जाता है। अलग-अलग लोगों के साथ नृत्य करने के पश्चात् पति और पत्नी एक साथ नृत्य करते हैं और अंततः गले मिलकर विश्राम को प्राप्त होते हैं। डॉ. रॉकफोर्ड कहते हैं यह घटना तभी संभव है जब पति-पत्नी अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक हों और कलह के पश्चात् भी एक-दूसरे के साथ रहने के इच्छुक हों। इस थैरेपी के पश्चात् नब्बे प्रतिशत जोड़ों का जीवन सरलता और खुलेपन से भर गया। अब जरूरत पड़ने पर वे इस सरल सी विधि का उपयोग अपने घर पर भी कर सकते हैं। करीबी संबंधों से उपजे चिड़चिड़पने, बेचैनी, तनाव, सिरदर्द, कमर दर्द और गुस्से में बिना किसी सीधे प्रयास के कमी पाई गई है। है न आश्चर्यजनक बात !

आइए नृत्य से होने वाले कुछ मनोशारीरिक फायदों की बात करते हैं – अगर नियमित रूप से तीस-चालीस मिनट नृत्य करते हैं तो पहला फर्क आपको अपनी मांसपेशियों में नजर आएगा। वे ज्यादा सुंदर, सुघड़ और स्वस्थ नजर आएंगी। आप पाएंगे कि आपके पैर, कमर, पेट और गर्दन की मांसपेशियां सशक्त हो गई हैं। आपकी कमर सीधी होगी और आप अपने आपको लंबा महसूस करेंगे। आपके शरीर से एक आत्मविश्वास प्रकट होगा जिसे आप चलने बैठने में महसूस कर सकते हैं। शरीर में ऊर्जा, सहनशीलता और ताकत का विस्तार होगा। आप पाएंगे कि शरीर अधिक लचीला हो गया है। अमेरिका के मेयो फाउंडेशन की एक रिसर्च के अनुसार नृत्य के पश्चात् अस्सी ने नब्बे प्रतिशत लोगों में मानसिक एवं शारीरिक तनावों में कमी पाई गई। नृत्य करने से शरीर में एक एण्डोर्फिस नामक हारमोन का निर्माण होता है जिससे मनोशरीर में स्फूर्ति आती है और भीतर एक स्वस्थ भाव का उदय होता है –

1. नृत्य शरीर की हड्डियों को मजबूती प्रदान करता है। खासकर पैर की हड्डियों को जिन पर शरीर का बोझ पड़ता है। बैंगलोर की नृत्यकार वैजयन्ती काशी विगत अनेक वर्षों से नृत्य चिकित्सा कर रहे है। परन्तु ये कुचिपुड़ी नृत्य के माध्यम से चिकित्सा कर रही है।
2. बैंगलोर के नृत्यकार डॉ. ए. वि. सत्यनारायण विगत् अनेक वर्षों से नृत्य चिकित्सा कर रहे हैं। परन्तु ये भरतनाट्यम नृत्य के माध्यम से चिकित्सा कर रहे हैं।
3. 'शिक्षाविद् सुप्रसिद्ध नृत्यागंना जया सुब्रहमण्यम जो दो दशक से बच्चों के साथ काम कर रही है उनका कहना है कि जो ध्वनि कानों को संतोष दे वह संगीत है अन्यथा शोर। जो सुन नहीं सकते, उसमें भी स्पर्श और शारीरिक अंगों के इस्तेमाल से संगीत लयात्मक संवेदना उत्पन्न करता है। मानसिक रूप से विकलांग बच्चे बुनियादी बातों को बताने में असमर्थ होते है। संगीत से लय उत्पन्न होती है जो खास मॉसपेशियों को गति देने की प्रेरणा देती है। सम्प्रेषण, कला विकसित करने के लिए सुनना सबसे महत्वपूर्ण हे,[3] सुप्रसिद्ध कर्नाटक संगीतकार डॉ0 एम0 बालमुरली कृष्णन जी ने अपना अधिकांश जीवन संगीत चिकित्सा में लगा दिया है। इसके लिए उन्होंने मद्रास (चेन्नई) में विपंची नाम से एक स्कूल की स्थापना की है। डॉ0 एम0 बालमुरली कृष्णन संगीत विज्ञान से मनोदैहिक रोगों जैसे-उच्च रक्तचाप, मधुमेह, और सर दर्द, आदि का इलाज करने में लगे है। कर्नाटक संगीत के विभिन्न रागों के सिंथेटिक साउण्ड कैप्सूल, के माध्यम से रोगी का मानसिक संतुलन बनाकर इलाज करते है,[3]

महाराष्ट्र के एक आयुर्वेदिक विशेषज्ञ डॉ0 बालाजी ताम्बे जी ने कुर्ला (महाराष्ट्र) की प्राचीन बौद्ध गुफाओं के निकट एक आत्म संतुलन ग्राम, नामक एक आयुर्वेदिक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की है जहॉ आयुर्वेद के साथ संगीत से भी रोगों का उपचार करते है। अपने अनुसंधान के दौरान डॉ0 ताम्बें ने पाया कि राग भूपाल और राग आसावरी निम्न रक्तदाब वाले व्यक्तियों के रक्तचाप को सामान्य बनाने में सहायक है। राग भैरवी तनाव मुक्त होने में सहायक है। संगीत शाईजोफ्रेनिया, अनिद्रा और एपिलप्सी के रोगों के उपचार में भी सहायक है।,[4]

तरह हमारे देश में अब संगीत चिकित्सा पर विचार अनुसंधान और प्रयोग होने लगा है।

निष्कर्ष –उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है। कि संगीत चिकित्सा पद्धति उच्च रक्त दाब निम्न रक्त दाब एवं तनाव संबधी बीमारियों में अच्छा प्रभाव दिखाती है। योग एवं अन्य शारीरिक व्यायाम के साथ यदि संगीत को भी दिनचर्या में जोड़ दिया जाये तो जीवन सुखमय हो जायेगा। **सर्वे सन्तु निरामया।**

संदर्भ ग्रंथ सूंची :–

1. संगीत पेज नं0 41 सितम्बर 1996
2. वनस्पति पर संगीत का जादुई प्रयोग, संगीत अप्रेल 1967
3. संगीत पेज नं0 41 सितम्बर 1996
4. डॉ0 मनोरमा शर्मा, स्पेशल एजुकेशन – म्युजिक थेरपी, पेज 129 (अनुवाद)

निमाड़ में राम भक्ति शाखा के सन्त दीनदास

डॉ. मधुसूदन चौबे *

प्रस्तावना – निमाड़ में भक्ति आंदोलन और सामाजिक धार्मिक पुनर्जागरण आंदोलन की लंबी परंपरा रही है। सगुण और निर्गुण संतों ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को नई दिषा दी। राम भक्ति शाखा के संतों में दीनदास जी का नाम भी सम्मिलित है। प्रस्तुत शोध पत्र में उनके जीवनवृत्त और शिक्षाओं का विवेचन किया गया है।

जीवन वृत्त – सन्त दीनदास का वास्तविक नाम सदाषिव था। 'उनका जन्म विक्रम सम्वत् 1892 (ईसवी सन् 1835)में हुआ था।'म उनके पिता श्री नरोत्तमदास शुक्ल मकड़ई राज्य के सिरोही नामक ग्राम के निवासी थे। पिता नार्मदीय ब्राह्मण थे और पुरोहित का परम्परागत कार्य करके अपनी आजीविका का निर्वाह करते थे। पिता की आय पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह के लिये पर्याप्त थी। परिवार में किसी प्रकार का अभाव नहीं था। घर में धर्म का वातावरण था। सभी सदस्य शास्त्र सम्मत धार्मिक क्रियाएँ रुचिपूर्वक सम्पन्न करते थे।

सदाशिव कुषाग्र बुद्धि का बालक था। विद्याध्न के साथ ही भक्ति में बचपन से ही लगाव उत्पन्न हो गया था। वे बाल्यावस्था से पुरोहित कार्य में अपने पिता के सहायक के रूप में सम्मिलित हो रहे थे। बालसुलभ खिलंदड़पन की अपेक्षा उनमें प्रारम्भ से ही प्रौढ़ गाम्भीर्य था। क्रमष: वे पुरोहिती के पैतृक कार्य में दक्ष होते चले गये और यही कार्य उनके जीवन-यापन का आधार बन गया।

पुरोहित कर्म में रत रहते हुये सदाषिव प्रभुभक्ति की ओर भी अग्रसर होते रहे। उनका अधिकांष समय पूजा-पाठ में व्यतीत होता था। भगवान श्रीराम उनके आराध्य देव थे। श्रीराम की भक्ति उनके जीवन का आधार भी थी और उद्धेष्य भी। उन दिनों निमाड़ के प्रसिद्ध तत्कालीन सन्त रंकनाथजी सदाषिव का आतिथ्य ग्रहण किये हुये थे। वे सदाषिव की रामभक्ति से बहुत प्रसन्न थे। इसी तरह सदाषिव पर रंकनाथजी के सन्तत्व का गहरा प्रभाव था। सदाषिव ने रंकनाथजी से दीक्षा ग्रहण कर ली और वे सदाशिव से सन्त दीनदास बन गये।

सन्त दीनदास सगुणोपासक थे। श्रीराम उनके इष्ट देव थे। वे प्रतिदिन घण्टों भगवान राम की उपासना करते थे। उनकी पूजा पद्धति सामान्य भक्त की पूजा पद्धति थी। इसमें कोई आनुष्ठानिक नियमों की पाबन्दी नहीं थी, बल्कि हृदय की निर्मलता की उच्चता थी।

पुरोहित के रूप में सन्त दीनदास ने अपने सिरोही ग्राम के साथ ही निमाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में अपने जजमानों के आवासों पर धार्मिक क्रियाकलाप सम्पन्न किये थे। सन्त रंकनाथ से दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त उन्होंने दूरस्थ इलाकों में आवाजाही न्यून कर दी थी। अपने प्रभाव के भौगोलिक क्षेत्र को प्रसारित करने की अपेक्षा वे अपनी आत्मा की परिषुद्धता में अधिक संलग्न हो गये।

रचनाएँ एवं उपदेश – सन्त दीनदास ने निमाड़ी में अनेक पदों की रचना की है। उनकी रचना का मुख्य उद्धेष्य प्रभु राम की भक्ति है। साथ ही उन्होंने नैतिक विकास से संबंधित अन्य विषयों पर भी शिक्षाप्रद पदों की रचना की है। सन्त दीनदास का आत्मबोध से संबंधित एक पदम इस प्रकार है-

मन रघुवर क्यों नहिं गावे, हरि छाँ अवर कस घ्यावऽ रे।
भयो कुपथकारी दुर्जन संगत, लघु लालच खऽ चाहे।
कल्पवृक्ष सम सन्त समागम, अवध राम रस भावऽ रे।
बहु साधन फल देतु न कलि मूँ, श्रम करि वय खऽ गमावे।
नाम-सुधा सरि त्यागि करि केऊँ, तू मृगजल खऽ धावऽ रे।
सन्त कल्पतरू अविचल छाया, सो तरू तर नहिं जावे।
मन अभिमान मोह गृह बांध के, कुमत छान छवावऽ रे।
सुरनरनाग असुर नप संनिध, जात न कोई जुड़ावे।
दीनदास आलसी कुपात्र से, राम के पेट समावऽ रे।

उन्होंने सन्त संगति करने पर बहुत बल दिया है। सन्त का सान्निध्य कल्प वृक्ष की तरह फलदायी होता है। दुर्जन लोगों का साथ एक क्षण भी नहीं करना चाहिये। यह कुपथ पर अग्रसर करता है। लालच जैसी बुराई, जो अन्य सभी दुर्गुणों को उपजाने वाली जमीन है, बुरे लोगों के साथ से ही व्यक्ति में आती है। सन्त रूपी वृक्ष की शीतल छाया में विचरण करने वाले सौभाग्यषाली प्राणी मोह, अभिमान और कुमति से मुक्त हो जाते हैं।

वे आलसी व्यक्ति को कुपात्र मानते थे। उनके अनुसार आलस्य से ग्रस्त व्यक्ति देह रूपी ईश्वर की अनमोल देन को व्यर्थ गँवा देता है। आलस्य का त्याग कर राम भजन में रत रहकर इहलौक और परलोक को सुधारने में विलम्ब नहीं किया जाना चाहिये।

वे रामकथा के सभी चरित्रों के उदात्त गुणों की व्याख्या कर, उनका अनुकरण करने की प्रेरणा देते थे। राम की वचनप्रियता और समन्वय की क्षमता उन्हें जितनी चित्ताकर्षक लगती थी, उतना ही उन्हें भरत का अद्धितीय त्याग भाव तथा शबरी की प्रतीक्षा एवं मातृवत् स्नेह लुभाता है। वे अपने अनुयार्यी से रामचरितमानस की प्रत्येक पंक्ति से शिक्षा ग्रहण करने का अनुरोध करते थे।

प्रभाव – सन्त दीनदास के अनुयार्यी के दो वर्गो के लोग थे। प्रथम वर्ग में वे व्यक्ति आते थे, जिन्होंने विभिन्न अवसरों पर रंकनाथ से पण्डिताई का कार्य करवाया था। प्रारम्भिक अवस्था में यह सम्बन्ध व्यावसायिक अधिक था। वे पौरोहित्य कर्म से आजीविका का अर्जन करते थे। पूजन कर्म के प्रति उनके शुद्ध भाव का प्रभाव उनके जजमानों पर बड़ा व्यापक पड़ता था। सन्त रंकनाथ से दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त वे पुरोहिती की अपेक्षा भक्ति में अधिक संलग्न हो गये थे। अनुयार्यी का दूसरा वर्ग उनके भक्त स्वरूप के प्रति श्रद्धाभाव रखता था।

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

निर्वाण एवं मूल्यांकन – सन्त दीनदास का देहावसान 64 वर्ष की अवस्था में 'कार्तिक शुक्ल चतुर्दषी विक्रम सम्वत् 1956 (ईसवी सन् 1899)'म को हुआ।

मसन्त दीनदास निमाड़ क्षेत्र में सगुण भक्ति की रामाश्रयी शाखा के प्रचारक थे। वे आत्म संतोषी प्रवृत्ति के धनी थे। जजमानों तथा अपने प्रभु श्रीराम से भौतिक धन के रूप में उन्होंने उतना ही माँगा, जितना देह के पालन के लिये अपरिहार्य था। जनश्रुति में एक कथा प्रचलित है, जिसके अनुसार दीनदास को भगवान श्रीराम से प्रतिदिन की आवष्यकताओं की पूर्ति के लिये रोज एक रुपया प्राप्त होता था। इस कथा का उल्लेख प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के परिषिष्ट में विस्तार से किया गया है। उनकी रचनाएँ एवं उपदेष भक्ति साहित्य की बहुमूल्य धरोहर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नर्मदांचल के सन्त कवि, लेखक– बाबूलाल सेन, प्रकाशक– माहिष्मती प्रकाशन, महेश्वर, संस्करण– 1995, पृष्ठ– 31.
2. निमाडी और उसका साहित्य, लेखक– डॉ. कृष्णलाल हंस, प्रकाशक– हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण– 1956., पृष्ठ– 294-95.
3. नर्मदांचल के सन्त कवि, लेखक– बाबूलाल सेन, प्रकाशक– माहिष्मती प्रकाशन, महेश्वर, संस्करण– 1995, पृष्ठ– 32.

****

निमाड में सगुण पथ के पथिक सन्त फकीरानाथ

डॉ. मधुसूदन चौबे *

प्रस्तावना – मध्यप्रदेष के प्रमुख भू-भाग निमाड़ का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अवदान स्तुत्य रहा है। इस क्षेत्र में हुए भक्ति आंदोलन का प्रवाह बीसवीं सदी में भी तीव्रता के साथ जारी रहा। निमाड़ के प्रमुख सन्तों में फकीरानाथ का नाम भी उल्लेखनीय है। वे सगुण पथ की राम भक्ति और कृष्ण भक्ति दोनों के अनुयायी थे। इस शोध पत्र में उनके व्यक्तित्व और योगदान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

व्यक्तित्व – सन्त फकीरानाथ का जन्म खरगोन शहर से छह मील दूर स्थित उमरखली नामक ग्राम में विक्रम सम्वत् 1943 (ईसवी सन् 1886) में हुआ था। बड़े होने पर वे खण्डवा चले गये और कई वर्षों तक खण्डवा में रहे।

इनका जन्म एक निर्धन परिवार में हुआ था। इनके माता-पिता मजदूर थे। परिवार का पालन-पोषण कठिनाई से होता था। माता-पिता के नाम तथा उनसे संबंधित अन्य सूचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

इनका प्रारम्भिक जीवन ग्राम उमरखली में अभावों में व्यतीत हुआ। उन्होंने भाषाई ज्ञान प्राप्त किया था तथा धार्मिक आख्यानों की जानकारी प्राप्त की थी। युवा होने पर उनका विवाह हुआ। उनकी पत्नी का नाम ज्ञात नहीं हो पाया। उनके एक पुत्र का उल्लेख विभिन्न स्त्रोतों में मिलता है, जिनका नाम गोपालनाथ था।

उनके द्वारा सृजित भक्ति पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुरु के प्रभाववश इनके जीवन का ध्येय परिवर्तित हो गया। सांसारिकता का स्थान आध्यात्मिकता ने ग्रहण कर लिया। वे गुरु सेवा एवं सद्विचारों के सृजन तथा प्रचार-प्रसार में रत हो गये। ऐसा प्रतीत होता है कि वे वे परमात्मा को अपना गुरु मानते थे।

सन्त फकीरानाथ भक्ति के सगुण पथ के पथिक थे। वे कृष्ण और राम दोनों के उपासक थे।

उन्हें ईश्वर का वह रूप ज्यादा आकर्षित करता था, जिसमें वे समाज के अपेक्षाकृत निर्बल वर्ग की भेंट को प्राथमिकता से या उत्साह से ग्रहण करते थे। वे श्रीराम और श्रीकृष्ण की ऐसी ही लीलाओं के आधार पर अपने पदों का ताना-बाना बुनते थे। मूर्ति पूजा, नाम स्मरण एवं भजनों का गायन उनकी साधना के अवयव थे।

योगदान – उनका कर्मक्षेत्र उमरखली, खरगोन एवं खण्डवा तथा उसके आसपास के क्षेत्र थे। उनके नाम के साथ 'साधु' शब्द का प्रयोग किया गया है। भ्रमण साधु की प्रमुख प्रवृत्ति होती है। तदनुरूप सन्त फकीरानाथ भी धर्म यात्राएँ किया करते थे।

'सन्त फकीरानाथ की रचनाएँ निमाड़ी लोक साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ मानी जाती हैं।'म'खण्डवा से प्रकाशित जाति सुधार नामक पत्र में सन् 1911-12 में उनकी भक्तिपरक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।'म' उनकी रचनाओं का मुख्य विषय विरक्ति भावना और भगवत भक्ति है। उनका यह पद विशेष प्रसिद्ध है-

भीलनी का बोर, सुदामा का तान्दूल, खिचड़ी खाई बाई करमा।
विदुर की भाजी प मन हुयो राजी, प्रेम सी जीमऽ घनष्यामा।।
नागनाथ को देऽळ फिरायों, आयों पंढरपुर गामा।
बादशाह घर आइ दाम चुकायों, भगत बचाया श्री दामा।।
मांडवगढ़ मॅ गाय जिवाड़ी, बढ़ी हुई बोली हामा-हामा।
गुरु का चरण सी कय नाथ फकीरा, अरज सुणों म्हारी रामा।
गाँव उमरखळी प्रभु सुणजों सामळ ते पहिचानी म्हाराधामा।।

सन्त फकीरानाथ धर्म एवं समाज में व्याप्त बुराइयों से व्यथित थे। धर्मस्थल पर धनी लोगों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। निर्धन वर्ग के लोग स्वयं को उपेक्षित महसूस कर रहे थे। ऐसे में फकीरानाथ ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से बताया कि ईष्वर विभेद नहीं करता है। उसके लिये सम्पन्नता या सषक्तता नहीं, अपितु भक्त के अन्त:करण की पवित्रता ही महत्व रखती है। यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो शबरी, सुदामा, करमा बाई या विदूर को ईष्वर की कृपा प्राप्त नहीं होती। भीलनी शबरी के झूठे बैरों, फटेहाल सुदामा के माँगे हुये चावल, करमा बाई की खिचड़ी और महात्मा विदूर की भाजी ग्रहण करने के उदाहरणों को गा-गाकर उन्होंने विषुद्ध भक्ति भाव के महत्व को प्रसारित किया।

उन्होंने ईश्वर में आस्था रखने का उपदेश दिया। वे कहते थे कि सुख और दु:ख सभी ईश्वर की इच्छा के परिणाम है, अत: समभाव से इन्हें स्वीकार करना चाहिये। ईश्वर अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं, अत: विचलित नहीं होना चाहिये। अपने पद में उन्होंने लिखा है कि संकट यदि भक्त के सामर्थ्य से बड़ा हो जाता है तो प्रभु स्वयं प्रकट होकर अपने भक्त की रक्षा करते हैं। श्रीदामा नामक भगत को बचाने के लिये भगवान ने बादषाह के घर आकर दाम चुकाये थे।

उन्होंने गुरु की बहुत महिमा गाई है। वे कहते थे कि गुरु चरणों में बैठकर ज्ञान और मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। गुरु की कृपा के बिना विरक्ति की उत्पत्ति नहीं होती है तथा मानव सांसारिक बंधनों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता है। पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह अवश्य करना चाहिये, लेकिन मोहग्रस्त नहीं होना चाहिये। ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिये बाह्य आडम्बरों की कोई भूमिका नहीं होती है।

सन्त फकीरानाथ के विचार तत्कालनी समाचार पत्र में प्रकाषित होने के बाद उनके अनुयायियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी। उनकी कीर्ति सामान्य जनों के साथ-साथ बौद्धिक वर्ग में भी थी। दैन्य भाव से भक्ति की उनकी मनोवृत्ति के कारण समाज के निर्धन वर्ग में वे विषेष स्वीकार्य

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

हो गये थे। ग्राम उमरखली और खण्डवा में उनके अनुयायी बड़ी संख्या में थे। 62 वर्ष की अवस्था में विक्रम सम्वत् 2005 (ईसवी सन् 1948) में उनका स्वर्गारोहण हुआ।

मूल्यांकन – सन्त फकीरानाथ ने साहित्यिक महत्व के पदों की रचना की और निमाड़ी लोक साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्तक बने। उन्होंने अपनी शिक्षाओं से समाज के शोषित एवं वंचित वर्ग के लोगों में नई जीवन शक्ति प्रवाहित की। उन्होंने सगुण भक्ति का समर्थन करने के साथ ही इससे सम्बद्ध कर दिये गये कतिपय आडम्बरों का खण्डन किया। उन्होंने राममार्ग और कृष्णमार्ग की संकीर्णता में न बँधकर दोनों अवतारों की स्तुति कर उनके एक्य को जनसामान्य के समक्ष प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. निमाडी और उसका साहित्य, लेखक– डॉ. कृष्णलाल हंस, प्रकाशक– हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण– 1956, पृष्ठ– 295.
2. निमाड़ी साहित्य के कलमकार–कलाकार, सम्पादक– बाबूलाल सेन, प्रकाशक– माहिष्मती प्रकाशन, महेश्वर, संस्करण– 2003, पृष्ठ– 73.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) Jan. to March 2015, E- Journal
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

जैव मण्डल में कार्बन-उत्सर्जन की भूमिका

डॉ. दिवाकर प्रसाद चतुर्वेदी *

प्रस्तावना – पृथ्वी के समस्त जीव मिलकर जैव मण्डल का निर्माण करते हैं। ऐसा वैज्ञानिकों का मत है कि जैव मण्डल का विकास 3.5 अरब वर्ष पूर्व शुरू हुआ था। जैव मण्डल का प्रमुख घटक मानव है। समस्त जीवों मे अपने आपको पर्यावरण के अनुसार रूपान्तरित किया है लेकिन मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण को अपनी आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। विकास की प्रक्रिया में मानव ने पर्यावरण का अत्यधिक दोहन किया है। परिणामत: उसकी गुणवत्ता में निरंतर ह्रास हो रहा है। औद्योगिक क्रान्ति मानव विकास का महत्वपूर्ण कारक है। स्वस्थ जैव विकास के लिए संतुलित पारिस्थितिकी आवश्यक है, किन्तु संसाधनों के गलत ढंग से उपयोग के कारण पर्यावरण बिगड़ता है जो पारिस्थितिकी को असन्तुलित बना देता है।

वायुमण्डल में विभिन्न एक निश्चित अनुपात में पाई जाती है जैसे **नाइट्रोजन 78.09 प्रतिशत, ऑक्सीजन 20.95 प्रतिशत, आर्गन 0.93 प्रतिशत, कार्बन डाइआक्साईड 0.03 प्रतिशत** किन्तु जब मानवीय या प्राकृतिक कारणों से गैसों की निश्चित मात्रा तथा अनुपात में अवांछनीय परिवर्तन हो जाता है तो वह जैव मंडल के लिए खतरा उत्पन्न करता है। औद्योगिक क्रांति ने **कार्बन डाइआक्साईड (Co_2)** का योग 50 प्रतिशत से अधिक कर दिया है। **कार्बन मोनोआक्साईड (Co)** यह जीवाश्म ईंधन के आंशिक दहन पर उत्सर्जित होता है, जिसमें ऑटो मोबाइल से 50 प्रतिशत उत्सर्जन होता है। **सल्फर डाइऑक्साईड (So_2)** वायुमंडल में इसकी सान्द्रता साँस लेने में समस्या उत्पन्न करती है। **हाइड्रो कार्बन कार्बनिक** पदार्थो के अपघटन के समय खास प्रकार के पौधों (चीड़ का पेड़) से इसकी उत्पत्ति होती है। **कणकीय पदार्थ** इसमें धूल, धुआँ, एस्बेस्टस, कीटनाशक आदि शामिल हैं।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य औद्योगिकरण तथा अन्य कारणों से कार्बन उत्सर्जन से जीव-जगत् पर पड़ने वाले प्रभावों की पहिचान करना, परिणाम ज्ञात करना तथा कार्बन उत्सर्जन में कमी हेतु सुझाव प्रेषित करना है।

शोध विधि – समग्र के चुनाव के लिए बहुस्तरीय निर्देशन पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन हेतु यद्यपि विश्व को ईकाई माना है किन्तु इसमें भारत का विशेष संदर्भ लिया गया है। अध्ययन में मुख्यत: द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या – बढ़ती जनसंख्या तथा उसके क्रियाकलापों के कारण पिछली शताब्दी से जैव मण्डल तेजी से बदल रहा है। भूमण्डलीय बदलाव के प्रमुख कारण मानव द्वारा संसाधनों का दुरूपयोग, वनभूमि का विनाश, जैव ईंधन के कारण प्रदूषण, हरितग्रह गैसों के बड़े पैमाने पर उत्सर्जन तथा बड़े पैमाने पर भूमि उपयोग भू-आवरण में परिवर्तन है। प्रमुख ग्रीन हाउस गैसें कार्बन डाइआक्साईड, नाइट्रोजन आक्साईड, मिथेन, ओजोन, जलवाष्प तथा क्लोरोफ्लोरो कार्बन आदि हैं।

कार्बन डाइ-ऑक्साईड – ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैसों में कार्बन डाइ-ऑक्साईड प्रमुख हैं। वायुमण्डल में इसकी मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है। प्रमुख रूप से ग्रीनलैंड तथा अण्टार्कटिका के हिम आवरणों के बीच बने बुलबुलों के अन्दर की वायु के रासायनिक विश्लेषणों ने यह दर्शाया कि आज से लगभग 20 हजार वर्ष पूर्व अंतिम हिमाच्छावन के समय कार्बन डाइ-ऑक्साईड की सान्द्रता 200 पी.पी.एम.वी. थी, जो औद्योगिक क्रांति के पूर्व 280 पी.पी.एम.वी. हो गई। तीव्र औद्योगीकरण तथा वाहनिक प्रदूषण के कारण विगत दो सौ वर्ष में इसकी सान्द्रता में अत्यधिक वृद्धि हुई। 1990 में यह बढ़कर 353 पी.पी.एम.वी. हो गई। बीसवीं शताब्दी के अन्त तक यह बढ़कर 379 पी.पी.एम.वी. हो जाने की आशका है। **अर्थात् विगत दो सौं वर्ष में वायुमण्डल में कार्बन डाइ-ऑक्साईड की सान्द्रता में हुई वृद्धि औद्योगिक क्रांति से पूर्व के लगभग 20 हजार वर्ष की वृद्धि के बराबर है।**

संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम की रिपोर्ट के अनुसार, प्रतिवर्ष 380 करोड़ टन कार्बन डाइ-ऑक्साईड वायुमण्डल में प्रवेश करके उसे प्रदूषित कर रही है। औद्योगिक क्रांति के बाद उपजे ग्रीन हाउस प्रभाव से कार्बन डाइ-ऑक्साईड का योगदान 60 प्रतिशत से भी अधिक हे। **वायुमण्डल में कार्बन डाइ-ऑक्साईड छोड़ने वाले देशों में विकसित देश सबसे आगे हैं जो विश्व का तीन-चौथाई उत्सर्जन करते हैं।** **रियो सम्मेलन** में प्रस्तुत रिपोर्टो के आधार पर विश्व में कार्बन डाइ-ऑक्साईड के कुल निस्सरण में अकेले उत्तरी अमेरिका महाद्वीप की हिस्सेदारी लगभग 25 प्रतिशत है। विकासशील देशों में चीन सबसे आगे जो 10.4 प्रतिशत निस्सरण करता है। संपूर्ण अफ्रीका महाद्वीप द्वारा मात्र 2.6 प्रतिशत कार्बन डाइ-ऑक्साइड का उत्सर्जन किया जाता है। जो अकेले ब्रिटेन के बराबर है। भारत का योगदान इसमें 2.8 प्रतिशत है।

वाहनों, उद्योगों, ताप विद्युत ग्रहों व घरों में जीवाश्म ईंधन (कोयला, खनिज तेल, लकड़ी, प्राकृतिक गैस) के जलने, मानव सहित सभी प्राणियों की श्वसन क्रिया से, ज्वालामुखी उद्गार, वनस्पति के सड़ने गलने, आदि स्त्रोतों से वायुमण्डल में कार्बन डाई-ऑक्साईड गैस पहुँचती हैं। बढ़ते औद्योगीकरण तथा कटते वनों के कारण वायुमण्डल में कार्बन डाइ-ऑक्साईड की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है।

मौसम के स्थायित्व तथा जीवमण्डल के विभिन्न क्रिया-कलापों के संचालन के लिए आवश्यक है कि कार्बन डाई-ऑक्साईड की मात्रा 2,300 अरब टन बनी रहे। वायुमण्डल में विभिन्न स्त्रोतों से पहुँचने वाली कार्बन डाई-

* प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय माधव विज्ञान महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र)भारत

ऑक्साईड की बड़ी मात्रा को अवशोषित कर वायुमण्डल में इसका संतुलन बनाए रखने में समुद्रों तथा वनस्पति की प्रमुख भूमिका है। **धरातल के 70 प्रतिशत से भी अधिक भाग पर फैले समुद्र अपने में वायुमण्डल से 50 गुना अधिक कार्बन डाई–ऑक्साईड गैसे समाए हुए हैं।** समुद्रों द्वारा अवशोषित कार्बन डाई–ऑक्साईड की कुछ मात्रा जल में घुली रहती है किंतु अधिकांश भाग कार्बोनेट यौगिकों में परिवर्तित होता रहता है। समुद्रों और वायुमण्डल के मध्य प्रतिवर्ष लगभग 200 अरब टन कार्बन डाई–ऑक्साईड का आदान–प्रदान होता है। वायुमण्डल की कार्बन डाई–ऑक्साईड को सोखने का सबसे बड़ा साधन वनस्पति जगत् है। वनस्पति द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में प्रयुक्त की गई कार्बन डाई–ऑक्साईड ऑक्सीजन में परिवर्तित होती रहती है। **पेड़–पौधे प्रति वर्ष वायुमण्डल से 60 अरब टन कार्बन डाई–ऑक्साईड अवशेषित करते हैं,** किन्तु तीव्र औद्योगिकरण, जीवाष्म ईंधन के दहन में वृद्धि तथा वनों की कटाई के कारण समुद्रों व पेड़–पौधों द्वारा अवशोषण की तुलना में वायुमण्डल में छोड़ी जाने वाली कार्बन डाई–ऑक्साईड की दर अधिक होने से वायुमण्डल में इसकी मात्रा निरंतर बढ़ रही है। विगत 100 वर्षों में कार्बन डाई–ऑक्साईड की मात्रा में 27 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप भूमण्डलीय ताप में वृद्धि हो रही है। **विगत 10 दशकों में किए गए अध्ययनों के अनुसार पृथ्वी के तापमान की वृद्धि करने में कार्बन डाई–ऑक्साईड का योगदान 57 प्रतिशत है।**

ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन

देश	**उत्सर्जन (अरब टन कार्बन में)**
संयुक्त राज्य अमेरिका	1,000
सी.आई.एस.	690
ब्राजील	610
भारत	230
जापान	220

(Source :- `India Today' June 15, 1992).

वायुमण्डल में ग्रीन हाऊस गैसों का सान्द्रण

गैस	**सान्द्रण**
कार्बन डाइ–ऑक्साईड	353 पी.पी.एम.वी.
मीथेन	1.72 पी.पी.एम.वी.
सी.एफ.सी.–11	280 पी.पी.एम.वी.
सी.एफ.सी.–12	484 पी.पी.एम.वी.
नाइट्रस ऑक्साईड	310 पी.पी.एम.वी.

(Source :- U.N. First Assessment Report on Climate Change-1990)

विभिन्न स्त्रोतों से मीथेन का उत्पादन

स्त्रोत	**उत्पादन (प्रतिशत में)**
प्राकृतिक दलदली भूमि	22
धान की खेती	21
मवेशी	15
जैव मात्रा को जलाना	8
जमीन पाटना	8
दीमक	8
समुद्री जल	3
खनन, गैस ड्रिलिंग व अन्य	315

(Source :- U.N. First Assessment Report on Climate Change-1990)

कार्बन उत्सर्जन के परिणाम –

1. **भूण्डल में ताप वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन –** पृथ्वी के तापमान में वृद्धि मानव जनित ग्रीन हाउस प्रभाव का एक प्रमुख दुष्परिणाम है। इसकी ओर विश्व समुदाय का ध्यान आकृष्ट करने के लिए 1989 में पर्यावरण दिवस पर **संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम** द्वारा **भूमण्डलीय तापन : भूमण्डलीय चेतावनी** नामक नारा दिया गया। 1400 ई. के बाद से अब तक के तापमानों का अध्ययन करके वैज्ञानिकों ने पाया कि वर्ष 1990, 1995 और 1997 अब तक के सबसे गरम वर्ष रहे हैं। ग्रीन हाउस गैसों का निरंतर बढ़ना इसका प्रमुख कारण हैं शोधकर्ता **माइकल मान** के अनुसार, वर्ष 1995 और 1997 में से एक को सबसे गरम वर्ष माना जा सकता है। इसका आंकलन तट पर या समुद्र की सतह पर तापमान के आंकलन से या दोनों को ही मिलाकर किया जा सकता है। जब तट और समुद्री सतह के तापमान को संयुक्त किया गया तो पता चला कि वर्ष 1995 और 1997 में तापमान बीसवीं शताब्दी के औसत तापमान से 0.30 डिग्री सेल्सियस अधिक रहा।

2. **समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि –** विश्व के औसत तापमान में वृद्धि के कारण ध्रुवीय क्षेत्रों तथा पर्वतीय हिम शिखरों की बर्फ पिघलने से समुद्रों का जल स्तर ऊपर उठेगा। यदि पृथ्वी के तापमान में 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है तो बर्फ के पिघलने से समुद्र की सतह 60 सेमी ऊपर उठ जायेगी। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार, 2050 तक पृथ्वी के तापमान में 1.5 सेल्सियस से 4.5 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि हो सकती है। पृथ्वी के तापमान में 3.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने पर ध्रुवीय क्षेत्रों के विशाल हिमखण्ड पिघल जायेंगे तथा समुद्री जलस्तर में 1.5 मीटर तक की वृद्धि हो सकती है। समुद्री जल स्तर में वृद्धि से अनेक समुद्र तटीय भाग जलमग्न हो जायेंगे जो कि सघन जनसंख्या के क्षेत्र है।

3. **हिमानी संकुचन तथा बाढ़ –** विश्व तापमान में वृद्धि के कारण हिमनदों की बर्फ पिघलने की दर में वृद्धि होगी तथा उनका आकार छोटा होता जायेगा। जिन नदियों के उद्गम स्त्रोत पर्वतीय हिमनद हैं, उनमें बर्फ के अधिक पिघलने से भीषण बाढ़ आ सकती है। हिमानियों के पिघलने की दर में वृद्धि होने से उनके पीछे हटने के अनेक उदाहरण मिलते है। हिमालय क्षेत्र में हिमनद सिकुड़ते जा रहे है। गंगोत्री हिमनद मूल स्थान से 19 किमी दूर गौमुख तक पहुंच गया है।

4. **पेड़ पौधों पर प्रभाव–** कम तापमान पर जीवित रहने वाले पौधै नष्ट हो जायेंगे। सूखे व आग के कारण वनों को अत्यधिक हानि होगी तथा पौधों की अनेक प्रजातियां लुप्त हो जायेंगी। इनके स्थान पर हानिकारक प्रजातियां पनप सकती है।

5. **जन्तुओं पर प्रभाव –** जिन प्राणियों की ताप सह्य सीमा कम है, तापमान बढ़ने पर उनकी मृत्यु हो जायेगी। ठण्डे समुद्रों में निवास करने वाले जलीय जीवों को हानि होगी। समुद्री जलस्तर में वृद्धि के कारण तटवर्ती भागों के सघन वनों तथा द्वीपों पर निवास करने वाले प्राणियों का जीवन खतरे में पड़ जायेगा। अनावृष्टि के कारण प्राकृतिक चरागाहों के नष्ट होने से चरागाहों पर निर्भर जीवों को अत्यधिक हानि होगी।

6. **कृषि पर प्रभाव –** ऋतुचक्र में बदलाव का सर्वाधिक प्रभाव कृषि पर पड़ेगा। वर्षा के प्रतिरूप में परिवर्तन होने पर कृषि प्रणालियां बदल जायेगी ऐसा अनुमान है कि उत्तारी अमेरिका अधिक गरम तथा शुष्क होगा जिससे

उत्तारी अमेरिका के देशों का खाद्यान्न उत्पादन घट जायेगा। दूसरी ओर उत्तारी तथा पूर्वी **अफ्रीका, मध्यपूर्व, भारत, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया, मेक्सिको,** आदि अधिक गरम तथा आर्द्र होंगे जिससे खाद्यान्न उत्पादन प्रभावित होगा।

7. मानव पर प्रभाव– ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण प्रकृति में होने वाले किसी भी परिवर्तन के दुष्प्रभाव से मानव बचा नहीं रह सकता है। मानव जनित ग्रीन हाउस प्रभाव मानव को ही सर्वाधिक क्षति पहुंचायेगा।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष –कार्बन उत्सर्जन से मानव जाति के लिये ही नहीं अपितु संपूर्ण जीवमण्डल के लिये खतरा उत्पन्न हो गया है इसके व्यापक दुष्परिणामों को देखते हुए कुछ प्रमुख सुझाव इस प्रकार है –

1. ग्रीन हाउस प्रभाव के लिए सर्वाधिक योगदान करने वाली कार्बन डाई ऑक्साइड गैस की मात्रा में कमी लाने के लिए जीवाश्म ईंधन के दहन में कमी लानी होगी। इसके लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. व्यापक पैमान पर हो रहे वन विनाश को रोकने के साथ ही वन क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए।
3. मानव व पशु जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के विभिन्न उपायों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
4. प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग को सीमित किया जाए तथा वैकल्पिक स्रोतों का विकास किया जाए।
5. भूमि उपयोग की वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन किया जाए।
6. स्वचालित वाहनों तथा उद्योगों में ऐसे उन्नत उपकरण लगाये जायें, जिससे प्रदूषित गैसों का उत्सर्जन कम से कम हो तथा वायुमण्डल में प्रवेश से पूर्व उनका विघटन हो जाए।
7. क्लोरो फ्लोरो कार्बन जैसे मानव जनित घातक रसायनों के उत्पादन को निम्नतम स्तर पर लाकर इनके विकल्प खोजे जाएं।
8. रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग सीमित मात्रा में किया जाए तथा इनके स्थान पर जैव खाद का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पर्यावरण तथा प्रदूषण : डॉ. अरूण रघुवंशी तथा डॉ. चंद्रलेखा रघुवंशी, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल ।
2. पर्यावरण–रसायन : श्रीकांत केशव पंडित, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल ।
3. देश का पर्यावरण : अनुपम मिश्र एवं साथी, पर्यावरण एवं विज्ञान प्रकोष्ठ, गांधी प्रतिष्ठान, नई दिल्ली ।
4. पर्यावरण शिक्षा : डॉ. पंकज श्रीवास्तव, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल ।
5. पर्यावरण पारिस्थितिकी एवं स्वास्थ्य : डॉ. वी.बी. सक्सेना ।
6. Man and Environment : A. Robert, Penguin Books.
7. Plant, Man and Ecosystem : W.D. Billings, Macmillan.
8. Air Pollution : H.C. Perkins, Mc Graw Hill Kogakusha Ltd. Tokyo.
9. Noise Control in Industries : J.D. webb, Joh Weily and Sons, New York.
10. Wild Life biology : R.F. Dasmenn, John wiley and sons Inc., Now York.

****

शक्तिशाली केन्द्र की अवधारणा

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आर्य * डॉ. शीला आर्य **

प्रस्तावना –डॉ.अम्बेडकर के अनुसार राज्य एक उपयोगी तथा आवश्यक संस्था है उनकी यह मान्यता थी कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था जो कि सदियों से अनेक बुराइयों से ग्रसित है उनमें राज्य के माध्यम से ही सुधार किया जा सकता है। राज्य का कार्य समाज की बहुमुखी उन्नति करना है। इस दृष्टि से डॉ.अम्बेडकर लोक कल्याणकारी राज्य के समर्थक थे।

डॉ.अम्बेडकर के अनुसार प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था मिश्रित प्रकृति की होती है उसमें अनेक विभिन्नताएं विद्यमान रहती है जिसका दर्शन हमें विभिन्न प्रकार के लोगों, भाषाओं, रीति-रिवाजों, धर्मों, नैतिक संहिताओं आदि में होता है इनमें से कुछ सामाजिक इकाईयां मजबूत होती है तथा कुछ समुदाय कमजोर होते है। उन्होने भारत की वर्ण व्यवस्था का इस संबंध में उदाहरण दिया। इसके अतिरिक्त उन्होने कहा केवल भारत में ही नहीं वरन् प्राचीन यूनानी नगर राज्यों में भी समाजों में दलित एवं दास बडी मात्रा में पाए जाते है। उनकी भावना थी कि ईश्वर ने सभी व्यक्तियों को समान रूप से जन्म दिया है तो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अन्तर क्यों ? व्यक्तियों के बीच पारसपरिक घृणा क्यों ? एक व्यक्ति का खून, खून है दूसरे का पानी, ऐसा क्यों ? एक व्यक्ति आजीवन आराम करता है, दूसरा आजीवन ही नहीं उसकी आने वाली पीढ़ियां भी रात दिन कोल्हू के बैल की तरह पीसती है आखिर ऐसा क्यों ?

दलितों की लड़ाई को प्राथमिकता देने के कारण बाबा साहेब ने मनु स्मृति द्वारा पोषित सनातन धर्म की सड़ी गली अमानवीय समाज व्यवस्था पर निर्मम कटु प्रहार किये। संभवत: हिन्दू समाज के कर्मकाण्ड तथा अन्यायपूर्ण विधि-निषेधों पर खुलकर प्रहार करने वाले वे दलित वर्ग में से पहले व्यक्ति थे। 25 दिसम्बर 1927 को महद की एक सभा में उन्होंने दलितों पर अन्याय की जड़ 'मनुस्मृति'को सार्वजनिक रूप से जलाकर हिन्दू समाज के विरूद्ध संघर्ष का बिगुल बजा दिया। परिणामस्वरूप तत्कालीन हिन्दू समाज उन्हें अपना दुश्मन समझने लगा और उन्हें हिन्दू धर्म विनाशक कहा गया। अस्पृश्य जाति के मानव अधिकारों के लिये भारत में लंबी मैदानी लड़ाई तो अम्बेडकर ने लड़ी किन्तु लंदन में आयोजित तीन गोलमेज सम्मेलनों के माध्यम से भी कानूनी लड़ाई में, मैकडोनल्ड अवार्ड जिसे 'कम्यूनल अवार्ड' भी कहते है प्राप्त किया। अम्बेडकर के इस आजीवन संघर्ष का सुखद अंत उनके माध्यम से भारतीय संविधान में सभी नागरिकों के लिये समान मानव अधिकारों का प्रावधान किये जाने से हुआ। अंतोगत्वा बाबा साहेब को जो श्रेय मिला वह अपूर्व है।

11 जनवरी 1950 को बम्बई दलित जाति फेडरेशन ने बाबा साहेब को स्वर्ण पात्र में भारतीय संविधान की प्रति भेंटकर सम्मानित किया। तब बाबा साहेब ने कहा कि पिछले 20 सालों से सवर्णो तथा कांग्रेसी नेताओं ने मुझे मुस्लिम समर्थक तथा ब्रिटिश समर्थक, हिन्दू विनाशक एवं स्वतंत्रता विरोधी नेता कहकर निंदित किया, अब मुझे आशा है कि जो काम मैंने संविधान के निर्माण में किया है, उसमें मुझे वे सही रूप में समझ सकने में समर्थ होंगे और उन झूठे आरोपों को तिलांजलि दे देगें, जिन्हें वे मुझ पर लगाते आये है।

डॉ. अम्बेडकर की दलितों के हित रक्षा के लिये प्रतिबद्धता उनके इस कथन से स्पष्ट है 'मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं उन पद दलितों की सेवा एवं हित में मरूँ जिनके बीच मेरा जन्म हुआ, पालन पोषण हुआ, और रह रहा हूँ। मैं अपने इस शुभ कार्य से एक इंच भी इधर-उधर नहीं हटूंगा। निन्दकों द्वारा उग्र निरूत्साही आलोचना की तनिक भी परवाह नहीं करूंगा।' गोलमेज सम्मेलन के निर्णय के माध्यम से दलितों को जब राजनीतिक अधिकार (कम्यूनल अवार्ड के रूप में) प्राप्त हुआ तब यह स्पष्ट हो गया कि स्वतंत्रता संग्राम तथा देश के समााजिक स्वरूप में, अब मुसलमानों के समान्तर दलितों का भी हिन्दूओं से अलग वर्ग स्वीकार कर लिया गया है। हिन्दू समाज के लिये यह सबसे बड़ा आघात था कि समाज का एक बड़ा वर्ग टूटने के कगार पर पहुँच गया है। अत: इस अवार्ड के विरोध में महात्मा गांधी 22 सितम्बर 1932 को यरवदा जेल में आमरण अनशन पर बैठ गये। देश में तहलका मच गया। अनशन का समय बढ़ता गया। देश चिन्ता में डूब गया। गांधी ने भी हिन्दू समाज की एकता के लिये अपने प्राणों को दाँव पर लगा दिया था। अम्बेडकर किसी भी स्थिति में कदम से पीछे हटने को तैयार नहीं थे। गहन चिंता और अनेक दबावों के बीच राष्ट्रपिता के प्रति हार्दिक अनुराग व सम्मान तथा हिन्दू धर्म व समाज की एकता के लिये प्रखर, तर्कवादी अम्बेडकर ने निर्णायक क्षणों में भावुक होकर ही 'पूना पेक्ट' स्वीकार कर गांधी के सामने समर्पण कर दिया।

डॉ. अम्बेडकर के दलित उद्धार कार्यक्रम की पृष्ठभूमि में हिन्दूओं द्वारा सदियों से दलितों पर हुए निर्मम अत्याचार की दारूण गाथा थी। इस सच्चाई से गांधीजी परिचित थे। देश में हिन्दू धर्म की एकता को बनाये रखने के लिये भी गांधी ज्यादा चिंतित थे। अत: उन्होंने भी स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों के समान्तर हरिजन कल्याण कार्यक्रम को प्राथमिकता दी थी। यद्यपि गांधी और अम्बेडकर में मतभेद रहे, क्योंकि अम्बेडकर ज्यादा उग्र व क्रांतिकारी थे। उन्होंने कई बार गांधीजी के विचारों की कटु आलोचना की तो उस पर गांधीजी की प्रतिक्रिया उल्लेखनीय है 'डॉ. अम्बेडकर के लिए मेरे मन में गहरा सम्मान है। उन्हें मेरे प्रति कटु आलोचना का सब प्रकार से अधिकार है। यह तो उनका आत्म संयम है कि वे हमारा सिर नहीं फोड डालते। वे आज प्रत्येक हिन्दू को अछूतों का पक्का विरोधी मानते है और यह सर्वथा स्वाभाविक हैं।

* प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

गांधीजी का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि गांधीजी तत्कालीन परिस्थिति में हिन्दूओं के प्रति डॉ. अम्बेडकर द्वारा की जाने वाली तीव्र आलोचना को स्वाभाविक प्रतिक्रिया मानते थे क्योंकि वे जानते थे कि अछूतों के प्रति हिन्दूओं के लगातार अत्याचार ने ही अम्बेडकर को हिन्दू विरोधी बना दिया था। हिन्दू विरोधी होकर भी वे हिन्दुस्तान विरोधी नहीं हुए थे। तभी तो डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान निर्माण में प्रारूप समिति के अध्यक्ष तथा विधि मंत्री के रूप में अद्वितीय भूमिका निभायी।

स्वतंत्रता संग्राम के अपने कटु संस्मरणों को याद करते हुए इस राष्ट्रवादी नेता ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए 11 दिसम्बर 1946 को अपने भाषण में स्वीकार किया था – 'मैं जानता हूँ कि आज हम राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से बंटे हुए है। हम सभी आपस में एक प्रकार से युद्धरत रहे हैं, और मैं इस बात को भी स्वीकार करता हूँ कि मैं भी संभवत: ऐसे ही संघर्षरत समूह के नेताओं में एक हूँ। लेकिन श्रीमान इस सबके बावजूद, मैं इस बात से पूर्णतया आश्वस्त हूँ कि आने वाले समय और परिस्थितियों में इस देश को एक होने से विश्व की कोई चीज नहीं रोक सकेगी। यह उनकी राष्ट्रीय चेतना का आत्मविश्वास सदा ही रहा है।

बाबा साहेब को संविधान निर्माण का सर्वाधिक राष्ट्रीय महत्व का कार्य, उनसे प्राय: असहमत रहे गांधी व नेहरू ने पूरे विश्वासपूर्वक सौंपा था। उनकी निष्पक्षता, ईमानदारी तथा गहन ज्ञान को मान देते हुए ही उन्हें देश के प्रथम मंत्रीमण्डल में कानून मंत्री का पद भी दिया गया था। पद को उन्होंने महत्व नहीं दिया सदैव सरल भाव दलितों की सेवा ही रहा। उन्होंने स्वीकार किया 'मैं संविधान सभा में किसी उच्च आकांक्षा के साथ नहीं आया बल्कि अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करने के लिये आया हूँ।

इसीलिये अछूतों के मसीहा अम्बेडकर अंत में बौद्ध धर्म की शरण में चले गये। वह बौद्ध धर्म जिसका प्रतीत्य सम्प्रदाय व्यक्ति को चिंतन की स्वतंत्रता देता है और बुद्ध का साम्यवाद व्यक्ति की सम्पत्ति संग्रह की प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। अपने संरचनात्मक प्रारूप में यह धर्म निरपेक्ष है। राष्ट्र धर्म के सभी आदर्श गुण, वैदिक परम्परा के अनुगामी इस धर्म में विद्यमान है, जिसके द्वारा लोकतंत्र व समाजवाद को बिना किसी पूर्वाग्रह व अवरोध के मूर्त स्वरूप दिया जा सकता है।

डॉ. अम्बेडकर की यह भी अपेक्षा थी कि राज्य उन वर्गों को विशेष संरक्षण दे जो वर्ग सदियों से शोषित एवं दलित रहे है। उन्हें विशेष अवसरों पर संरक्षण की अत्यधिक आवश्यकता है, ये विशेष अवसर एवं संरक्षण राज्य ही उपलब्ध करवा सकता है। संविधान के शिल्पी के रूप में डॉ.अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में न केवल मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की अपितु अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को विशेष संरक्षण भी प्रदान किया तथा संवैधानिक उपचारों के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की तथा कहा '**यदि कोई मुझसे यह पूछे कि संविधान के वे कौन-से प्रावधान है जिनके अभाव में मौलिक अधिकार शून्य हो जायेगें तो मै संविधान के अनुच्छेद 32 की ओर इंगित करूंगा क्योंकि यह मौलिक अधिकारों की आत्मा है।'**

डॉ.अम्बेडकर ने समाज को बदलने तथा समाज की पुर्नसंरचना में सरकार की सकारात्मक भूमिका के महत्व को स्वीकार किया है। शोषण मुक्त समाज की संरचना का दायित्व भी राज्य का है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जाटव,डी.आर-डॉ.अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
2. बाली, एल.आर- डॉ. अम्बेडकर और भारतीय संविधान।
3. शहारे डॉ. म.ला : भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : विधायिनी अम्बेडकर स्मृति अंक अप्रेल जून 1989 म.प्र.विधानसभा सचिवालय भोपाल, पृष्ठ 53-54
4. अग्रवाल सुदर्शन : संविधान निर्माता के रूप में डॉ. अम्बेडकर का योगदान (1) विधायिनी अप्रैल जून 1989 : पृष्ठ 32
5. तिवारी गिरीराज प्रसाद : डॉ. अम्बेडकर और सामाजिक न्याय : विधायिनी अप्रैल जून 1989, पृष्ठ 27
6. नवीन शोध संसार अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका। आई.एस.एस.एन. 2320-8767

****

परमारकालीन मुद्राएँ

डॉ. शेखर ब्रम्हने *

प्रस्तावना – परमार शासकों के अभिलेखों के अध्ययन से उनके द्वारा जारी की गई मुद्राओं की जानकारी भी प्राप्त होती है। अभिलेखों में प्राय: द्रम्म, पारूथद्रम्म, वृषभ, रूपक, अर्द्ध-रूपक, दर्भ, विंशोपक, वृष-विंशोपक, टंक, वराह, कौड़ी जैसी मुद्राओं के नाम प्राप्त होते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इन अभिलिखित मुद्राओं के परमारों की मुद्राओं का होने में संशय व्यक्त किया है। प्रतिपाल भाटिया इनमें प्रमुख है।म इसी प्रकार कृष्णदत्त वाजपेयी के मतानुसार परमार साम्राज्य में सम्भवत: सेसानियन मुद्राएँ प्रचलित थीं।म

परमार लेखों में उल्लिखित द्रम्म वस्तुत: ग्रीक शब्द द्रम्म से बना है, जिसका तौल लगभग 67.5 ग्रेन के बराबर होता था। भोजदेव के कालवन से प्राप्त दानपत्र-लेख में इसकी चर्चा हुई है। इस लेख के अनुसार गंगवंशीय अम्मराणक द्वारा मुक्तावली ग्राम में अन्य वस्तुओं के साथ जैन मुनि सुवर्तदेव को 14 द्रम्म प्रदान किए गए। बी0जे0 सन्देसरा के अनुसार यह उस समय प्रचलित सबसे अधिक प्रामाणिक सिक्का था, जो सोने अथवा चॉदी से निर्मित होता था। द्रम्म के बारे में उनका अनुमान है कि यह 5 रूपकों के बराबर होता था।म इसी प्रकार मोड़ी से प्राप्त वि0सं0 1314 तदनुसार 1257 ई0 के एक खण्डित अभिलेख में मोड़ी स्थान पर ही एक मंदिर के लिए प्रतिमाह एक द्रम्म दान देने की चर्चा है। मेरुतुंग ने उज्जैन नरेश विक्रमादित्य से संबंधित दीनार तथा परमार नरेश भोजदेव से संबंधित टंक सिक्कों का उल्लेख किया है।म नरेश नरवर्मन् ने भी चितूर में दो विधि-चैत्यों के लिए प्रतिदिन दो पारुथ द्रम्म भेंट की थी। पुरातनप्रबंधसंग्रहम के अनुसार एक पारुथ द्रम्म का मूल्य सामान्य द्रम्मों के बराबर होता था। लल्लनजी गोपाल के मतानुसार यदि पारुथ द्रम्म की टिन अथवा मिश्रित धातु की मुद्राओं से समता की जाए तो यह शुद्ध स्वर्ण अथवा चॉदी की मुद्राओं के समान ही होगा।

शेरगढ़ से प्राप्त सोमनाथ मंदिर अभिलेख में वृषभ मुद्राओं की चर्चा है। ए0एस0 अल्तेकर के अनुसार ये वृषभ पशु न होकर वृषभ आकृतियुक्त मुद्राएँ थीं।म इन मुद्राओं का भार सामान्यत: 60 ग्रेन अथवा एक तौला चॉदी का तिहाई भाग होता था तथा 5 वृषभ मुद्राएँ प्राय: दो रूपयों के बराबर होती थीं। डॉ0 अल्तेकर ने इन वृषभ मुद्राओं को वर्तमान में 10 रूपये के बराबर ऑका है।

परमारकाल में 'रूपक' भी एक महत्वपूर्ण मुद्रा थी। अर्थुणा से प्राप्त वि0सं0 1136 तदनुसार 1079 ई0 के एक अभिलेख में इसका उल्लेख है। हेमाद्री के व्रतखण्ड को सन्दर्भित करते हुए विष्णुगुप्त का मत है कि एक सहज का मूल्य एक स्वर्ण के 1/17 भाग के बराबर होता था।म इसके बारे में अनुमान है कि यह एक रजतमुद्रा थीम तथा इसका मूल्य लगभग एक द्रम्म का पॉचवॉ भाग होता था।म आर0सी0 अग्रवाल ने रूपक शब्द को द्रम्म से पहचाना है तथा यह भी मत व्यक्त किया है कि 10वीं-11वीं शताब्दियों के समय राजस्थान में रूपक नामक सिक्का प्रचलित था।

विंशोपक नामक सिक्के का उल्लेख वि0सं0 1216 तदनुसार 1259 ई0 के विदिशा से प्राप्त परमार त्रैलोक्यवर्मन्, वागड के माण्डलिक के वि0सं0 1116 तदनुसार 1159 ई0 के पाणाहेड़ा से प्राप्त तथा कच्छपघातवंशीय विक्रमसिंह के वि0सं0 1145 तदनुसार 1088 ई0 के दुबकुण्ड अभिलेखों में हुआ है। डी0आर0 भण्डारकर का मत है कि यह एक तॉबे का सिक्का था तथा इसका मूल्य द्रम्म का बीसवॉ भाग होता था,म किन्तु गुजरात क्षेत्र के कतिपय अभिलेखों में विंशोपक शब्द का प्रयोग एक भूमि-माप के अर्थ में किया गया है, जो भूमि मापन के मानक का 1/20 भाग होता था।म

इसी प्रकार शेरगढ़ से प्राप्त सं0 1084 तदनुसार 1027 ई0 के सोमनाथ मंदिर प्रस्तर अभिलेख में वराह मुद्राओं का उल्लेख है। इस लेख में तीन दान दिए गए जिसमें तीसरे दान के अन्तर्गत प्रत्येक संक्रान्ति को मासवारक के लिए दो-दो वराह मुद्राएँ प्रदान किये जाने का विवरण है। यद्यपि अभिलेख में उल्लिखित 'मासवारक' शब्द का सही समीकरण नहीं किया जा सकता। इन सिक्कों का वराह नामकरण इसलिए किया गया क्योंकि इनके एक ओर आदि वराह की आकृति उत्कीर्ण है। ये मुद्राएँ प्रतीहार भोज की चॉदी की मुद्राओं के समान हैं। इन मुद्राओं का भार लगभग 60 ग्रेन तथा मूल्य छह आने के बराबर था। वर्तमान में इनके मूल्यों की यदि समीक्षा की जाए तो यह प्राय: साढ़े तीन हजार रूपये के बराबर ठहरता है। वृषभ सिक्के की तरह 'वृष-विंशोपक' भी परमारकाल की एक मुद्रा थी जिस पर वृषभ की आकृति उत्कीर्ण होती थी।म एच0पी0 त्रिवेदी जी के अनुसार वृषभ आकृतियुक्त 'कृष्णराज रूपक' नामक एक मुद्रा वर्तमान में मालवा तथा राजस्थान के एक वृहत् क्षेत्र में प्रचलित है।

विवेच्यकाल के बहुत ही विख्यात सिक्कों में गधैया मुद्रा का नाम आता है जो उस समय मालवा, राजस्थान, गुजरात तथा बुन्देलखण्ड के पार्श्ववर्ती क्षेत्रोंम के साथ ही परमारों के साम्राज्य में भी प्रचलित थी। यह मुद्रा मुख्यत: तॉबे और चॉदी चढ़े हुए तॉबे की बनी होती थी। यद्यपि इस प्रकार की कुछ रजत मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं। इनमें मालवा क्षेत्र से प्राप्त एक सिक्के पर 11वीं-12वीं सदी की नागरीलिपि में दो पंक्तियों में- 'श्री ओंकार'- मुद्रालेख उत्कीर्ण है।म इस क्षेत्र में उक्त प्रकार की मुद्राओं की प्राप्ति इस बात से भी निश्चित होती है कि कुछ परमार शासकों ने ओंकार-मांधाता क्षेत्र के आसपास अपना शासन स्थापित किया था तथा सम्भव है अपनी आराध्य देवी के सम्मान में इस प्रकार की मुद्राएँ जारी की हों। यहॉ यह बात उल्लेखनीय है कि परमारों के दानपत्रों में से कम-से-कम पॉच दानपत्र विं0सं0 1112 तदनुसार 1055 ई0 से 1331 तदनुसार 1274 ई0 तक मांधाता क्षेत्र से जारी किये गये।

* शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

परमारकाल में सिक्के प्राय: कम ही शासकों के प्राप्त हुए हैं, उनमें उदयादित्य, जगदेव और नरवर्मन् प्रमुख हैं। श्रीमती पङ्कज आमेटा ने स्वयं के मुद्रा-संग्रह से जयतुगिदेव तथा जयर्वमनदेव द्वितीय की मुद्राओं की जानकारी भी दी है। इन शासकों की मुद्राएँ प्राय: गजलक्ष्मी प्रकार की तथा स्वर्ग, ताम्र एवं मिश्रित धातु की उपलब्ध हुई हैं। इनमें से एक मुद्रा सर्वप्रथम 1918 ई0में आर0डी0 बनर्जी द्वारा प्रकाशित की गई थी,म जिसे उन्होंने उदयादित्य की स्वीकार किया था, परन्तु वी0पी0 मिराशी ने इस मुद्रा के प्रकार तथा लेख के आधार इसे कलचुरि गांगेयदेव का निरूपित किया।म कालान्तर में इसी मुद्रा के सम्बन्ध में डॉ0 श्रीमती पंकज आमेटा ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है। उनके अनुसार आर0डी0 बनर्जी ने इस मुद्रा के लेख का पुनर्वाचन कर इसे पुन: उदयादित्य की मुद्रा स्वीकार किया है।म इसी सम्बन्ध में एच0वी0 त्रिवेदी जी ने भी आर0डी बनर्जी का समर्थन करते हुए अपने अभिलेख संग्रह में 'श्रीमदुयदेव' मुद्रालेखयुक्त उदयादित्य की एक मुद्रा प्रकाशित की है।म उदयादित्य की दो अन्य स्वर्ण मुद्राएँ तुलसीपुर से प्राप्त 36 स्वर्ण मुद्रा भण्डार से सन् 1981 में प्राप्त हुई थी। अत: इन मुद्राओं की उदयादित्यदेव द्वारा ही जारी किए जाने की अधिक सम्भावना है।

मुद्राएँ जारी करने वाले अगले शासक के रूप में जगद्देव का नाम आता है। नागपुर म्यूजियम में उसके द्वारा टंतिक तीन सिक्के संग्रहीत हैं। ये सारे सिक्के मध्य क्षेत्र से 1912 ई0 में प्राप्त किए गए थे। इनको सर्वप्रथम वी0पी0 रोडे द्वारा प्रकाशित करवाया गया था।

इन तीनों वृत्तकार सिक्कों में से एक शुद्ध स्वर्ण तथा दो मिश्रित स्वर्ण धातु के हैं तथा इनका व्यास 1.8 से 1.9 से0मी0 है एवं औसत भारत 3.69 ग्राम है। इनका पृष्ठ भाग रिक्त है तथा अग्रभाग पर चार आहत चिन्ह तथा एक मुद्रा पर नागरी लिपि में 'श्री जगदेव' मुद्रालेख है। दो अर्द्धवृत्त में बिन्दुओं सहित वक्ररेखा में एक प्रतीक अङ्कित है जो सम्भवत: पुरानी कन्नड़ लिपि का श्री हो सकता है। नीचे आयताकार क्षेत्र में एक अन्य प्रतीक उत्कीर्ण है जिसकी समता एक मन्दिर से की जा सकती है। उपर्युक्त मुद्राओं को सर्वप्रथम डॉ0 रामाराव प्रकाश में लाए थेम यद्यपि उन्होंने इन मुद्राओं को पश्चिमी चालुक्य राजा जगदेकमल्ल का निरूपित किया था, परन्तु इस प्रकार का समीकरण उचित प्रतीत नहीं होता।

जगद्देव की दूसरी मुद्रा में वराह की आकृति है तथा तीसरी मुद्रा आकार में पतली और बड़ी है। इस पर पतिपत्रकर्ण; मुद्रालेख है। डॉ0 आमेटा ने इस मुद्रालेख के आधार पर इसे जगदेव की मुद्रा प्रमाणित किया है। उनके अनुसार इस मुद्रा का इस शासक के साथ समीकरण इसलिए भी उचित लगता है क्योंकि वह कुछ समय के लिए चालुक्य नरेश त्रिभुवनमल्ल के अधीन प्रान्तपति रहा तथा वहा के अभिलेखों में उसके लिये प्रतिपत्रकर्ण अथवा उत्पन्नप्रतिपत्रकर्ण जैसी उपाधियों का प्रयोग किया गया है।

उदयादित्य के ही पुत्र नरवर्मन् ने भी स्वर्ण तथा रजत मुद्राएँ जारी की थीं। इन मुद्राओं को सर्वप्रथम राजकुमार सेठी ने प्रकाशित किया था।म नरवर्मन् द्वारा जारी दोनों ही मुद्राएँ वृत्ताकार हैं तथा स्वर्ण मुद्रा का व्यास 0.8 एवं भार 5.6 ग्राम है। इसी प्रकार रजत मुद्रा का व्यास 0.7 तथा भार 3.0 ग्राम है। दोनों ही मुद्राओं के अग्रभाग पर पद्मासना लक्ष्मी का चित्रण है तथा पृष्ठभाग पर दो पंक्तियों में मुद्रालेख (1) श्रीमन्नर तथा (2)व (र) म्मदेव अंकित है। इन मुद्राओं में स्वर्ण मुद्रा अच्छी स्थिति में है परन्तु रजत मुद्रा के दोनों पार्श्व अस्पष्ट हैं। इसे उसके दीर्घ अवधि तक प्रचलन का सङ्केत माना जा सकता है। यह मुद्रा किनारों से कटी हुई भी है, अत: इसका भार भी इसी कारण कुछ कम है।

इन मुद्राओं के अतिरिक्त डॉ0 आमेटा ने जयतुगिदेव तथा जयवर्मनदेव द्वितीय की मुद्राएँ भी प्रकाशित की हैं। जयतुगिदेव की रजत की इस एकमात्र मुद्रा के अग्रभाग पर लक्ष्मी का चित्रण है तथ पृष्ठभार पर नागरी लिपि में तीन पंक्तियों में मुद्रालेख (1) श्रीम (द) (2) जातुंगि (3) देव अंकित है। इस गोलाकार मुद्रा का भार 2.41 ग्राम है। उन्होंने जयवर्मनदेव द्वितीय की रजत की दो मुद्राओं का भी उल्लेख किया है जो लगभग आधे द्रम्म की हैं तथा उनका भार 2.45 ग्राम है।

परमारों की मुद्राओं के मान के सम्बन्ध में अभिलेखों से तो कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती परन्तु विवेच्यकाल में भास्कराचार्य विरचित 'लीलावती' तथा अलाउद्दीन खिलजी के टंकशाला प्रमुख ठाकुर फेरू द्वारा रचित 'द्रव्य परीक्षा' नामक ग्रन्थ इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। लीलावती (श्लोक 2) में मध्यकालीन मुद्रा-मान के सम्बन्ध में उल्लेख है कि 20 वराटक अथवा कौड़ी एक काङ्किणी के बराबर, चार कांकिण एक पण के समान, 16 पण कए द्रम्म के समतुल्य, 16 द्रम्म एक निष्क के सदृश, 5 रत्ती एक माषा के समकक्ष, 16 माषा 1 कर्ष के समतुल्य, 4 कर्ष एक पाल के बराबर तथा कर्ष भर सुवर्ण एक सुवर्ण के बराबर है।

ठक्कुर फेरू ने अपने ग्रन्थ में मालवा एवं इसके आसपास क्षेत्र में प्रचलित मुद्राओं का उल्लेख किया है। उन्होंने मेरुतुंग द्वारा वर्णित दीनार नामक स्वर्ण मुद्रा को 4 माषे के बराबर का सिक्का बताया है।म इसके अतिरिक्त चौकड़िया नामक वर्गाकार सिक्के का भी उन्होंने उल्लेख किया है, जिसमें 100 चौकड़िया में 8 तौला के मान से चॉदी होती थी तथा इसका भार एक टंक 10 यव था।मदेवपालदेव द्वारा जारी मुद्रा का नाम दऊपालपुरी था। इसमें 100 सिक्कों के मान से 15 तौला तथा 5 माषा चॉदी होती थी। कुण्डलिया नामक वृत्ताकार मुद्रा में 100 सिक्कों के मान से 6 तौला 5-3/4 माषा चॉदी होती थी। सौ कौलिया मुद्राओं में 5 तौला और 8-3/4 माषा चॉदी होती थी।

छुड्डुलिया के षट्कोणीय सिक्का होने का अनुमान किया जा सकता है। 100 छुड्डुलिया सिक्कों में 7 तौला और 4 माषा चॉदी होती थी।म उपर्युक्त समस्त मुद्राओं का भार चौकड़िया के समान होता था। उन्होंने सेलकी-टोगड़ा नामक एक आकृति रहित मुद्रा का उल्लेख किया है जिसमें 100 सिक्कों में 5 तौला और 3 माषा चॉदी होती थी।म इसी प्रकार चित्तौड़ में 'जानीया-चित्तौड़ी' नामक एक सिक्का प्रचलित होने उल्लेख है जिसके एक सौ सिक्के में 5 तौला चॉदी होती थी।

उपर्युक्त के साथ ही रजत क कम मूल्य तथा हल्की धातुओं के मिश्रण वाली जकारिया, गलहुलिया, रवालगा तथा शिवगणा जैसी अन्य मुद्राओं का भी उन्होंने उल्लेख किया है। इनमें 100 जकारिया सिक्कों में 4 तौला और 4-1/2 माषा चॉदी, एक सौ गलहुलिया सिक्कों में तीन तौला और 4 माषा चॉदी, एक सौ रवालगा मुद्राओं मे 1 तौला और 8 माषा चॉदी तथा सौ शिवगणा मुद्राओं में 1 तौला और 3 माषा चॉदी का मिश्रण होता था।

ऊपर वर्णित मुद्राओं के अतिरिक्त ठक्कुर फेरू के ग्रन्थ में कुछ अन्य कलात्मक रजत की ईंट के समान मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। इसक सम्भवत: रजत रूप में आर्थिक विनिमय अथवा सङ्ग्रहीत करने के लिए ढाले जाने का अनुमान होता है। इनमें वापड़ा, मलित, सीहमार और चोरमार प्रमुख हैं। धातु के मिश्रण के रूप में एक सौ वापड़ा मुद्राओं में 14 तौला चॉदी, एक सौ मलित मुद्राओं में 14 तौला और 3 माषा चॉदी, 100 सीहमार मुद्राओं में 13 तौला रजत तथा एक सौ चोरमार मुद्राओं मे 13 तौला रजत का मिश्रण रहता था। इन

समस्त मुद्राओं में प्रत्येक का भार 1 टङ्क होता था।म

टंक के बारे में उनका मत है कि यह एक सामान्य भार की इकाई था जिसका भार 8 रत्ती अथवा 14.64 ग्रेन होता था।म ध्वनि-साम्यता से इसके रजत अथवा स्वर्ण सिक्का होने का अनुमान किया जा सकता है। डॉ0 अल्तेकर ने इसे एक तौला भार की रजत मुद्रा निरूपित किया है।म मालवा में उस समय कौड़ी, कपर्दक वोडीम तथा पण जैसी मुद्राएँ भी प्रचलित थीं। इस प्रकार, अभिलिखित साक्ष्यों के प्रकाश में उपलब्ध मुद्राओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भले ही कम सही, परन्तु परमार राजवंश ने भी मुद्राएँ जारी की थीं। इनमें उदयादित्य, जगदेव और नरवर्मन् जैसे शासकों की दर्जनों मुद्राएँ उपलब्ध हैं। परमार भोज एव वाक्पति जैसे शासकों की मुद्राएँ उपलब्ध न होना अवश्य ही विचारणीय है। सम्भव है कि यह भविष्य के पुरातात्विक उत्खनन से उपलब्ध हो जाएँ। लेकिन आभिलेखिक साक्ष्यों मुद्राओं के विविधानामों तथा उनके बहुश: उपयोग और आर्थिक विनिमय एवं दान-दक्षिणादि में प्रयोग से तत्कालीन आर्थिक समृद्धि का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार, परमार अभिलेखों के आर्थिक स्थिति विषयक अध्ययन से स्पष्ट है कि अनेक युद्ध-जन्य सङ्कट व आक्रमणों के बावजूद परमार साम्राज्य में पशुपालन, अन्नोत्पादन, सुनियोजित कराधान आदि ने एक ऐसा आर्थिक आयाम जोड़ा, जिससे प्रजा खुशहाल थी और राजकोष समृद्ध था। राजाओं ने भी सैन्य व्यवस्था के साथ-साथ मन्दिर मठ निर्माण, सिञ्चाई आदि की व्यवस्था के लिए तालाबदि बनाने में इसका बहुश: उपयोग किया। कम ही सही पर अपने समय की आर्थिक आवश्यकता के अनुरूप इनमें से कुछ शासकों ने ही सही अपनी मुद्राएँ जारी कीं। हॉ, पूर्व प्रचलित तथा अपने समय में अन्य प्रचलित मुद्राओं का भी उन्होंने उपयोग किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. The parmaras, Chap. 5. p. 309
2. डॉ. ऐ. सी. मित्तल, परमारकालीन सभ्यता एवं संस्कृति, अध्याय-7 पृ.104
3. Journal of the Numisonatic sociaty of India, pt. 8. p. 144
4. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 8, 104, 121,163, 167, 183 आदि
5. पुरातन प्रबन्ध संग्रह , पृ0 53
6. Economic History of Northern India, p. 199
7. Epigraphia Indica, pt. 23, p. 138
8. Epigraphia Indica, pt. 23, p. 138
9. Journal of the Numus matic sociaty of India, pt. 19 1957
10. Lallan ji Economic History of Northern India, p.205, 206
11. Journal of the Numis matic soceity of India, pt. 8.p. 144
12. वही भाग 19 (1957) पृ0 115 पाद टिप्पणी ।
13. corpus Inscriptionum Indicarum, pt. 4. p. 529
14. Majumdar A.K the chalukyas of Gujarat, p. 244
15. Epigraphia Indica, pt 23. p. 141
16. वहीं पृ0 139, पाद टिप्पणी ।
17. Corpus Inacriptionum Indicarum, pt. p. 52 and Journal of the Numi matic souiety of India, pt. 19, p. 120
18. Indian Antiquery pt.37.p. 182
19. Journal of the Numiamatic society of India, pt.11, p. 58
20. Journal of the Asiatic soceity of Bengal pt. 16 (1920) p. 84
21. Corpus Inscriptionum Indicarum, pt. 14, p. 183 Serial. 5
22. मालवा के परमार शासकों की राजस्व व्यवस्था, अध्याय 6 पृ0 129
23. Corpus Inscriptionum Indicarum, pt. 7-1.p. 212
24. Journal of the Numica matic society of India,pt. 9. p. 75
25. Select Gold and silver coins in Andhra pradesh, bount museum Hyderabad 1963. p. 1. 3 pl. 1,
26. डॉ. रामाराव पृ0 1
27. Journal of Academy of Indian Numis matics and Sigbilraphy, pt. 5 p. 31-32
28. Journal of the Numis matic souity of India, pt. 30, p. 208
29. Treivedi, H.V. Corpus Inscriptionum Indicarum, p. 212
30. परमार शासकों की राजस्व व्यवस्था, पृ0 129-130
31. लीलावती, श्लोक 4
32. द्रव्य परीक्षा, श्लोक 61
33. वही, श्लोक 94, गाथा, 94
34. वही, श्लोक 96
35. द्रव्य परीक्षाक, श्लोक 96
36. वही, श्लोक 97
37. वही, श्लोक 98-100
38. Journal of the Numismatic dociety of India, pt. 22 p. 200
39. वही, भाग-2, पृ0 1-14
40. शेरगढ़ से प्राप्त संवत् 1084 तद्नुसार 1027 ई0 का सोमनाथ मन्दिर प्रस्तर अभिलेख।

जीवन का लक्ष्य : समाज सेवा

डॉ. अनिता दुबे *

प्रस्तावना – समाज की प्रगति के माध्यम से व्यक्ति की प्रगति में स्वार्थपरायण हो जाने की आशंका मिट जाती है। सामाजिक दायित्व बोध व्यक्ति के आलस्य, बेईमानी, ईर्ष्या, स्वार्थपरता जैसे दुर्गुणों को दूर कर उनके अंतरमन में प्रेम, करूणा, उत्साह, निपुणता, सामाजिकता आदि सद्गुणों का विकास करता है। समाज सेवा वैयक्तिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत समूह अथवा समुदाय में व्यक्तियों की सहायता की जाती हैं जिससे व्यक्ति अपनी सहायता स्वयं करने योग्य बन सके। समाज सेवा के माध्यम से व्यक्ति एवं उसके पर्यावरण, समुदाय तथा समाज को प्रभावित करने वाले सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक कारकों का विश्लेषण कर अधिकतम हित साधने हेतु उनमें सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।

समाज सेवा का वर्तमान स्वरूप – समाज सेवा का स्तर कार्यकर्ता के ज्ञान, अनुभव, मनोवृत्ति तथा कुशलता पर आधारित होता है। समाज सेवा सेवार्थी को अपनी दुर्बलता कुष्ठा, नैराश्य, हीनता, असहायता, मानसिक तनाव जैसी ऋणात्मक मनोवृत्तियों का परित्याग करने हेतु प्रेरित करता है।

समाज सेवा के प्रकार तथा व्यक्तित्व विकास – सभी प्राणी मात्र के हृदय में निवास करने वाला प्रेम, करूणा ही ईश्वर का, परमात्मा का रूप है अत: जब हम किसी की सेवा करते हैं तो उसकी आत्मा को संतुष्टि प्रदान करते है तथा अपने भीतर के प्रेम को भी तृप्त करके आनंद की अनुभूति करते हैं। समाज सेवा तीन प्रकार की होती हैं

- वैयक्तिक समाज सेवा– एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक अथवा आर्थिक समस्याओं के निदान हेतु सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया हैं।
- सामूहिक समाज सेवा– सामाजिक समूह के सदस्यों को लक्ष्य प्राप्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सहयोग प्रदान करने की विधि है।
- सामुदायिक समाज सेवा–समुदाय के सदस्यों को उपलब्ध साधनों के अंतर्गत लक्ष्य प्राप्ति हेतु तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सहयोग प्रदान करने की प्रक्रिया है।

समाज सेवा के माध्यम से व्यक्तियों को प्रगति के मार्ग की ओर ले जाने का प्रयास कर स्वस्थ समाज के निर्माण में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भागीदारी की जाती है।

समाज सेवा : भक्ति की कोटि – परमार्थवादी दृष्टिकोण ही समाज सेवा को भक्ति की कोटि में लाता हैं। स्थायी सुख की प्राप्ति हेतु, दूसरों के दीर्घकालीन दु:ख दूर करने हेतु तथा किसी भी मानसिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु नि:स्वार्थ एवं निष्कपट सेवा का परिणाम विशाल तथा बहुमुखी होता है।

व्यक्तित्व विकास – नि:संदेह वंशानुक्रम जन्मजात शक्तियां प्रदान करने वाला तत्व हैं किन्तु बालक के विकास के साथ–साथ उसके व्यक्तित्व को गढ़ने में सर्वोपरि प्रधान तत्व सामाजिक परिवेश होता है। मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिलक्षित करने वाला उसका चरित्र ही है जो स्वयं के खोज में चरित्र की खोज की प्रेरणा देता है। ज्ञान पर आधारित समाज सेवा व्यक्तिव विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को उत्प्रेरित करती है तथा व्यक्ति की, समूहों की अथवा समुदाय की सृजनात्मक शक्तियों को विकसित कर स्वस्थ समाज को जन्म देती है।

सेवा में ईश्वर का वास होता हैं। माता–पिता की सेवा घर को स्वर्ग बना देती हैं, गुरू की सेवा सत्मार्ग की ओर ले जाती है तथा गरीब व नि:शक्तजनों की सेवा अंतरमन में सद्गुणों का विकास करती है। अत: समाज सेवा को व्यक्तित्व को गढ़ने वाला अनिवार्य उत्प्रेरक मान सकते है।

समाज सेवा के क्षेत्र में रोजगार के अवसर – निर्धनता के काले साये में जीवन यापन करने वाली बहुसंख्यक आबादी को बेहतर एवं न्यूनतम सुविधाएं जुटाने हेतु वर्तमान में प्रारंभिक स्तर पर राष्ट्रीय संस्थायें, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के एन.जी.ओ. तथा सरकारी समाज कल्याण विभागों में रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकते हैं। समाज की भलाई में विश्वास रखने वाले युवा स्वतंत्र रूप से अपना अलग एन.जी.ओ.पंजीकृत कर प्रारंभ कर सकते है। एक समाज सेवी मूलत: आधुनिक प्रबंधन तथा सामाजिक विज्ञान के विचारों के समन्वय द्वारा सामाजिक समस्याओं का हल खोजता है। व्यक्ति की अंतरनिहित क्षमता, स्व निर्णय का अधिकार, अवसर की समानता में विश्वास आदि जनतांत्रित मूल्यों के आधार पर समाज सेवा का वर्तमान स्वरूप दृष्टिगत् होता है। किसी अच्छे संस्थान से सामाजिक तथा मनोविज्ञान में शिक्षा एवं मास्टर इन सोशल वर्क (एम.एस.डब्लू.) करके व्यक्ति समाज सेवा के क्षेत्र में अपना कैरियर प्रारंभ कर सकता है।

जीवन की सार्थकता – तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में कहा है परहित सरस धरम नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई लौकिक समृद्धि एवं पर लौकिक कल्याण की प्राप्ति ही धर्म का कर्तव्य है। किसी ने लिखा है :–

गरीबों के बच्चे भी खाना खा सके, त्यौहारों में,
तभी तो भगवान, खुद बिक जाते हैं बाजारों में।

श्री महेन्द्र गुलशन के शब्दों में –

इस मील का पत्थर भी राही को राह दिखाता है।
तुम मानव हो, मानव बनकर, मानवता की पहचान बनो।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज सेवा और परोपकार मनुष्य को अमरत्व प्रदान करता है। अपने लिये तो सभी प्राणी जीते है, परन्तु उसी मनुष्य का जीना सार्थक है जो दूसरों के लिये कुछ कर सके, अत: मनुष्य मनुष्य के प्रति प्रेम की भावना रखे, उसके लिये अपने जीवन का त्याग कर सकें। वही सच्चा मनुष्य है।

* शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल(म.प्र.) भारत

व्यक्ति के भीतर संवेदना जागृत होने से सेवा का भाव जन्म लेता है और सेवा के भाव व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व को निखारता हैं।

'मन में सेवा का भाव जगे, जीवन बने कर्म प्रधान
मनुष्य देवता बने, बने यह धरती स्वर्ग समान।'

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. hi.wikipedia.org/wiki/समाज सेवा।
2. समाज सेवा की संतुष्टि एवं बेहतर कैरियर navbharattimes. indiatimes.com
3. www.livehindustan.com/news/.../article1-Social-Work
4. hindi.webdunia.com/.../समाज सेवा में असीम संभावनाए।

****

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के आर्थिक विकास में कृषि का योगदान

डॉ. विजय प्रकाश मिश्रा *

शोध सारांश – किसी भी देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। यह देश की सभ्यता एवं संस्कृति का भी बोध कराती है। भारत जैसे देश में जहाँ 70 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गॉव में निवास करती है और उसका प्रमुख व्यवसाय कृषि की है। राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान लगभग 42.5 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों की आय का 80 प्रतिशत से अधिक कृषि या कृषि से सम्बन्धित उत्पादों द्धारा ही अर्जित होता है। किसी भी देश का विकास गॉव का विकास किये बिना सम्भव नहीं है इसलिये भारत देश में कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की प्रमुख आधार है।

आज भी देश के जीवन की प्रमुख आधारशिला कृषि ही है हालॉकि लोग अब शिक्षित होकर नौकरी व व्यवसाय की तरफ आकर्षित हो रहे हैं लेकिन फिर भी कृषि के विकास के बिना किसी भी देश का विकास सम्भव नहीं है।

कुंजी शब्द – आर्थिक विकास, पूँजी निर्माण, श्रम की आपूर्ति, उद्योग के लिये कच्चा माल, खाद्यान्न पर निर्भरता।

प्रस्तावना – किसी भी देश के आर्थिक विकास के प्रारम्भ में कृषि महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। विकसित देश के विकास इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। आज के लगभग सभी विकसित देशों के आर्थिक इतिहास स्पष्ट करता है कि किस तरह कृषि ने उनके आर्थिक एवं औद्योगिक विकास को बढ़ाया है। किसी भी देश का विकास वहॉ के औद्योगिक विकास पर निर्भर करता है और औद्योगिक विकास तभी हो सकता है जबकि कृषि का भी साथ-साथ विकास हो या दोनों का एक साथ विकास हो।

प्राचीनकाल में भारतीय कृषि बहुत ही उन्नत थी और उस समय देश में कृषि तथा उद्योग में सन्तुलन था जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति काफी अच्छी थी।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ की हड्डी कही जाती है। आज भी देश के 2/3 जनसंख्या का जीविकोपार्जन कृषि पर ही निर्भर है। अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि की भूमिका को हम निम्न भागों में बॉटकर देख सकते हैं :-

1. राष्ट्रीय आय में कृषि का भाग
2. कृषि में रोजगार
3. देश की जरूरतों को पूरा करने के लिये कृषि उत्पाद
4. उद्योगों के विकास में कृषि की भूमिका
5. आयात-निर्यात में कृषि का योगदान
6. सरकारी आय को बढाने में सहायक
7. आर्थिक नियोजन में सहायक

शुरूआत में कृषि का राष्ट्रीय आय में योगदान 70 प्रतिशत से ज्यादा था जिसका प्रमुख कारण ठीक ढंग से औद्योगिक विकास का न होना था लेकिन स्वतंत्रता के बाद विशेष तौर पर पंचवर्षीय योजनाओं के लागू होने के बाद इसका हिस्सा राष्ट्रीय आय में कम होता चला गया। 1950-51 में कृषि और सहायक गतिविधियॉ (जिसमें कृषि वानिकी, लटठ बनाना, मत्स्य पालन) का हिस्सा राष्ट्रीय आय में 59 प्रतिशत था जो 1960-61 में 54 प्रतिशत, 1970-71 में 48 प्रतिशत, 1980-81 में 40 प्रतिशत, 2009-10 में 14.6 प्रतिशत तथा 2011-12 में 16.16 प्रतिशत था जबकि विकसित देशों अमेरिका और इग्लैण्ड की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान केवल 3 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट है कि विकसित देशों की कृषि पर निर्भरता कम है।

जीविकोपार्जन की दृष्टि से भारत में 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यो में लगी हुई है। एक अनुमान के मुताबिक लगभग 66 प्रतिशत लोग अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि कार्यो पर निर्भर हैं जबकि बाग्लादेश में 57 प्रतिशत, पाकिस्तान में 48 प्रतिशत, चीन में 68 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यो में संलग्न थी जबकि विकसित देश अमेरिका और इग्लैण्ड में केवल 2 प्रतिशत, फ्रांस की 6 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया 7 प्रतिशत तथा जापान की 4 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यो में संलग्न है।

भारत में औद्योगिक विकास की दृष्टि से कृषि का बहुत महत्व है। प्रमुख उद्योग (सूती वस्त्र, जूट, चीनी, वनस्पति तथा चाय काफी व रबर) आदि कृषि आधारित उद्योग को कच्चा माल सीधे कृषि से प्राप्त होता है। भारत में कृषि आधारित उत्पादित क्षेत्र उद्योगों से लगभग 50 प्रतिशत आय प्राप्त होती है जो कि तालिका-1 से स्पष्ट है।

तालिका-1 से स्पष्ट होता है कि कृषि आधारित उद्योग का उत्पादन लगातार बढता गया है।

कृषि के विकास के साथ-साथ कृषक की आय में भी वृद्धि होती है इससे उनके औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादनों की मॉग बढ जाती है। आंकडों से स्पष्ट है कि औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादों की संख्या मात्रा ग्रामवासियों की उपभोग सूची निरन्तर बढ रही है।

तालिका-2 से स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन में विकास से कृषकों की जो आय में वृद्धि होती है उससे अन्य सम्बन्धित क्षेत्र के उत्पादों की मॉग बढ जाती है। भारत में कृषि आन्तरिक व वाहय व्यापार दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। कुल निर्यात में चाय काफी चीनी मसाले तम्बाकू आदि का हिस्सा 50 प्रतिशत लगभग है। निर्यात अधिक होने से विदेशी विनिमय अर्जित करने का अतिरिक्त स्रोत प्राप्त होता है।

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) जय नारायन पी0जी0 कालेज, लखनऊ (म.प्र.) भारत

तालिका-3 से स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र का भारत के निर्यात सम्बन्धी व्यापार में काफी योगदान है और कृषि उत्पादों का निर्यात मूल्य भी काफी बढ गया है।

कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान देश की बढती हुई जनसंख्या का पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध करवाना है। एक अनुमान के मुताबिक लगभग 60 प्रतिशत घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि उत्पाद द्धारा होती है। विगत वर्षो में भारत लगभग खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है जिससे आयात पर निर्भरता कम हुई है। तालिका-4 में देखें।

विकासशील देशों में पूँजी की कमी होती है और उद्योग के विकास के लिये भारी पूँजी की आवश्यकता होती है। ऐसे में कृषि उत्पादन में वृद्धि से आय बढती है जिससे बचत करने की प्रवृत्ति बढती है इसलिये अनिवार्य तथा ऐच्छिक करारोपण से आसानी से पूँजी उपलब्ध हो सकती है।

तालिका-5 से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पश्चात सरकारी और निजी क्षेत्र से पूँजी निर्माण में लगातार बढोत्तरी हुई है।

एक अच्छी फसल देश के नियोजित आर्थिक विकास को बनाने में (परिवहन, उत्पाद उद्योग और आन्तरिक व्यापार) अच्छा व्यवसायिक वातावरण तैयार करते हैं साथ ही अच्छी फसल से अच्छे वित्त मिलने से सरकार नियोजित खर्च करके देश को तीव्र गति से आर्थिक विकास की तरफ ले जा सकती है।

उपरोक्त का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि भारत में कृषि तथा औद्योगिक दोनों ने एक-दूसरे के विकास में सहायता की है क्योंकि यह दोनों न केवल परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं बल्कि आर्थिक विकास की दो ऐसी समानान्तर शक्तियॉ हैं जिन्हे एक ही धरातल पर बनाये रखना आवश्यक है।

'श्री मुर्रे का कहना है कि, इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ट रूप से अर्न्तसम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है अत: आर्थिक विकास की नीति कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढाने की दृष्टि से सन्तुलित विकास पर आधारित होनी चाहिये।'

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था- मिश्र एवं पुरी।
2. आर्थिक विकास और नियोजन- एस0पी0 सिंह।
3. कृषि अर्थशास्त्र- आर0एन0 सोनी।
4. कृषि अर्थशास्त्र- डा0 मुजम्मिल।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था- मामोरिया एवं जैन।
6. आर्थिक सर्वे -विभिन्न प्रकाशन।

Table-1
Production in Selected Agro-based Industries in India

Industries	Year 1950-51	Year 1960-61	Year 1970-71	Year 1980-81	Year 1990-91	Year 1999-2000	Year 2009-10	Year 2010-11	Year 2011-12
1 Cotton Textile									
(a) Cloth (mm s. meters)	4215	6738	7602	8368	15431	13754	28914	31742	30750
(b) Yarn (mn.kg)	533	788	929	1067	1510	2204	3079	3490	3126
2. Jute Textiles (`000 tones)	837	1071	1060	1392	1430	1254	N.A.	N.A.	N.A.
3. Tea (mn. Kgs)	277	318	423	568	705	816	991	967	972
4. Paper and Paper Board (`000 tonnes)	116	349	755	1149	2088	5089	4969	N.A.	7379
5. Vanaspati (`000 tones)	155	365	558	753	850	1320	1122	827	1235
6. Sugar (`000 tonnes)	1134	3029	3740	5148	12047	17467	18802	24350	26300

Table-2
Share of the value of industrial goods in the per capita monthly consumption of rural people

Year Particulars	July 1977-June-1978 (32nd Round)	Jan. 1983 Dec. 1983 (38th Round)	July 1988-June 1989 (44th Round)	July 1993-June 1994 (50th Round)	July 1999-June 2000 (55th Round)	July 2005-June 2006 (62th Round)	July 2009-June 2010 (66th Round)
Value of non - agricultural goods and services (Rs.)	30.62	48.29	82.20	136.61	248.47	358.98	587.08
Totla consumption	68.89	12.45	175.10	281.43	486.07	624.53	953.05
% Share of the value of Industrial goods in total consumption expenditure	44.40	42.90	46.95	48.54	51.1	57.48	61.50

Table-3

Year (April - March) (Rs. Crore)	Exports of agricultural commodities (Rs. Crore)	Total exports from India (Rs. Crore)	% Share of agricultural exports to total exports (Rs. Crore)
1965-66	335	806	41.6
1970-71	487	1535	31.7
1980-81	2057	6711	30.7
1985-86	3018	10896	27.7
1995-96	20398	106353	19.2
1996-97	24161	118817	20.3
1998-99	25511	139752	18.3
1999-00	25313	159095	15.9
2001-02	29729	209018	14.2
2003-04	37267	293367	12.7
2004-05	410603	375340	11.08
2005-06	49217	456418	10.78
2006-07	62411	571779	10.92
2007-08	79040	655864	12.05
2008-09	85952	840756	10.22
2009-10	89341	845534	10.57
2010-11	117484	1142922	10.28
2011-12	187609	1465959	12.80
2012-13	230141	1634672	14.10

Source : Economic survey of India - various issues.

Table-4
Production of Important Cash Crops in IndiaCrops

Industries	Year 1950-51	Year 1960-61	Year 1970-71	Year 1980-81	Year 1990-91	Year 1999-2000	Year 2009-10	Year 2011-12	Year 2012-13
Cotton (mn.Bales 0 170 Kg)	3.44	5.60	4.76	7.01	9.8	11.6	24.02	35.20	34.00
Jute & Mesta (mn. Bales - 180 kg)	3.31	5.26	6.19	8.16	9.2	10.5	11.3	11.2	11.30
Oil seeds (mn. Tones)	5.16	6.98	9.63	9.37	18.6	20.9	24.9	29.8	31.01
Sugarcane mn. Tones-cane	57.05	110.00	126.37	154.25	241.10	299.2	277.8	361.04	338.96

Source: Economic Survey of India-various issues.

Table-5
Gross Capital Formation in Agriculture and allied sectors
GCF in Agriculture

Year	Public Sector	Private Sector	Total
(1)	(2)	(3)	(4)
1950-51	N.A.	N.A.	3798
1960-61	2400	2858	5258
1970-71	3216	5761	8587
1980-81	7301	6932	14233
1990-91	4992	8452	16416
2000-01	4435	15374	19809
2008-09	20572	106655	127127
2009-10	22693	110469	133162
2011-12	22095	124483	146578

Sources: Central Statistical Organisation, New Delhi.

राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में चित्रित नारी की समस्याएँ

नरबू ड्रेमा *

प्रस्तावना – साहित्य समाज का दर्पण है। इस दर्पण में सहजता पूर्वक झाँकने से हमें दिखाई देगा कि स्त्री की दास्यता आज भी वैसी ही है बदले हैं तो केवल संदर्भ और परिवेश। सच देखा जाए तो नारी आज भी अपने अस्तित्व एवं वूजद को बचाये रखने के लिए लड़ झगड़ रही है।

पुरूष तो पुरूष आज स्त्रियाँ ही स्त्री की दुश्मन बन गयी है। समाज के प्रत्येक स्तर पर नारी जीवन उपेक्षा एवं उत्पीड़न से भरा हुआ दिखाई देता है। आज भी स्त्रियों की समस्याएँ कम नहीं हुई है। फर्क इतना है कि उनका स्वरूप बदल गया है। राजेन्द्र यादव ने उपन्यासों में नारी जीवन और नारी विमर्श से सम्बन्धित अनेक मुद्दे उठाये हैं जो इस प्रकार है –

'सारा आकाश' उपन्यास की नायिका प्रभा एक पढ़ी लिखी घरेलू कामकाज वाली नारी है। प्रभा और मुन्नी की परिस्थिति को देखकर लगता है कि भारत के मध्यवर्गीय परिवार में आज भी नारी खासतौर पर बहु शोषित एवं पीड़ित है। प्रभा भी अपनी सास व जेठाणी से बार-बार प्रताड़ित होती रहती है। प्रभा की दयनीय स्थिति का कारण सास और भाभी ही है। शादी में मनोवांछित दहेज आदि न मिलने के कारण सास नाराज है तो प्रभा की शिक्षा एवं सुंदरता के कारण घर-बिरादरी में सम्मान खो जाने का डर जेठाणी को उकसाता है प्रभा को छलने के लिए। जेठाणी को प्रभा की सुंदरता एवं पढ़ी लिखी होना फूँटी आँख नहीं सुहाता है। वह स्वयं एक स्त्री होकर स्त्री का विरोध एवं उसे प्रताड़ित करती है। जेठाणी कहती है 'प्रभा में थोड़ा-सा अपनी पढ़ाई और खूबसूरती को लेकर गुमान है। मुझसे पूछो तो कोई ऐसी परिज़ादी भी नहीं है। यों अपनी उमर पर खूबसूरत कौन नहीं होती! हम नहीं थे, अम्माजी नहीं थी।'[1] जेठाणी प्रभा को नीचा दिखाने के लिए हीनता भाव बोध वाली मनोदशा से ग्रसित है और प्रभा द्वारा बनायी गयी पहली बार की रसोई की सब्जी में मुट्ठी भर नमक डालकर अपनी इस कुण्ठा का परिचय देती है। इससे अन्जान घरवाले भी प्रभा को ही दोषी मानकर उसे बहुत ताने सुनाते हैं। ऊपर से जेठाणी भी एक ताना कस देती है कि 'दिखाते वक्त किसी को क्या पता कि खाना किसने बनाकर खिलाया है। चली थी रिस्टवाच पहनकर खाना बनाने। बोलो घड़ी का तुम चूल्हें में करोगी क्या? या तो फैशन ही कर लो या काम ही कर लो। अरे पहली बार तो ठीक से बनाकर खिला देती। अब चाहे अमरित ही बनाती रहो, यह बात तो अब आने से रही।'[2]

जेठाणी को प्रभा अपनी शत्रु सी प्रतीत होती है। प्रभा को परेशान करने के लिए नाना प्रकार के हथकंडे अपनाते रहती है। प्रभा जब भी इधर-उधर के कामों में व्यस्त रहती है तो चुपके से मौका पाकर देवर समर के कान भरती रहती है। वह समर के मन में प्रभा के प्रति नफरत भर देती है।

घर में पंडितजी ने गणेश जी की पूजा की थी, प्रभा ने अनजाने में उसे कोई साधारण मिट्टी का ढेला समझकर बरतन माँझ लेती है तो सास प्रभा की कटु आलोचना करने लगती है। विद्रोहात्मक भाव से वह कहती है कि– 'और हमारी पुरखा हमें जबा दिए चली जा रही है। तूने समझा काहे को? तेरे तो हिए-माथे की फूट गई थी ना? अन्धी थी! दिखाई थोड़े ही दिया होगा कि उसमें कलावा बँधा था या नहीं? बात पर बात कहे चली जा रही है, जो एक भी बात बिना जवाब दिए छोड़ी हो! अच्छी सीख सिखाई है तेरे माँ-बाप ने, बड़ों से जबान लड़ाने की। एक तो तवा-सा मुँह खोले डोलती फिरे, कोई आए कोई जाए, किसी की चिंता ही नहीं, और ऊपर से कैंची जैसी जबान चलावै। मेरे बेटी होती तो इतने जवाब पर तो जबान खींचकर जिंदा गाड़ देती।'[3] इस प्रकार आए दिन एक तरफ अम्मा तो दूसरी तरफ से जेठाणी कटु बाणों से बेचारी प्रभा के दिल को चोट पहुँचाती है। इनके तानों से प्रभा का मन दु:खी हो जाता है। बेचारी चुपचाप सहने के अलावा कुछ कर नहीं पाती है।

प्रभा का जीवन उपेक्षा एवं उत्पीड़न से भरा हुआ है। समर, प्रभा को अपनी प्रगति में बाधा समझता है। जिस कारण दोनों के बीच संवाद नहीं होता है और प्रभा अपने पति के घर में ही एक अपिरिचित बनकर रह जाती है। शारीरिक, मानसिक एवं सहानुभूति के स्तर पर अपने ही घर के सदस्यों सांस, जेठाणी एवं पति आदि लोगों से प्रताड़ना को चुपचाप सहने वाली प्रभा का चित्रण करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते हैं – 'रूलाई जैसे उसके मुँह से निकल रही थी, और कोड़ा पड़ने पर भी पीड़ा की तड़पती मरोड़ की तरह उसका सारा शरीर सिसकियों के झटकों में भी पत्ती की तरह थर्रा उठता था। हिचकी उठती और वह ऊपर से नीचे तक ऐंठन से थरथरा जाती।'[4]

'कुलटा' उपन्यास की सशक्त स्त्री मिसेस तेजपाल भी अपनी शादीशुदा जिन्दगी से प्रसन्न नहीं है। अपने पति के मिल्टरी अंदाज के बर्ताव के कारण वह अपने ही घर में दम घुटता सा महसूस करती है। बचपन से लाड़-प्यार, स्वच्छन्द वृत्ति से पिता के घर में जीवन बिता चुकी मिसेज तेजपाल शादी के बाद उपेक्षा भरा जीवन व्यतीत कर रही है। उसका विद्रोह, अन्तर्मन की व्यथा एवं छटपटाह उसके स्वच्छन्दत: से गीत गाने में परिलक्षित होता है। उसके स्वभाव का वर्णन राजेन्द्र यादव इस प्रकार करते हैं – 'रूठे बच्चे की तरह वे जैसे अनिच्छा पूर्वक झेंप से मुस्कुराती खिंची चली आ रही है, उनकी आँखे लाल थी ओर वे बार-बार नाक सुड़क रही थी। बिन्दी बिगड़ गई थी दूसरे हाथ से कभी-कभी कान के ऊपर बाल ठीक कर लेती थी।'[5] 'मिसेज तेजपाल अपने वैवाहिक जीवन की विषमताओं के जहर को अनेक रंगीनियों में डूबा देना चाहती है। लेकिन उसे सुख और शान्ति नहीं मिल पाती।'[6]

दहेज प्रभा भारतीय समाज का कोढ़ है। इसके कारण कितनी ही युवतियों को अपने जीवन व अपनी कोमल आकांक्षाओं को त्यागना पड़ता है। 'सारा आकाश' की प्रभा सर्व गुण सम्पन्न स्त्री है। परन्तु अपनी दहेज में मायके से अधिक धन सम्पत्ति या साजो-सामान न ला सकने के कारण सास व जेठाणी द्वारा बार-बार प्रताड़ित होती रहती है। समर की माँ को इस बात का बड़ा दुख होता है कि उसे अपने लड़के की शादी में कुछ भी नहीं मिला। प्रभा द्वारा साधारण सी गलती पर भी उसके शरीर और मन को उसकी सास उसे प्रताड़ित करती है– 'बड़ी आई, दाल तो मैंने चख ली थी। अरे। तुम्हारे यहाँ निरा नमक खाया जाता हो, हमें क्या मतलब? जरा कम ही डाल देती। दुबारा मागने में कौन-सी इज्जत जाती है। लो, अब इन्हें यह भी सिखाओ। हमें तो शादी में कुछ भी नहीं मिला, न लड़की ही मिली न...'[7] प्रभा के ससुराल का प्रत्येक सदस्य समर की शादी में अधिक धन-सम्पत्ति न मिलने के कारण उससे

* शोधार्थी (हिन्दी) वनस्थली विद्यापीठ, (राज.) भारत

नाराज है। वर्तमान समाज में शादी ब्याह एक व्यापार बनकर रह गया है। समर प्रभा की साड़ी फट जाने पर उसकी माँ से उसके लिए नयी साड़ी माँगता है कि उसकी शादी में बची हुई कोई एकाद साड़ी ही उसे दे दो। इस पर माँ भड़क उठती है और बौखलाकर कहती है – 'शादी का रखा है पत्थर, तू क्या कहीं चला गया था? कौन सा खजाना आया था शादी में? और कितने जनम हो गए शादी को कि उसकी बात याद दिला रहा है? क्यों रे, तब की सब चीजे अभी तक रखी ही होंगी? मुन्नी को नहीं दिया कुछ जाते वक्त? यह गई थी तब इसे कुछ नहीं दिया?'[8]

निम्न मध्य परिवार के सब लोग अपने घर की बेटी की शादी के लिए कितने परेशान होते हैं उसका मार्मिक चित्रण 'सारा आकाश' उपन्यास में किया है – मुन्नी की शादी में दहेज एवं बारातियों की खातिरदारी करते–करते समर का परिवार पूर्णत: कंगाल हो जाता है 'लगातार प्रहारों से मजबूर होकर घर की कुछ चीजें बेच बांधकर, कुछ भाई साहब की शादी में मिली चीजें मिलाकर दहेज दिया।'[9]

सन्तानहीनता नारी जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी व कलंक है। सन्तानहीन नारी को घर–परिवार में ही नहीं सम्पूर्ण समाज द्वारा बुरी दृष्टि से देखा जाता है। 'सारा आकाश' उपन्यास में प्रभा के विवाह को दो साल होने पर भी सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। इससे प्रभा की जेठाणी उसे बार–बार ताने देती रहती है और वह अपने बच्चों के साथ प्रभा को खेलने से भी मना करती है। वह इस बर्ताव से बहुत परेशान रहती है और कहती है 'बताओं मैं क्या करूँ? सारा दिन मेरी जान खाई जाती है. . . बाँझ–बाँझ कह–कहकर भाभी, अम्मा कोसती रहती है। भाभी अपनी बिटिया के पास नहीं झाँकने देती। छाया से बचाती है।'[10]

'कुलटा' उपन्यास की नि:सन्तान मिसेज तेजपाल अपने आप को अकेला महसूस करती है। वह अपने मातृत्व की पूर्ति के लिए पड़ोसियों के बच्चों से प्रेम पूर्वक व्यवहार से पूरा करने का प्रयास करती है। मिसेज तेजपाल की इसी संवेदना का चित्रण करते हुए डॉ. राधा गिरधारी लिखती है 'नि:संतान मिसेज तेजपाल अपनी रिक्तता की पूर्ति गड्डी से बातचीत में पूरी करती है। अपना सम्पूर्ण उसके प्रति लुटाती हुई उसमें उलझी हुई मन रमायें रहती है।'[11]

नारी जीवन की एक विडम्बना उसके पति व प्रेमी द्वारा छला जाना भी है। 'सारा आकाश' उपन्यास की मुन्नी स्वयं अपने पति द्वारा छली गयी है। मुन्नी का जीवन विडम्बना और शोषण से भरा हुआ है। 'एक डेढ़ साल तो गाड़ी रोते खिंचती रही, लेकिन सास के मरते ही मुसीबतों का पहाड़ आकर टूट पड़ा। अब पतिदेव का हाथ पकड़ने वाला कौन था। उसने जाने किसको लाकर घर में डाल दिया। सुनते हैं, कोई ब्राह्मण जाति की थी। नौकरानी की तरह अपनी और उस रखैल की मुन्नी से सेवा कराता, और दो–दो, तीन–तीन दिन खाना नहीं देता था और भी न जाने कितने कहे–अनकहे अत्याचार किए। मुन्नी तो बताती ही नहीं थी। रात–रात भर इसकी दोनों हथेलियों पर खाट के पाए रखकर उसे कुढ़ाने और जलाने को . . . और एक दिन सारे शरीर पर बेतों के फूले हुए नीले निशान लेकर मुन्नी सुबह–सुबह फिर हमारे यहाँ आ गई।'[12]

'शह और मात' उपन्यास की सुजाता उदय से सच्चा प्रेम करती है परन्तु उदय का सुजाता के प्रति प्रेम नहीं है वह व्यापार का ढोंग सा प्रतीत होता है। 'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नी हीनता की ग्रंथि से ग्रस्त स्त्री है। कुरूप दिखने वाली निन्नी अपने जीवन में कई पुरूषों से प्रेम में धोखा खा चुकी है। 'निन्नी के जीवन में दर्शन के अतिरिक्त बैजल और सागर भी क्षणिक उन्माद उत्पन्न कर चले गये। सागर निन्नी के पड़ोसी त्रिपाठी बाबू का भतीजा था जो निन्नी से विवाह न करके उसके शरीर से खिलवाड़ करना चाहता था वह भी उसकी अतृप्त इच्छाओं को जागृत करके निन्नी को छोड़कर चला गया।'[13]

इन सब व्यथाओं के कारण अक्सर नारी हताश, निराशा व कुंठित हो जाती है 'सारा आकाश' की प्रभा ऐसी ही स्त्री है। वह अपने ससुराल वालों, सास, जेठाणी एवं स्वयं पति के बर्ताव से बहुत परेशान रहती है। शादी के बाद दो साल तक उसका पति बात नहीं करता है। विवाह के बाद प्रभा अपेक्षा, व्यथा एवं दु:ख को चुपचाप सहती रहती है।

शारीरिक एवं मानसिक शोषण करके पति द्वारा त्यागी गयी 'मुन्नी' की वेदनाओं को 'सारा आकश' उपन्यास में दिल को दहला देने वाली दर्द भरी दास्तान के साथ उकेरा है। समर के शब्दों में 'मुन्नी तो पता नहीं कुछ सोचती भी है या नहीं। अधिक से अधिक चुप और तटस्थ रहना उसका स्वभाव हो गया है, सब नीचे होंगे तो वह ऊपर अकेली बैठी–बैठी एकटक ताका करेगी। . . . भीतर जैसे उसे कोई चीज पीसे डाल रही हो। . . . अठारह–उन्नीस बरस की चकमते मोती सी उम्र झुर्रियों और दुख के पाले में मुरझा गई है।'[14] 'कुलटा' उपन्यास की मिसेज तेजपाल अपने अंदर ही अंदर घुट–घुट कर जिन्दगी को काट रही है। उसकी आन्तरिक पीड़ा पर प्रकाश डालते हुए डॉ. राधा गिरधारी लिखती है – 'सुशिक्षित सौम्य एवं हँसमुख मिसेज तेजपाल भीतर से आहत सी लगती है, अपनी मुस्कुराहट और गीतों में मन की पीड़ा को छिपा लेती है।'[15]

'अनदेखे अनजान पुल' की निन्नी अपने अर्न्तमन में उपेक्षित सा अनुभव करती है। उसकी कुरूपता स्वास्थ्य जीवन में बाधक सिद्ध होती है और हीनता की ग्रंथि से कुठाग्रस्त निन्नी स्वयं अपने अस्तित्व तक को नकारती है। 'सौन्दर्य के प्रति ईर्ष्या अनुभव करती हुई निन्नी ने आजीवन उपेक्षा और कुण्ठाओं का अनुभव किया। मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित निन्नी रात–दिन स्वप्नावस्था में डूबी रहती है।'[16]

इस प्रकार राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में नारी जीवन की विविध समस्याएँ परिलक्षित होती है। समाज के प्रत्येक स्तर पर नारी जीवन उपेक्षा एवं उत्पीड़न से भरा हुआ दिखाई देता है। दहेज एवं अनेमल विवाह जैसी समस्याओं के साथ–साथ वर्तमान नारी आज नवीन समस्याओं से भी जूझ रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, पृ.सं. 29
2. वही, पृ.सं. 33
3. वही, पृ.सं. 64
4. वही, पृ.सं. 99
5. राजेन्द्र यादव, कुलटा, पृ.सं. 162
6. डॉ. शांति भारद्वाज, हिन्दी उपन्यास और जीवन, पृ.सं. 250
7. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, पृ.सं. 33
8. वही, पृ.सं. 33
9. वही, पृ.सं. 35
10. वही, पृ.सं. 182
11. डॉ. राधा गिरधारी, राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज, पृ.सं. 56
12. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, पृ.सं.35
13. डॉ. राधा गिरधारी, राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज, पृ.सं. 28
14. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, प,ृसं. 35
15. डॉ. राधा गिरधारी, राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज, पृ.सं. 22
16. वही, पृ.सं. 27

श्रेष्ठ संस्कारों के निर्माण में उच्च शिक्षा की भूमिका

डॉ. कांति पचौरी *

शोध सारांश – नैतिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षण से लेकर महाविद्यालयीन शिक्षण तक अनिवार्य रूप से होना आवश्यक है क्योंकि उत्तम समाज के लिए सभ्य, सुसंस्कृत एवं गुणवान नागरिकों का होना आवश्यक है। बाल्यकाल में ही श्रेष्ठ संस्कारों के निर्माण से ही मनुष्य में नैतिकता का स्थायी भाव उत्पन्न होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से परिवार द्वारा यह कार्य सरलता से सम्पन्न किया जा सकता है एवं षिक्षण संस्थाओं के द्वारा इसे पुष्टता प्रदान की जा सकती है।

नैतिकता के मूल केन्द्र भारत मे नैतिकता पतन, गंभीर चिंतन का विषय है। वस्तुत: चरित्र एवं नैतिकता का भाव बालकों में प्रारंभ से ही निर्मित किया जाना आवश्यक है। अतीत में छोटे-छोटे बच्चों को महापुरूषों की कहानियां आदि के माध्यम से संस्कार सम्पन्न बनाया जाता था। मातृदेवों भव, पितृदेवों भव, आचार्य देवों भव का विचार बचपन से ही मन में घर कर जाता था। आचार्य उनकी श्रद्धा का केन्द्र होते थे। किन्तु वर्तमान में स्थितियां विपरीत है। आज जीवन की आपाधापी तथा पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के कारण नैतिकता के भाव सुरक्षित नहीं हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि पुरातन भारतीय ग्रन्थों में नैतिकता के जो उच्च मानदण्ड स्थापित किये गये हैं, उनके आधार पर नैतिक शिक्षा का व्यापक पाठ्यक्रम तैया किया जाय हालांकि यह असाध्य नहीं पर कष्ट साध्य अवश्य होगा किन्तु समाज हित एवं देश हित के लिये यह कष्ट सहना ही होगा, तभी हम सुदृढ़ समाज एवं राष्ट्र के नव निर्माण में योगदान दे सकेंगे।

प्रस्तावना – अत: आज आवश्यकता है उच्च शिक्षा की ओर आकर्षित करने की जिससे उच्च शिक्षा के डगमगाते कदमों में स्थिरता आए। इसी क्रम में शासन ने न केवल उच्च शिक्षा को स्वरोजगार उन्मुखी बनाने की कोषिष की है बल्कि सामाजिक दायरें में रहकर उच्च शिक्षा ग्रहण कर सके इसके लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, भोज विश्वविद्यालय, कम्यूनिटी कॅालेज, डीम विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। जिससे उच्च शिक्षा ग्रहण कर एक स्वस्थ्य समाज का निर्माण कर सके क्योंकि स्वस्थ्य समाज में ही स्वस्थ्य व कुशल श्रमिक मिलेगा तभी देष आर्थिक विकास की गति को प्राप्त कर सकेगा।

भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली में वर्तमान में 544 विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर की संस्थाएं षामिल हैं। इनमें 260 राज्य विश्वविद्यालय, 73 राज्यों के निजी विश्वविद्यालय, 42 केन्द्रीय विश्वविद्यालय, 130 डीम्ड विश्वविद्यालय, 33 संसद द्वारा स्थापित राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएं और 5 विविध राज्यों के कानून से स्थापित संस्थान शामिल हैं। इनके अलावा देश भर में 3,432 महिला महाविद्यालयों सहित 25,951 महाविद्यालय भी संचालित हैं। इसके बाद भी युनेस्कों की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 70 फीसदी वयस्क निरक्षर 9 देशों में रहते हैं, जिसमें सर्वाधिक 24,74 प्रतिशत भारत में हैं उच्च शिक्षा के लिए आज विकसित देश जहां कुल बजट का 67 प्रतिशत खर्च कर रहे हैं वहीं भारत राष्ट्रीय आय का मात्र 0.70 प्रतिशत ही खर्च कर रहा है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में व्यावसायिक पाठ्यक्रम से शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की ओर चले जाना बहुत आसान है। जबकि दुनिया के अन्य अनेक देशों में व्यवसायिक पाठ्यक्रम से शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की ओर चले जाना बहुत आसान है। भारत में शिक्षा व्यवसाय लचीली भी नहीं है और शिक्षण संस्थाओं की गुणवत्ता में कॅाफी भिन्नता होती है जिससे छात्रों को विकल्प नहीं मिल पाते।

शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य रूप से निम्न समस्याएं चिंता का विषय हैं –

1. अनियमित और दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली का प्रचलन।
2. जनभागीदारी समितियों का बढ़ता राजनीतिकरण बेरोजगारी को बढ़ती उच्च शिक्षा।
3. शिक्षकों का नियमित रूप से पढ़ाने में रूचि न लेना तथा असमान और परंपरागत पाठ्यक्रम।
4. कठोर शैक्षणिक सरंचना के कारण शिक्षा में परिवर्तन के प्रति उदासीनता।
5. महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश की संख्या अधिक होने के बाद भी उपस्थिति का हद दर्जे तक कम होना।
6. तदर्थ और ठेका व्यवस्था से गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव।

भारत की प्राचीन गुरूकुल परंपरा पर यदि हम नजर डाले तो पाएंगे कि प्राचीन शिक्षा पद्धति मौखिक और वाचिक अधिक थी। पुस्तकीय कम गरू का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि वह शिल्प के रूप में एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करता था जो सामाजिक दायित्वों को भली-भांति निर्वाह कर सके। माता-पिता की आज्ञा से या स्वत: प्रेरित होकर छात्र अपना सुविधा संपन्न जीवन छोड़कर ज्ञान की पिपासा में गुरूकुल में प्रवेश लेता था। वहां उसे ऐसी शिक्षा मिलती थी जो जीवन से परिचित कराती थी। उस समय शिक्षा का संबंध आजीविका से ही जुड़ा हुआ नहीं था, बल्कि शिक्षा व्यक्ति के समग्र व्यक्तिगत को निखारती थी।

शिक्षा का अर्थ है सीखना जो व्यक्ति सीखना बंद कर देता है। शिक्षा हमें अनेक स्तरों पर प्राप्त होती है। शिक्षा प्रत्येक महत्वकांक्षी समाज की मूलभूत चिंतन शैली एवं सर्वोच्च प्राथमिकता है। शिक्षा समाज के सृजन का केन्द्र बिन्दु है। इसलिए उसका संबंध भूत, वर्तमान और भविष्य के बियायामों के एक साथ जुड़ा है, शिक्षा परंपरागत सांस्कृतिक धरोहर का हस्तांतरण एक

* सहायक प्राध्यापक (रसायन शास्त्र) शासकीय निर्भया सिंह पटेल विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

पीढ़ी से दूसरी को करती है। शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा ही व्यक्ति की आत्मा का आहार है, क्योंकि शिक्षा के बिना मनुष्य की शक्तियां उसी प्रकार निष्फल हो जाती हैं जिस प्रकार जागरूक किसान के परिश्रम के बिना जल से रहित बिना ज्योति हुई भूमि में पड़े हुए बीज की उत्पादक शक्ति आज की उच्च शिक्षा ने शिक्षा की स्फूर्ति एवं शिक्षा के अवमूल्यन को ही बढ़ावा दिया है, यही कारण है कि उच्च शिक्षा अनेक अन्तर्विरोधों, अन्तर्द्वन्द्वों एवं विविधमुखी समस्याओं से ग्रस्त हैं, आज की उच्च शिक्षा एक साथ ही विविध लक्ष्यों की पूति करना चाहती है। उसकी यह चेष्टा उसे लक्ष्यविहीन बनाती चली जा रही है, शिक्षा शास्त्रियों के मनोबल को गिराने के हर संभव दवाब डाले जा रहे हैं सामाजिक जागरूकता एवं अनुशासन के अभाव ने उच्च शिक्षा में अनेक उलझने पैदा कर दी है। ऐसी स्थिति में उच्च शिक्षा का मूल्य उद्देश्य क्या हो? कैसी शिक्षा प्रदान की जाए उच्च शिक्षा में कौन से सुधार परिवर्तन किए जाएं। यह एक विचारणीय प्रश्न है। 1986 की नई शिक्षा-नीति में कहा गया कि 21वीं शताब्दी की पीढ़ी के लिए हमें ऐसी शिक्षा नीति का निर्माण करना है, जो गतिशील जीवन और एक सूत्रबद्ध राष्ट्र का निर्माण कर सके।

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर मे शिक्षा का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना शहरों में अधिक व्यापक एवं तीव्र गति से हुआ है। शिक्षा स्तर एवं गुणवत्ता के मध्य खाई बढ़ती जा रही है, जहां कान्वेंट स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे प्राथमिक स्तर पर ही आधुनिक सूचना एवं संचार माध्यमों द्वारा शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, वहीं देश के अधिकतर बच्चे खुले आसमान के नीचे बिना कॉपी पुस्तक के शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य हैं। इस व्यवस्था ने शिक्षित युवा वर्ग को इतना प्रभावित किया है कि शैक्षणिक बेरोजगारी की प्रवृत्ति बढ़ रही है उद्योगपति अपने उद्योगों में देश के प्रमुख एवं ख्याति प्राप्त विद्यालयों से रोजगार दे पाने में सक्षम होते हैं तथा असंख्य विद्यार्थी व्यावसायिक डिग्री लिए दिशाहीन होकर सड़कों पर भटक रहे हैं यह सब शिक्षा पर वैश्वीकरण का ही प्रभाव है।

निष्कर्ष - भारत सरकार द्वारा समय समय पर किए गए प्रयासों से साक्षरता की दर सन् 1951 में 18.33 प्रतिशत से बढ़कर सन् 2011 में 56.54 प्रतिशत हो गई है। जिसमें महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत भी लगातार बढ़ रहा है। लेकिन यदि प्राथमिक शिक्षा से प्रायमरी शिक्षा की बात करें तो षोध द्वारा यह पता चलता है कि 50 प्रतिशत बच्चे पांचवी कक्षा तक आते-आते स्कूल छोड़ देते हैं और उच्च एवं तकनीक शिक्षा स्तर तक 100 में 01 छात्र बचता है। सरकार वैसे तो अपने प्रत्येक बजट में शिक्षा पर व्यय की राशि बढ़ाने की बात करती है फिर भी इस रूढ़िवादी व सांस्कृतिक परम्पराओं एवं परम्परावादी बाधाओं के चलते अधिकांशतया महिलाएं विशेषतया ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा से वंचित रह जाती हैं इन समस्याओं से निपटने के लिए ग्रामीण क्षेत्र की छात्र/छात्राओं के लिए उच्च शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए शासन द्वारा विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्ति योजनाएं क्रियान्वित की जा रही है जैसे- गांव की बेटी, प्रतिभा किरण, विक्रमादित्य छात्रवृत्ति, बीड़ी छात्रवृत्ति निर्धन छात्रवृत्ति भूमिहीन किसान छात्रवृत्ति आदि। जिससे स्नातक/स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा आर्थिक समस्याओं के कारण अध्ययन बीच में ही न छोड़ दें।

भारत में शैक्षणिक सुधारों के साथ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी वांछितपरिवर्तन किए गए हैं। आज भारत में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये हैं। राष्ट्रीय साक्षरता ही दर पर यदि गौर करें तो यह सन् 1951 में 18.33 प्रतिशत थी जो 2001 में बढ़कर 64.84 प्रतिशत हो गई है और वर्तमान में 2011 की जनगणना के अनुसार यह पिछले 2001 के दशक तुलना में करीब 10 प्रतिशत बढ़ी है। देश में इस समय करीब 82.2 प्रतिशत पुरूष एवं 65.6 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं।

परिणाम - आज शिक्षा सुविधाओं काफी प्रचार प्रसार हुआ है। तथा सरकार की नीति के परिणाम स्परूप वर्ग समाजों में शिक्षा का काफी प्रचलन हो गया है। अभी इनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में होने लगा है। व्यावसायिक शिक्षा का प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। शिक्षा सुविधाओं में वृद्धि परिणाम स्परूप रोजगार क अवसरों में वृद्धि हुई है तथा लोगों का रहन सहन ऊंचा है। उच्च शिक्षा में विकास के फलस्वरूप विदेश अध्ययन एवं छात्रवृत्ति सुविधाओं को प्राप्त कर भारीतीय छात्र नये-नये विषयों में रोजगार प्राप्त करते हुये देश के विकास को गति प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

अंत में मेरा यह भी सुझाव है कि उच्चतर शिक्षा में लगी सरकारी संस्थाओं के साथ-साथ गैर सरकारी संस्थाओं का योगदान भी नकारा नहीं जा सकता। सरकार को गैर सरकारी क्षेत्र की संस्थाओं को भी यू. जी. सी. द्वारा निर्धारित मानदंडों के अंतर्गत लाकर विधिवत अनुदान देना चाहिए। यदि सरकार शिक्षा के क्षेत्र में राजनैतिक हथकण्डे न अपनायें तो बेहतर होगा। अन्यथा 52 प्रतिशत युवाओं पर गर्व करने वाला यह देश मूल्यहीन शिक्षा को बढ़ावा देने में सहयोगी होगा। अत: उच्च शिक्षा में समाज विज्ञान के अन्य विषयों का अध्यन-अध्यापन प्रभावपूर्ण पद्धति से किये जाने की आवश्यकता है। सभी क्षे पिछले पचास वर्षों में देश में आर्थिक , सामाजिक , राजनैतिक , सांस्कृतिक, भौतिक तकनीकि त्रों में और भी तेजी से परिवर्तन हुआ है। लेकिन इस संभावना को इन्कार नहीं किया जा सकता है कि 21 वीं शताब्दी में सभी क्षेत्रों में और भी तेजी से परिवर्तन आऐंगे, उन परिवर्तन को दूर दृष्टि से नहीं आंका गया तो निश्चित है कि बरबादी व निराशा के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। राष्ट्र के आर्थिक सांस्कृतिक विकास मे शिक्षा की महत्वपूर्ण भुमिका है। दरअसल, शिक्षा ज्ञान का अमूल्य अस्त्र है एवं भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है जिससे सभ्यताएं बनती हैं, संस्कृतियां परवान चढ़ती है और इतिहास लिखे जाते है। शिक्षा कोई वस्तु नहीं है बल्कि जीवन दर्शन व सामाजिक विकास का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। इक्कीसवीं शताब्दी के लिए गठित अंतर्राष्ट्रीय प्रतिवेदन के अनुसार- उच्च शिक्षा, आर्थिक विकास की प्रेरक शक्ति है, वह ज्ञान का भण्डार भी है, ज्ञान का सृजन भी सभी क्षेत्रों में कुशल प्रबन्धन के लिए सुसंचालित शिक्षा व्यवस्था अनिवार्य है। इसी कारण सुविख्यात शिक्षाविद डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था- उच्च शिक्षा नि:संदेह सरकार का दायित्व है। उच्च शिक्षा के समुदाय व राष्ट्र शक्ति सम्पन्न व लोकतंत्र मजबूत होता है जिससे मानवता पर आधारित विकास गतिमान होता है तथा इससे शक्ति सद्भाव और सामाजिक न्याय को बल मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Economics review 2013-2014.
2. Kurushtatra Monthly Magzine 2010 December
3. Times of India Lucknow 15 july 2010
4. Economic Growth and Planning 2010.

****

घरेलू जल शोधन के प्रति पारिवारिक रूझान - ग्वालियर शहर के विशेष संदर्भ में

कंचन दुबे *

प्रस्तावना - सुरक्षित स्वच्छ जल स्वास्थ्य की मौलिक आवश्यकता है। अधिकांश रोगों की उत्पत्ति का कारण अस्वच्छ जल का सेवन करना है। 'अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा 1980 वाले दशक को 'जल के दशक' के नाम से समर्पित किया गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'वर्ष 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य' के लक्ष्य की पूर्ति के लिए कार्यक्रम के अंग के रूप में '1990 तक सबके लिए स्वच्छ जल' का नारा दिया था।

स्वच्छ और स्वास्थ्यकर जल की परिभाषा है-

1. जल जो हानिकारक रोगजनक जीवाणुओं से रहित हो।
2. हानिकारक रसायनिक पदार्थों से रहित हो।
3. सुस्वाद अर्थात् रंग और गंधहीन हो।
4. पेय या घरेलू उपयोग के लायक हो।

यदि उपर्युक्त कसौटियों पर जल खरा नहीं है तो उसे संक्रमित कहा जाता है।[1] विकासशील देशों में जल संक्रमण मानवीय क्रियाकलापों द्वारा निरंतर बढ़ता जा रहा है। बिना पेय स्वच्छ पेय जल की प्रचुरता के सामुदायिक स्वास्थ्य की देखभाल संभव नहीं है। 'जल प्रदूषण, निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम 1974 के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इस अधिनियम के अध्याय 5 में धारा 19 से 33 क में महत्वपूर्ण प्रावधान दिये हैं। इन प्रावधानों के द्वारा जल के प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण किया जा सकता है।'[2]

जल प्रदूषण के कारण -

- **वाहितमल-** 'घरेलू तथा सार्वजनिक शौचालयों के निकले हुए मलमूत्र को नदी नालों एवं तालाबों में विसर्जित कर दिया जाता है। जब ये दूषित वाहित जल सीवरों से होता हुआ जल स्त्रोतों में मिल जाता है तो गंभीर जल प्रदूषण होता है।'[3]
- **अपर्माजक -** घरों एवं अस्पतालों, होटलों, धर्मशालाओं आदि में बर्तन एवं वस्त्रों की धुलाई हेतु अपमार्जकों का उपयोग किया जाता है। जल में शीघ्रता से अपर्माकों का घुलना इसके बढ़ते उपयोग का कारण है। यह अपमार्जक जल के साथ नालियों व नालों के सहारे नदियों व तालाबों में पहुँचकर जल का प्रदूषित करता है।
- **कृषि अपशिष्ट-** 'फसल के उत्पादन को बढ़ाने के लिये रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवार नाशकों का प्रयोग किया जाता है। ये वर्षा जल के साथ नदियों, झीलों, तालाबों में पहुँचकर जल को प्रदूषित करते हैं।'[4]
- **औद्योगिक अपशिष्ट-** 'औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थों के जल में विसर्जित करने से जल प्रदूषित होता है।'[5]
- **रेडियो धर्मी अवशिष्ट -** जब वायुमंडल में रेडियोधर्मी कण दूर-दूर तक फैल जाते हैं तो वे पृथ्वी पर गिरकर जल स्त्रोतों में पहुँच जाते हैं और उसे प्रदूषित कर देते हैं।
- **घरेलू वाहि:स्त्राव -**'जल प्रदूषण का एक मुख्य कारण घरेलू कूड़ा कचरा है। सब्जियों एवं फलों के छिलके, सड़े हुए फल व सब्जी, चूल्हे की राख, गंदे कपड़ों के टुकड़े पॉलिथिनों में भरकर फैंका गया कूड़ा कचरा भी जल को प्रदूषित करता है।'[6] ये कचरे की पॉलिथिन नालियों एवं चैम्बरों में पानी के निकास में बाधक बनती हैं और उन्हें चौक कर देती हैं। नालियों एवं चैम्बरों का गंदा पानी यदि पानी की पाईप लाईन चटकी हो तो यह स्वच्छ पानी में मिश्रित हो जाता है और स्वच्छ पानी को प्रदूषित कर देता है। वर्षा ऋतु में इस प्रकार से पानी के प्रदूषण का खतरा अधिक होता है।

'आज स्थिति महानगरों, नगरों तथा छोटे नगरों की एक सी है किन्तु महानगरों की कुछ अधिक खराब है। वहां के कुओं, हैंडपपों का जल पीने योग्य नहीं रहा। इसके प्रदूषित होने का कारण है पानी की अत्यधिक घुलनशीलता। रासायनिक पदार्थ तथा अन्य गंदगी व सीवर का रिस रहा पानी या फिर पुरानी पाईपों का लीक होना। इन सबसे भूमिगत जल में गंदगी व विषैले पदार्थ घुलकर पहुँचते हैं व पानी में मिल जाते हैं। भूमिगत जल भी प्रदूषित होकर अनेक रोगों का कारण बनता है। सरकार के संबंधित विभागों ने तो कुछ कुओं व हैंडपंपों के पानी को न पीने के लिए चेतावनी के बोर्ड भी लगा रखे हैं।'[7]

प्रदूषित जल मानव, जीव, जंतु एवं वनस्पति सभी के लिए हानिकारक है। प्रदूषित जल के उपयोग से मानव में हैजा, अतिसार, पीलिया, टाईफाइड आदि संक्रामक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रदूषित जल पेड़ पौधों को नष्ट करता है तथा इससे बहुत से जीव जन्तु भी मर जाते हैं। उपरोक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए शोधार्थी ने घरेलू स्तर पर जल की दशा और दिशा ज्ञात करने की आवश्यकता महसूस की और अपने शोध का विषय 'घरेलू जल शोधन के प्रति पारिवारिक रूझान'(ग्वालियर शहर के विशेष संदर्भ में) चुना।

उद्देश्य - ग्वालियर शहरवासियों का घरेलू स्तर पर जल शोधन के प्रति पारिवारिक रूझान ज्ञात करना।

परिकल्पना - शोध अध्ययन हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया-

'घरेलू स्तर पर जल के शुद्धिकरण में शिक्षित एवं अशिक्षित परिवारों के रूझान में अंतर नहीं पाया जायेगा।'

* शोधार्थी (भूगोल) शासकीय कमलाराजे कन्या महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

शोध प्रविधि – शोध अध्ययन हेतु ग्वालियर शहर के 200 परिवारों का दैव निदर्शन विधि से चयन किया गया। तथ्यों के संकलन हेतु प्रश्नावली का निर्माण किया गया। प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया गया परिकल्पना की सार्थकता हेतु टी – परीक्षण का उपयोग किया गया।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण

तालिका क्रं. 1

पीने के पानी का घरेलू शुद्धिकरण के प्रति पारिवारिक रूझान

शुद्धिकरण	सर्वेक्षित परिवार	
	संख्या	प्रतिशत
शुद्धिकरण करते हैं	140	70%
शुद्धिकरण नहीं करते हैं	60	30%
योग	200	100%

तालिका क्र. 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 70% परिवारों का घरेलू जल शोधन के प्रति रूझान है। 30% परिवार घरेलू स्तर पर पीने के पानी का शोधन नहीं करते हैं अत: उनका रूझान नहीं पाया गया।

तालिका क्रं. 2

सर्वेक्षित परिवारों में जल शुद्धिकरण हेतु प्रयुक्त विधि

जल शोधन विधि	सर्वेक्षित परिवार	
	संख्या	प्रतिशत
उबालकर	32	22.85
छानकर	43	30.71
फिटकरी द्वारा	28	20.00
यंत्र द्वारा	37	26.42
योग	140	100

तालिका क्रं. 2 दर्शाती है कि सर्वाधिक परिवार 30.71% घरेलू स्तर पर जलशुद्धिकरण हेतु जल को छानते है जबकि 26.42% लोग जल शोधन यंत्र का प्रयोग करते हैं। 22.85% परिवार जल को उबालकर व 20.00 फिटकरी द्वारा जल शोधन करते हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि जल का छानना सर्वाधिक प्रचलित है जबकि फिटकरी के प्रयोग का प्रचलन न्यूनतम है।

तालिका क्रं. 3

सर्वेक्षित परिवारों के मुखिया का शैक्षिक स्तर

शिक्षा का स्तर	सर्वेक्षित परिवार	
	संख्या	प्रतिशत
प्राथमिक शिक्षित	11	5.5
माध्यमिक शिक्षित	19	9.5
इन्टर शिक्षित	44	22.0
स्नातक शिक्षित	70	35.0
स्नातकोत्तर शिक्षित	45	22.5
अशिक्षित	11	5.5
योग	200	100

तालिका क्रं. 3 सर्वोक्षित परिवारों के शैक्षिक स्तर को प्रदर्शित करती है। तालिका दर्शाती है कि सर्वाधिक परिवार 35% स्नातक शिक्षित हैं तथा न्यूनतम परिवार 5.5% प्राथमिक शिक्षित व 5.5% अशिक्षित हैं।

तालिका क्रं. 4 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्र. 4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि घरेलू स्तर पर जल शुद्धिकरण हेतु मिडिल, इन्टर एवं स्नातक शिक्षित परिवारों द्वारा घरेलू स्तर पर जलशोधन हेतु जल को छाना जाता है। स्नातकोत्तर शिक्षित परिवार जल को यंत्र द्वारा शुद्ध करते हैं तथा प्राथमिक शिक्षित एवं अशिक्षित परिवारों में अधिकतर फिटकरी का प्रयोग किया जाता है।

तालिका क्रं. 5 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्रं. 5 से स्पष्ट है कि टी–परीक्षण का मूल्य 198 स्वातंत्रयांश पर 0.4717 है जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक है। आंकड़े दर्शाते हैं कि शिक्षित परिवारों का घरेलू जल शुद्धिकरण के प्रति रूझान का माध्य 0.70 हे जो कि अशिक्षित परिवारों के माध्य 0.64 तुलना में अधिक है किंतु दोनों के माध्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना – 'घरेलू स्तर पर जल के शुद्धिकरण में शिक्षित एवं अशिक्षित परिवारों के रूझान में अंतर नहीं पाया जायेगा।' स्वीकृत होती है अर्थात घरेलू स्तर पर जलशुद्धिकरण में शिक्षित एवं आशिक्षित परिवारों के रूझान मे मामूली अंतर पाया गया। इस प्रकार शिक्षित परिवारों का रूझान अशिक्षित परिवारों की तुलना में मामूली अधिक पाया गया।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध अध्ययन से सर्वेक्षित परीवारों के संदर्भ में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये।

1. अधिकांश परिवारों में 70% घरेलू जल शुद्धिकरण के प्रति रूझान पाया गया।
2. घरेलू स्तर पर जल शोधन हेतु जल को छानने की विधि के प्रति रूझान सर्वाधिक 30.71% तथा न्यूनतम 20% फिटकरी द्वारा शुद्धिकरण का पाया गया। यंत्र द्वारा जल शोधन के प्रति रूझान द्वितीय स्थान पर 26.42% तथा उबालने की विधि का 22.85% तृतीय स्थान पर पाया गया।
3. माध्यमिक शिक्षित से स्नातक शिक्षित परिवारों का रूझान जल को छानने की विधि के प्रति पाया गया जबकि प्राथमिक शिक्षित एवं अशिक्षित परिवारों का फिटकरी के प्रयोग की ओर पाया गया। स्नातकोत्तर शिक्षित परिवारों का रूझान यंत्र द्वारा जल शोधन की ओर सर्वाधिक पाया गया।
4. शिक्षित परिवारों का घरेलू जल शोधन के प्रति रूझान अशिक्षित परिवारों की तुलना में मामूली अधिक पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पार्क, के 'सामुदायिक स्वास्थ्य विज्ञान' पंचम संस्करण, प्रकाशक मे. बनारसीदास भनोत, 1167, प्रेमनगर, जबलपुर 482001, पृष्ठ क्र. 40।
2. शर्मा, डॉ. राजकमार 'पर्यावरण संरक्षण एवं कानून' प्रथम संस्करण, 2010, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 110033 पृष्ठ क्रं. 130

3–6.शर्मा डॉ. राजकुमार 'पर्यावरण समस्या एवं समाधान' प्रथम संस्करण 2010, कल्पना प्रकाशन दिल्ली– 110033, पृष्ठ क्र. 66,67।

7. भाटिया, सुदर्शन 'जल ही जीवन है' भारत पुस्तक भंडार, फेस ई 16265 ए, गली नं. 16, सोनिया विहार, दिल्ली 94, पृष्ठ 103।

तालिका क्रं. 4
शैक्षिक स्तर के अनुसार घरेलू जल शोधन हेतु प्रयुक्त विधियाँ

शोधन विधि	सर्वेक्षित परिवारों का शैक्षिक स्तर						योग	
	प्राथमिक	मिडिल	इन्टर	स्नातक	स्नातकोत्तर	अशिक्षित	संख्या	प्रतिशत
उबालकर	1	2	7	10	10	2	32	22.85
छानकर	1	4	8	21	7	2	43	30.71
फिटकरी द्धारा	4	3	7	7	4	3	28	20.0
यंत्र द्धारा	2	2	5	16	12	-	37	26.42
योग	8	11	27	54	33	7	140	100

तालिका क्रं. 5
शिक्षित एवं अशिक्षित परिवारों का घरेलू जल शुद्धिकरण के प्रति रूझान का माध्य, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण तालिका

	माध्य	मानक विचलन	स्वातं।यांश	टी-परीक्षण का मूल्य	रिमार्क
शिक्षित	0.70	0.46	198	0.4717	P 70.05
अशिक्षित	0.64	0.50			

****

प्राथमिक एवं माध्यमिक शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर का तुलनात्मक मूल्यांकन

अर्जुमन बानो * डॉ. मंजू दुबे **

प्रस्तावना – शिक्षा का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों का चहुमुखी विकास करना है। शिक्षा से विद्यार्थियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि होती है। उनकी आंतरिक शक्तियों का विकास होता है। वे स्वयं को पहचानना सीखते हैं और आत्म ज्ञान के आधार पर वे अपने व्यक्तिगत आदर्श सुनिश्चित करते हैं। शिक्षा ही विद्यार्थियों में मानवता की भावना विकसित करती है। वे स्वयं के साथ-साथ अपने परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझते हैं। शिक्षा के माध्यम से ही विद्यार्थियों की शक्ति को राष्ट्र व मानवता के हित में कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। जीवन की बाल्यावस्था में विद्यार्थी सर्वाधिक ज्ञान ग्रहण करते हैं तथा उनकी आदतें व चिंतन की दिशायें निर्धारित होती हैं। अत: विद्यार्थियों का शैक्षणिक स्तर उच्च होना नितांत आवश्यक है। ग्वालियर शहर में शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों का शैक्षणिक स्तर कैसा है? यह ज्ञात करने के लिए प्रस्तुत शोध का विषय 'प्राथमिक एवं माध्यमिक शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर का तुलनात्मक मूल्यांकन' चुना गया है।

उद्देश्य-

1. बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर का मूल्यांकन करना।
2. बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना – शोध अध्ययन हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया -'ग्वालियर शहर के प्राथमिक एवं माध्यमिक शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर में अंतर नहीं पाया जायेगा'

शोध प्रविधि-शोध अध्ययन हेतु ग्वालियर शहर के लश्कर, ग्वालियर एवं मुरार क्षेत्रों से शासकीय माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत प्रति क्षेत्र से 50 बालक एवं 50 बालिकाओं का दैव निदर्शन विधि से चयन किया गया। इस प्रकार कुल 150 बालक एवं 150 बालिकायें कुल 300 विद्यार्थियों का चयन किया गया। तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची द्वारा किया गया सांख्यकीय विश्लेषण हेतु माध्य, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण का उपयोग किया गया।

वर्गीकरण एवं विश्लेषण – प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण अग्रानुसार किया गया (तालिका क्रमांक 1 एवं 2 व ग्राफ क्रमांक-1 एवं 2)

तालिका क्रमांक-1 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्र. 1 में विद्यार्थियों के शैक्षणिक स्तर का लिंगानुसार वर्गीकरण किया गया हैं। तालिका दर्शाती है, कि `B' ग्रेड पाने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत सर्वाधिक पाया गया। 76(25.30%) बालक तथा 69(23.00%) बालिकाओं कुल 145(48.33%) विद्यार्थियों ने `B' ग्रेड प्राप्त किया। `A' ग्रेड पाने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत द्वितीय स्थान पर रहा। `A' ग्रेड प्राप्त विद्यार्थियों में 46(15.33%) बालक 60(20.00%) बालिकाओं कुल 100(35.33%) विद्यार्थी पाये गये। `C' ग्रेड प्राप्त विद्यार्थियों का प्रतिशत बहुत की कम पाया गया। `C' ग्रेड पाने वाले विद्यार्थियों में 27(9.00%) बालक तथा 21(7.00%) बालिकायें कुल 48 (16%) विद्यार्थी पायें गये। `D' ग्रेड पाने वाला केवल 1(0.33%) विद्यार्थी पाया गया।।

ग्राफ क्रमांक-1 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक-2 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक-2 से स्पष्ट है, कि बालकों के शैक्षणिक स्तर का माध्य 3.11 तथा बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर का माध्य 3.26 है, अर्थात् बालकों के शैक्षणिक स्तर का माध्य बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर के माध्य की तुलना में कम है। तालिका दर्शाती है, कि 'टी' परीक्षण का परिगणित मूल्य 298 स्वातंत्र्यांश पर 1.815 है, जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक है, अत: शून्य परिकल्पना 'ग्वालियर शहर के प्राथमिक एवं माध्यमिक शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर में अन्तर नहीं पाया जायेगा' स्वीकृत होती है। इसी प्रकार ग्वालियर शहर के प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अत: निष्कर्ष निकलता है, कि शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर में मामूली अंतर पाया गया। बालकों का स्तर बालिकाओं की तुलना में मामूली अधिक पाया गया।

ग्राफ क्रमांक-2 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

निष्कर्ष – शोध अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि ग्वालियर शहर के प्राथमिक एवं माध्यमिक शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं में 'B' ग्रेड पाने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत सर्वाधिक (48.33%) पाया गया। "A' ग्रेड पाने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत (35.33%) द्वितीय स्थान पर पाया गया। बालकों का शैक्षणिक स्तर बालिकाओं की तुलना में मामूली अधिक पाया गया।

सुझाव –विद्यार्थियों के शैक्षणिक स्तर को उन्नत बनाने हेतु पर्याप्त भवन, पर्याप्त अध्यापक एवं अन्य सुविधाओं की बढ़ौत्तरी तथा मासिक टेस्ट अनिवार्य करना प्रस्तावित है।

*शोधार्थी, के.आर.जी कॉलेज, ग्वालियर (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (गृह विज्ञान) के. आर. जी कॉलेज, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. माथुर, एस.एस. 'शिक्षक तथा माध्यमिक शिक्षा' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-3।
2. पाठक, पी.डी. 'शिक्षा मनोविज्ञान', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा-2
3. श्रीवास्तव, डी.एन., 'अनुसंधान विधियां', साहित्य प्रकाशन, आगरा।
4. श्रीवास्तव डी.एन, वर्मा प्रीति, 'मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2

तालिका क्रमांक-1
बालक एवं बालिकाओं का शैक्षणिक स्तर

क्र.	शैक्षणिक स्तर (ग्रेड में)	विद्यार्थी				कुल	
		बालक		बालिका			
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	A	46	15.33	60	20.00	106	35.33
2	B	76	25.33	69	23.00	145	48.33
3	C	27	9.00	21	7.00	48	16.00
4	D	1	0.33	00	00	1	0.33
	योग	**150**	**50.00**	**150**	**50.00**	**300**	**100.00**

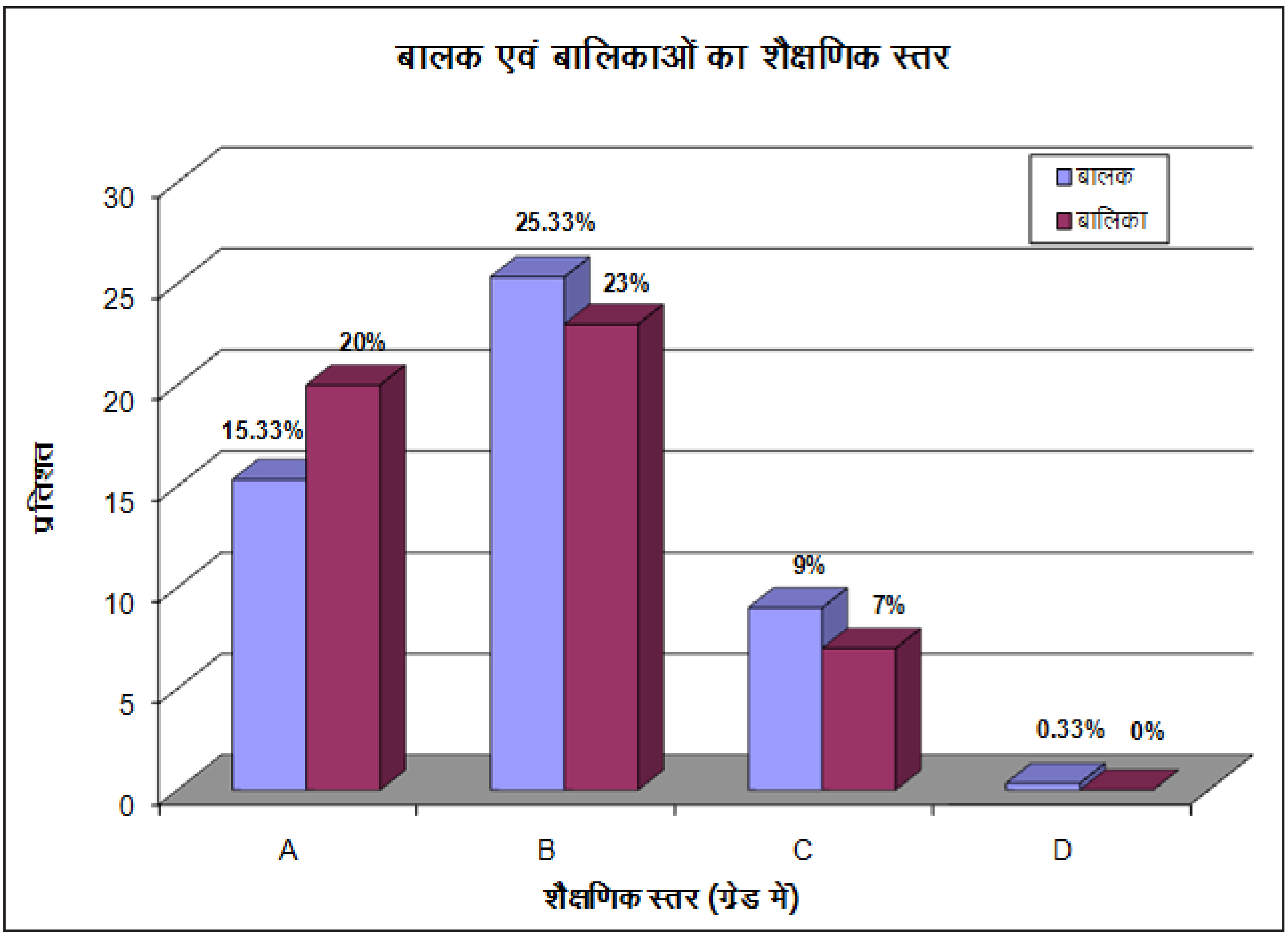

तालिका क्रमांक–2

बालक बालिकाओं के शैक्षणिक स्तर के माध्य, मानक विचलन एवं टी–परीक्षण की तालिका

लिंग	माध्य	मानक	मानक त्रुटि	स्वातंत्र्यांश	टी परीक्षण का मूल्य	रिमार्क
बालक	3.11	0.70	0.057	298	1.815	P> 0.05
बालिकायें	3.26	0.68	0.056			

0.05 स्तर पर असार्थक

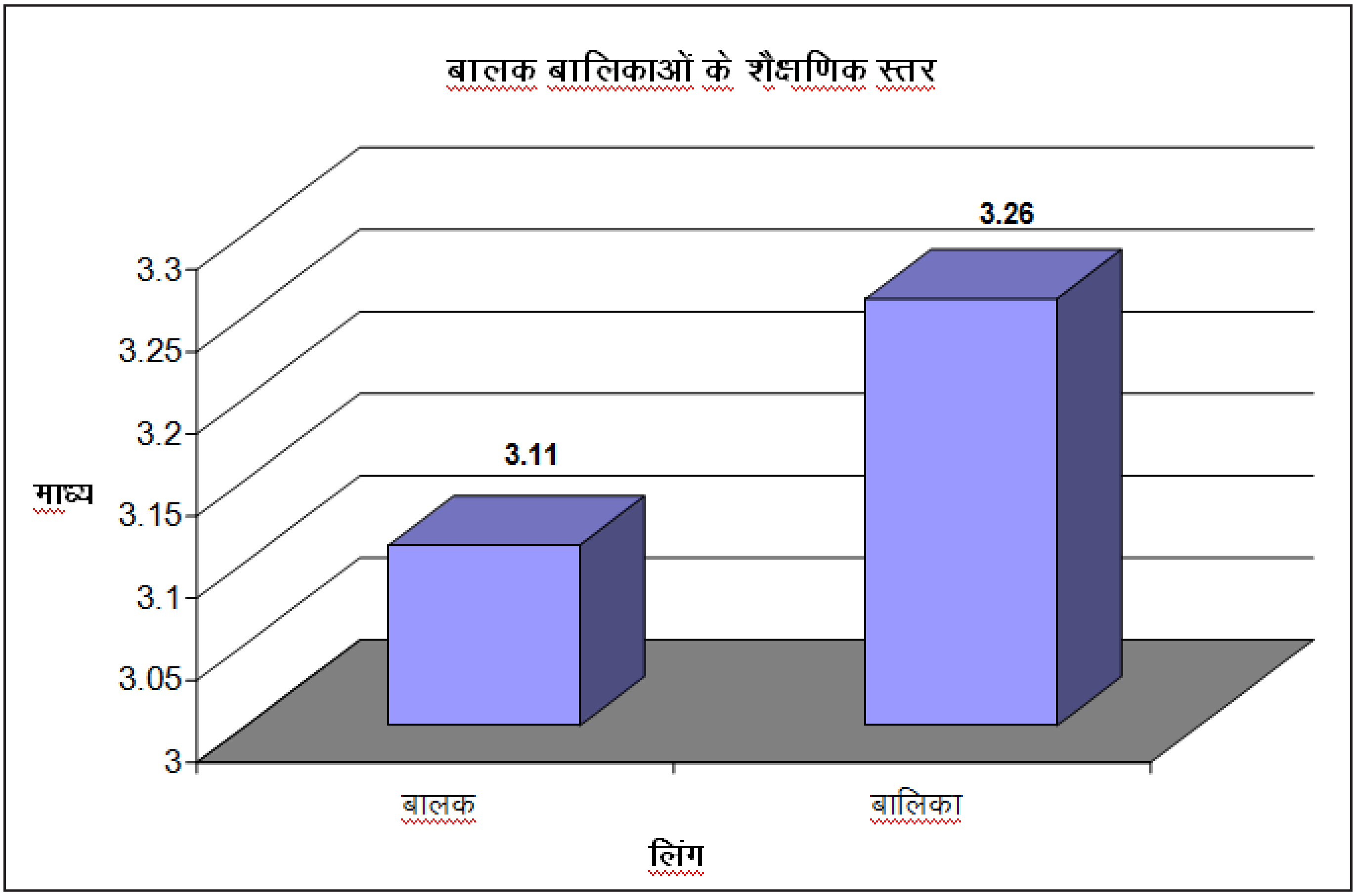

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) Jan. to March 2015, E- Journal
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

राजनीति और धर्म-महात्मा गांधी के विचारों के संदर्भ में

डॉ. नितिन सहारिया *

प्रस्तावना – गांधी जी का स्थान आज के युग के विचारको में बहुत ऊंचा में माना जाता है। विश्व के कुछ महानतम विचारकों में बहुत ऊंचा माना जाता है। विश्व के कुछ महानतम विचारकों ने उनके प्रति जो श्रद्धाभाव प्रकट किये हैं। उनसे उसकी महानता का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन कहते है कि 'आने वाली पीढ़िया मुश्किल से यह विश्वास करेंगी कि गांधी जैसा हाड़ मांस का पुतला कभी यह धरती में पर हुआ था।'इसी प्रकार क्लेमेन्ट एटली ने कहा था कि 'एक चौथाई शताब्दी तक हर एक भारतीय समस्या के समाधान में यही व्यक्ति सबसे बड़ा तत्व माना जाता था। डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार धर्म षून्य राजनीति गांधी जी के लिए एक ऐसे शव के समान थी जो केवल दाह किये जाने ही योग्य हो।

गांधी जी ने अपने सिद्धांतो की प्रेरणा अधिकाशं भारतीय धर्मग्रन्थों से लीं। विशेष रूप के उनके विचारों पर गीता, रामायण तथा महाभारत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनकी बहुत बड़ी देन यह रही है कि उन्होंने राजनीति का अध्यात्मीकरण कर दिया। उनके प्रवचन तथा यंग इण्डिया और हरिजन में प्रकाशित लेख खण्डों में प्रकाशित हुए हैं जिनमें उन्होंने अपनी राजनैतिक विचारधारा का भी बडे ़विस्तार से विवरण दिया है। उनकी कल्पना का आदार्श राम राज्य था। अहिसंक लोकतंत्र या रामराज्य की कल्पना को गांधी जी ने अपने हरिजन व यंग इण्ड़िया के प्रकाशनों में व्यक्त किया था। इसी को 'राज्य-रहित जनतंत्र' तो कोई 'दार्षनिक अराजकतावाद' तो कोई आदार्श समाज तो कोई रामज्य और कोई 'ग्राम स्वराज्य' का सिद्धंत कहते है। गांधी जी चाहते थे कि वर्तमान राज्य जो शोषण पर आधारित तथा मानव की स्वतंत्रता की घातक है उसका उपक्षय या अवसान अनिवार्य है। इस कारण कुछ अल्पज्ञानी लोग गांधी जी को अराजकतावादी कह देते हैं। 'अराजकता' पश्चिम की शब्दावली है और बैकूनिन, प्रिंस क्रोपटानिक तथा उनके पूर्ववातियों, फोरिअर, प्रधां आदि को श्रेणी में गिना जाता है पर गांधी जी न तो बैकुनिन और क्रोपाटकिन की तरह क्रांतिकारी अराजक थे, जिनकी अराजकता में हिंसा, सत्ता की छीना-झपटी और हत्या का संगठित कार्य था, और न ही फोरिअर व प्रधां की तरह कल्पनावादी थे। गांधी जी एक अहिंसात्मक समाज के निर्माणकर्ता थे जिन्होंने 'अहिन्सा' और सत्य के बल पर नये समाज की रचना का आधार प्रस्तुत किया। अवश्य ही गांधी जी राजनीतिज्ञों में महात्मा और महात्माओं में राजनीतिज्ञ थे।

वास्तव में, उनके अहिंसात्मक राज्य की कल्पना प्राचीन भारत का आदर्शो पर आधारित थी। वेद में (छान्दोग्य, बहदारण्यक उपनिशद् तथा शतपथ ब्राम्हाण में भी) धर्म एवं राज्य का परस्पर अटूट सम्बन्ध बतलाते हुए धर्म की महिमा को बडे ़विस्तार से बताया गया है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में, सत्य प्रधान सत्य-युग में जब कि धर्मतत्व सांगोपांग अर्थात् पूर्ण था, धर्म ही सबका शसक था। सम्पूर्ण प्रजा धर्म से ही परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करती थी। सब लोंगों ने धर्म में निरत रहने से, अन्याय और दुराचार का, कहीं भी, नाम और निशान नहीं था किसी का मन अधर्म की ओर प्रवृत ही नहीं होता था। धन और विद्या (ज्ञान) आदि का उपार्जन, कभी भी, अधर्म से, अन्याय से नहीं होता था।

चतुष्पात् सकलो धर्म: सत्यं चैव कृते युगे।
नाऽधर्मेणाऽऽगम: कश्चिन्मनुष्यान् प्रति वर्तते।। (मनु.1-87)

ऐसी मर्यादामयी सुव्यवस्थित में न तो किसी नियामक की (नियमकर्ता-शसक की) आवष्यकता थी, न पुलिस और न पलटन की! अर्थात् उस समय न तो राजा था और न किसी का राज्य? उस समय किसी भी प्रकार के दण्ड या किसी नियामक की आवश्यकता नही थी। धर्म के प्रभाव से उस समय सभी बड़े नियमबद्ध थे –

न राज्यं नैव राजाऽऽसीन्न दण्डोनैव दाण्डिक:।
धर्मेणैव प्रज्ञा: सर्वारक्ष्यन्ते स्म परस्परम्।। (महाभारत, शान्तिपर्व)

बाद में, जैसे-जैसे धर्म का ह्रास होता गया, वैसे-वैसे अधर्म और अन्याय का प्रसार होता गया। इसी से फिर प्रजा को सत्य पर चलाने के लिए, मर्यादाबद्ध करने के लिए राज्य की-दण्ड और नियामक की आवश्यकता बढ़ती गई। तभी फिर से धर्म-रक्षा के लिए, राष्ट्र में राजा का निर्वाचन होने लगा।

यह बात महाभारत में, राजनीति के प्रसंग में बडे युक्ति-युक्त विवेचन के साथ बतलायी गयी है। भीष्म पितामह ने महराज युधिष्ठिर से कहा है कि-

धर्माय राजा भवति न कामकरणाय तु। मान्धातरभिजानीहि राजा
लोकस्य रक्षिता। धर्म तिश्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिश्ठति।। (शान्ति
पर्व 90.3)

अर्थात् राज्य धर्म की रक्षा करने के लिए होता है-न कि मनमाने स्वेच्छाचार के लिए? चुंकि समस्त प्राणी धर्म के आधार पर स्थित है और धर्म राजा पर, अर्थात् शासक पर निर्भर है। अत: धर्म की रक्षा करने वाला शासक की वास्तव में प्रजा की सच्ची रक्षा कर सकता है, धर्म से उदासीन नहीं।

अत: जो राज्य स्वयं धर्म और नीति में परायण रहता है, उसके राष्ट्र में सम्पूर्ण प्रजा अपने-अपने कर्तव्य में, स्वधर्म में, संलग्न रहती है, उसकी कीर्ति अमर हो जाती है।

इसी के आधार पर गांधी जी ने अपना राजनैतिक सिद्धांत प्रतिपादित किया है।

* शासकीय एम.एम.महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत

गांधी जी के लिए धर्मविहीन राज्य मानव दुर्बलताओं की उपज है। वह केन्द्रित और संगठित हिंसा का स्वरूप है। वह आत्मविहीन एक यंत्र या पुर्जा है। ऐसा राज्य कभी हिंसा को अलग नहीं कर सकता क्योंकि उसका जन्म ही हिंसा के कारण हुआ है। हिंसा का आधार है। वह अपनी रक्षा के लिए मनुष्य को एक साधन मानता है और उसी रूप में उसका उपयोग करता है। वह धर्म आधारित राज्य के सही उद्येश का ठीक उल्टा है जिसके अनुसार राज्य को मानव हितो का साधन होना चाहिए। राज्य ज्यों–ज्यों केन्द्रीयकृत हो जाता है। त्यों–त्यों उसकी संहारक शक्ति आर्थात् हिंसात्मक शक्ति बढ़ती जाती है। गांधी जी कहते है कि इसीलिए राज्य की शक्ति को मैं सबसे अधिक भय की दृष्टि से देखता हूँ क्योंकि वह व्यक्तित्व का विनाश करके मानव जाति को सबसे अधिक क्षति पहुचांता है। गांधी जी ने राज्य को एक साधन होना स्वीकार किया है। मेरे लिए राजनैतिक सत्ता साधन नहीं बल्कि मानव के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का साधन मात्र है समाज की आदर्श व्यवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होगी क्योकि उसमें कोई राज्य न होगा। गांधी जी ने थोरी के इस सिद्धांत का पूर्ण समर्थन किया है कि वह सरकार सर्वोत्तम है जो सबसे कम शासन करें।'उनके मत' व्यक्ति की आत्मानुभूति साध्य है और राज्य को इसके लिए एक साधन बनकर व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए। इसके लिए राज्य को नैतिकता तथा आध्यात्मिकता पर आधारित होना चाहिए।

इस से स्पष्ट पता चलता है कि गांधी जी के विचारों में राजनीति और अध्यात्म के विचार जुड़वा हो गए हैं। इनमें धर्म और राजनीति का समन्वय स्पष्ट दिखाई देता है। केवल राजनीति ही गांधी जी के सभी विचारों का स्त्रोत ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। बाद में गांधी जी ने इसका संशोधन करके यह विचार व्यक्त किया है 'सत्य ईश्वर के बराबर है' अर्थात् यदि 'सत्य प्रत्येक मूल में है' तो जीवन का प्रत्येक पक्ष उस 'सत्य' से ही है। किसी सम्प्रदाय या मजहब से नहीं। उन्होंने 'आत्मकथा' में लिखा है जो लोग यह कहते है कि राजनीति से धर्म का कोई वास्ता नहीं वे नहीं जानते कि धर्म का अर्थ क्या है' मेरे लिए धर्मरहित राजनीति बिल्कुल गंदी चीज है जिससे हमेशा दूर रहना चाहिये। राजनीति में हमें स्वर्ग का राज्य स्थापित करना होगा। वह आगे चलकर कहते हैं' मैं राजनीति और धर्म को एक दूसर से अलग नही समझता। सच्चा धर्म जीवन की हर प्रवृति में व्याप्त होना चाहिए।

जब गांधी जी कहते हैं कि राजनीति को धर्म से अलग नहीं करना चाहिए तो धर्म से उनका तात्पर्य कोई विशेष पूजा पद्धाति, या कर्म काण्ड से नहीं होता। वह धर्म और नैतिकता में कोई अन्तर नहीं करते।

गांधी जी का विचार है कि धर्म तथा नैतिकता एक दूसरे से असम्बद्ध हो कर रह ही नहीं सकते। यदि कोई धार्मिक निर्देश अनैतिक प्रतीत हो, तो वैसे धर्म को गांधी धर्म ही नहीं कहेंगे, यहां तक कि कुछ धार्मिक अनुशंसायें अबौद्धिक प्रतीत हों, किन्तु नैतिकता एक दूसरे से असम्बद्ध हो रह कर ही नहीं सकते। यदि कोई धार्मिक निर्देश अनैतिक प्रतीत हो, तो वैसे धर्म को ही गांधी धर्म कहेंगे, यहाँ तक कि कुछ धार्मिक अनशंसायें अबौद्धिक प्रतीत हों, किन्तु नैतिकता के अनुरूप हों, तो गांधी को उन्हें स्वीकारने में कोई हिचक नहीं होगी। गांधी स्पष्ट कहते हैं कि यह संभव ही नहीं कि कोई क्रुर, असत्यवादी तथा हिंसक प्रवृति का हो और यह सोचता रहे कि ईश्वर का हस्त उनके सिर पर है। अपने विशिष्ट विचार को स्पष्ट करने के लिए गांधी प्रथमत: यह बताते हैं कि 'धर्म' से वे क्या समझते हैं। अत: गांधी जी स्पष्ट करते कि 'धर्म' से वे हिन्दू धर्म या किसी विशेष धर्म को सूचित नही करते। धर्म किसी विशेष धर्म से परे हैं, ऊपर है। गांधी के अनुसार धर्म वह शक्ति है जो मनुस्य के स्वभाव को पूर्णतया: परिवर्तित कर देता है, जो मानव का सत्य के साथ जोड़कर आत्म–शुद्धि कर साधन बन जाता है, यह मानव–स्वरूप का वह शाश्वत पक्ष है जो तब तक अशान्त रहता है , जब तक वह अपनी–आत्मा की वास्तविकता न समझ ले तथा सत्य रूप ईश्वर की उपलब्धि के रूप में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति न कर ले।

महात्मा गांधी के ऊपर उद्धृत विवरण के आधार पर गांधी के धर्म–विचार की विशिष्टतांए स्पष्ट हो जाती हैं। यह कहा जा सकता है कि गांधी के अनुसार धर्म–मानव के शाश्वत स्वरूप की अभिव्यक्ति है। मानव की पाष्विक प्रवृतियों या असवका जैविक पक्ष उसका शाश्वत स्वरूप नहीं है। उसका शाश्वत स्वरूप उसका ईश्वरीय पक्ष है , धर्म के सम्बन्ध में गांधी जी कि यह धारणा भारतीय मनीशियोंकी संकल्पना के बिल्कुल अनुकूल है। भारतीय दार्शनिकों ने भी धर्म को उपासना पद्धति नहीं माना है। उनके अनुसार धर्म शब्द के मुख्य अर्थ तीन है–(1) पालन पोषण करने वाल (2) धारण करने वाला (3) अवलम्बन देने वाला। धर्म सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है, सबका पालन–पोषण करता है और सबको अवलम्बन देता है। इसलिए सम्पूर्ण जगत् एकमात्र धर्म के हीबल पर सुस्थिर है। इसलिये राजनीति के महान् ऋषि चाणक्य ने कहा है कि—

'धर्मेण धार्यते लोक:'(चाणक्य सुत्र 1 अ)

इस प्रकार मनुष्य के जीवन को सदैव सुखगय बनाकर उसे कृतकृत्य कर देने वाला मुख्य पुरूषार्थ धर्म है।

ईश्वर की शक्ति समस्त जगत् को धारनण करती है, जिसमें विश्व को धारण करने की शक्ति है, उसे ईश्वरेच्छा रूप अलौकिक शक्ति का नाम धर्म है–

इस अस्थिर जगत् में धर्म ही सारी प्रजा को धारण करता है। अत: सम्पूर्ण प्रजा को, विभिन्न प्रकार के समाज को, एकसूत्र में सम्बद्ध करे धाारण करने के कारण ही धर्म ही धर्मता है। इसलिए महाभारत में महर्षि व्यास देव धर्म शब्द की ध्रियतेऽनेन इति धर्म:– इस तरह की यौगिकी व्युत्पत्ति करते हुए धर्म को जगत् का धारण, पालन–पोशण करने वाला महान् आधार बतलाया है–

धारणद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रज्ञा:।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं सधर्म इति निष्चय:।।

गांधी जी ने धर्म की इसी परिभाशा को स्वीकार किया है।

यदि धर्म प्रजा का सब प्रकार से व्यवस्थित रखने का प्रजा में सुख की वृद्धि करने का तथा हर प्रकार के विखण्डन तथा विकार से सुरक्षित रखने का आधार है तो राज्य सत्ता उसके बिना प्रजा पालन कर ही नहीं सकती वह प्रजा भक्षक तथा भ्रष्ट हो जाएगी।

इसी कारण महर्षि कौटिल्य ने दुराचार के गम्भीर परिणामो पर दृष्टि रखते हुए कहा है कि इतर लोगो की तो यह बात ही क्या है, सर्वोच आश्रतवाले–विरक्त, सन्यासी भी यदि अपने सदाचार से विरूद्ध आचरण करें, अथात! स्वेच्छाचार, दुराचार और दम्भ का आचरण करें, तो शासक का कर्त्तव्य है कि उन्हें उचित दण्ड देकर, उस अनाचार से बलात् रोके। क्योंकि अनाचार और दुराचार से ही राष्ट्र में अधर्म फैलता है। अत: शासक यदि उसकी उपेक्षा करता है, उसका निवारण नहीं करता है, तो फिर वह अनाचार धर्म को कलुषित करके अन्त में शासक और राष्ट्र को ही विनष्ट कर देता है–

प्रवृज्यासु वृथाचारान् राज्ञा दण्डेन वारयेत्।

धर्मोहधर्मोहपत: शास्तांर हन्त्युपेशित:।। (कौटिल्य अर्थशास्त्र)

अत: राजनीति का आधार धर्म ही रहना चाहियए क्योंकि महाभारत में स्पष्ट की कहा है कि–

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा: पापे: पापा: खले खला:।
राजानमनुवर्तन्ते यथा षास्तारं हन्त्युपेक्षित:।। (शान्तिपर्व)

अर्थात् राजा धर्मात्मा होता है, तो प्रजा भी वैसी होती है। राजा यदि पापाचारण करता है, तो फिर प्रजा भी पापाचार ही करने लगती है और राजा यदि खल होता है तो फिर प्रजा भी निश्चित वैसी ही हो जाती है। क्योकि उसके आचरण का समाज पर मुख्य असर पड़ता है। सब लोग उसी पका अनुकरण करते हैं। अत:यह बात ध्रुव सत्य है कि— जैसा राजा (शासक) होता है, वैसी ही प्रजा भी हो जाती है

इसी कारण महर्षि शुक्राचार्य ने बडे स्पष्ट शब्दो में कहा है कि समाज की धर्म और अधर्म की ओर प्रवृति होने में एकमात्र कारण शासक ही होता है—

धर्माधर्मप्रवृत्तौ तु नृप एव हि कारणम्।(शुक्रनीति–1–18)

इसलिए राज्य का यह मख्य कर्त्तव्य है कि— वह अपने राष्ट्र में धर्म की अभिवृद्धि पर अत्यधिक ध्यान दें क्योंकि धर्म की अभिवृद्धि होने पर ही राष्ट्र की अभिवृद्धि होती है और धर्म के हास से राष्ट्र का ह्रास होता है।

धर्मेवर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा।
तास्मिन् ह्रीयन्ते तस्माद् एच विवर्धयेत् !! (शान्तिपर्व 90,17)

प्रचीन मनीशियों तथा दार्शनिकों के सभी सिद्धान्तो को निचोड़ निकालकर गांधी जी ने भारत की परम्पराओं का अनुसरण करते हुए अति श्रेष्ठ सिद्धांत प्रस्तुत किया है कि राजनीति को धर्म से पृथक नहीं करना चाहिए अन्यथा वह विनाशकारी बन जाएगी।

महात्मा गांधी की राय में लोकतंत्र की रक्षा तो सिद्धांतों के द्धारा ही संभव है क्योंकि जब तक प्रजा सत्ता लोलुपता को ही अवलंबन करेगी तब तक वह कभी भी राष्ट्रहित की रक्षा नहीं कर सकती। गांधी जी के मत में पश्चिम में जो लोकतंत्र आज चल रहा है वह नाजीवाद या फासिस्टवाद का एक हल्का सा मिश्रण मात्र है सच्चा लोकतंत्र सदैव ही कुछ नैतिक सिद्धंतो पर अधारित होता है। जब सिद्धांत लुप्त हो जाते है तो चुनाव का आधार केवल प्रापेगण्डा ही रह जाता है। प्रापेगण्डा में जो व्यक्ति जितना गन्द दूसरों पर उछाल सकता है उतना ही असफल होता है। कुलीन तथा सरीफ लोग, श्रेष्ठ जन, न तो किसी गन्द उछाल सकते है अपने ऊपर गन्द उछालवाना पसन्द करते है। इसलिए वह चुनाव से हट जाते है और फिर प्रजातंत्र कमीनों तथा नीचों का तंत्र बनकर रह जाते हैं। इसलिए सिद्धांतविहीन राज्य दुराचार को ही जन्म देते है।

संत षरोमणि तुलसीदास ने भी कहा है कि ऊँच निवासु नीचि करतुती देखि न सकहिं पराइ विभूति अर्थात् जो ऊँचे पदो पर बैठे है या ऊँचा पद प्राप्त करने की लोलुपता रखते है वह अपने पद को प्राप्त करने अर्थात् कुर्सी और सत्ता प्राप्त करने के लिए नीच से नीच करतूत कर सकते है कितने नीचे गिर सकते है इसका अनुमान लगाना भी संभव नहीं है। इससे अधिक पतन अवस्था और क्या होगी और ऐसी स्थिति में राश्ट्र का पतन होगा ही। इस अधोगति का बचाने के लिए ही भारत के मनीषियों ने और महात्मा गांधी ने निरपेक्ष रूप से उद्धोश किया है कि यदि मानवता को पतन से तथा राष्ट्र को विनष्ट होने से बचाना है तो धर्म और राजनीति को अवियोज्य ही रहना चाहिए तथा राजनीति धर्म पर ही अवलम्बित रहनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गांधी–व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव: सस्ता साहित्य मंडल, गांधी स्मारक निधि(1966) पृ–20
2. व्ही पृ–21
3. व्ही–प्रस्तावना
4. (जो धवन को पुस्तक सर्वोदय तत्व दर्शन में उदघृत–.302)
5. वही पृ–68
6. वही–पृ.137
7. गांधी:जी आत्मकथा पृ.137
8. गांधी सत्य ही ईश्वर है–पृ.137
9. वही पृ.131
10. गांधी जी:सर्वोदय पृ.84
11. महादेव भाई की डायरी भाग–2 पृ.116
12. गॉधी जी यंग–इण्डिया 17–7–21
13. यंग–इण्डिया 12–5–20
14. गॉधी जी हरिजन 8–5–1940

****

भारत में 1857 से पूर्व अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष

डॉ. नितिन सहारिया *

प्रस्तावना – भारत वर्ष का इतिहास त्याग, बलिदान, शौर्य पराक्रम एवं मातृभूमि के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने का रहा है। इस मिट्टी मे जन्मे सूर्माओ ने अपने रक्त से भूमि का सींचा है। इस भूमि के योद्धा सिर कटने के बाद भी धड़ निरंतर धर्मयुद्ध जारी रहा करता था। इतिहास इस राष्ट्र का जीवन चरित्र है। 1757 ई. और 1857 के बीच एक नए भारत का उदय हुआ जिसमें काफी राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। शिवाजी के काल में पुर्तगालियों, डचों तथा अंग्रेजों का भारत की भूमि में प्रवेश हो गया था यद्यपि सभी व्यापारी का मुखौटा लगाकर आए थे। परन्तु उन्होनें न तो कभी इन्हें भारत का हित चिन्तक माना और न इनकी ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया शिवाजी ने वर्ष 1670 में दल बल सहित न केवल इन पर हमला किया अपितु इन फिरंगियों पर अपने पराक्रम की छाप भी छोड़ी ब्रिटिश लोगों की कूटनीति का सही और करारा उत्तर एक मात्र शि वाजी महाराज ने दिया। 1713 से 1740 में भारत लड़ाईयों से मुक्त रहा और व्यापार में लगा रहा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एकाधिकार का खतरा कम था। क्योंकि भारत में मुगल सम्राज्य तेजी से अराजकता की ओर बढ़ रहा था और मराठा सरदार चारों ओर से आतंक तथा विनाश फैला रहे थे। मुर्शिदाबाद लखनऊ व हैदराबाद का महत्व दिल्ली से अधिक था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने 1989 में अपना राजस्व बढ़ाने के सम्बन्ध में नई नीति बनाई। परिणाम स्वरूप कम्पनी ने 1744 में सरकार को दस लाख पौण्ड और 1750 में 40 लाख पौण्ड से भी अधिक का ऋण दिया।

मार्च 1748-1756 फ्रांसिसियों का प्रभाव रहा लेकिन बाद में प्लासी व बक्सर के युद्धों से बंगाल में अंग्रेजी कम्पनी का वर्चस्व हो गया और बंगाल,बिहार व उड़ीसा की दिवानी प्राप्त हो गई। हैदरअली और फिर टीपू सुल्तान से संघर्ष में रह कर कम्पनी ने सफलता प्राप्त की। लार्ड वेलेजाली व लार्ड डलहौजी की सम्राज्यवादी नीतियों के कारण कम्पनी का राज्य विस्तार हुआ। 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब के साथ-साथ मुल्तान, कष्मीर व पेशावर भी हमारे हाथों से चले गए। इसी समय बर्मा के साथ सतारा, नागपुर, झांसी और संभलपुर के साथ-साथ 1856 में अवध भी हमें गवाना पड़ा। 1856 मे बंगाल के अंदर संथालों का विद्रोह भी कम न था।

प्लासी की लड़ाई ने सत्ता का हंस्तारण किया। बक्सर की लड़ाई (1764) ने अधिकारों को जन्म दिया। नाम मात्र के मुगल सम्राट ने फरमान जारी करके बंगाल बिहार और उड़ीसा प्रान्तों की दीवानी कम्पनी को दे दी।

सत्रहवीं शताब्दी में भारत की औद्योगिक और वाणिज्य की स्थिति सर्वोच्च थी परन्तु अंग्रेजी शासन में व्यापार और उद्योग का हास सन् 1700 से प्रारंभ हुआ। समय-समय पर जब और जिस तरह भी अंग्रेजी को लाभ मिलता वैसे ही नियम बना दिए जाते। आयात शुल्क लगाना आदि के साथ साथ भारतीय माल की कीमतें 50 से 60 प्रतिशत कम बनी रही। कम्पनी माल की कीमतें इस प्रकार रखती थी कि कारीगरों एवं मजदूरों को नुकसान होता रहे। कम्पनी भारत और चीन के साथ व्यापार को एकाधिकार प्राप्त कर चुकी थी।

भारत सूती कपड़े के अलावा, रेशमी और ऊनी वस्त्र मशीनें और धातु की बनी अनेक वस्तुएं दूसरे देशों से मंगाता था। इस आयातित माल की प्रतियोगिता ने भारतीय उद्योग का नाश कर दिया।

वर्ष 1814 से वर्ष 1835 तक के कुछ आंकड़े इस प्रकार :-

वर्ष	भारत को भेजा गया, ब्रिटेन में बना सूती कपड़ा (गजों में)	ब्रिटेन में आया भारतीय सूती कपड़ा (गजों में)
1414	8,18,20208	12,66,608
1821	1,91,38,726	5,34,495
1828	4,28,22,077	4,22,504
1835	5,17,77,277	3,06,068

सन् 1814 और 1835 के बीच भारत से ब्रिटेन भेजा गया कपड़ा 13 लाख गज से घट कर 3 लाख गज से कुछ अधिक रह गया। उधर, भारत द्वारा अन्य देशों को भेजे गए माल के परिमाण में भी कमी आई। भारत अपने यहां निर्मित वस्तुओं के लिए विदेशी मंडियों से ही वंचित नही हो गया, बल्कि देश की अपनी मंडी भी विदशों से आयातिति माल से भर गई। ब्रिटेन से भारत भेजे गए सूती कपड़े के मूल्य में होने वाली वृद्धि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

वर्ष	लाख पौंडो में
1813	1.1
1831	16.5 (इस रकम में चीन भेजे गए माल का मूल्य सामिल है।
1840	38.6
1845	42.1
1850	52.2
1855	58.4
1856	63.0

* शासकीय एम.एम.महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत

सन 1814 में भारत में आई 10 लाख 80 हजार पौण्ड मूल्य की ब्रिटिश वस्तुओं की तुलना में सन 1829 में 40 लाख 50 हजार पौण्ड मूल्य की वस्तुएं इंग्लैंड से भारत भेजी गई। ये आंकड़े भी उस वृद्धि को यथोचित रीति से अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है, जिसे श्री क्रेफर्ड ने 'वाणिज्य के इतिहास में अद्धितीय' बताया है, क्योंकि सन् 1814 में मुद्रा का मूल्य उसके मानक-मूल्य से कोई 25-26 प्रतिशत कम था। यदि इस तथ्य को ध्यान में रखा जाए, तो सन 1814 की उपर्युक्त रकम 10 लाख 40 हजार ही रह जाती है। इसके अलावा सन् 1814 में फ्रांसीसी लड़ाईयों के कारण उंची थी और सन् 1828-29 में कीमतें गिरकर अपने समान्य शान्तिकालीन स्तर तर आ चुकी थी। अत: परिणाम की दृष्टि से उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि में इंग्लैड से भारत भेजे गए माल में चौगुनी वृद्धि की निम्नलिखित तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. एविडेन्स बिफोर द सेलेक्ट कमिटी आन ईस्ट इंडिया अफेयर्स, 1833 रिपोर्ट, खंड 2, भाग2, पृष्ट 511
2. वही, पृष्ट 511
3. वही
4. व्ही.डी. सावरकर - भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम पृष्ठ 32 -33
5. रामलखन शुक्ल- आधुनिक भारत का इतिहास (1857 का महानविद्रोह: स्नेह महाजन से) पृ. 239
6. वही पृ.191
7. वही पृ.72
8. जे.एस. ग्रेवाल - टाईटल न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 2 खण्ड - 03, द सिक्ख ऑफ पंजाब 1990 पृ. 125

वस्तु	1814	1828	पूर्ण वृद्धि प्रतिशत
तांबा (तैयार और बिना तैयार किया या) (अंडरवेट)37,619	41,472	4,123	11
लोहा, छड़,बोल्ट और ढला हुआ (हेडरवेट)1,86,454	4,38,629	2,52,125	135
बनात, ऊनी कपड़ा हल्का गर्म कपड़ा (संख्या) सुती कपड़ा सफेद और छिपा हुआ (गज) 6,80,234	3,48,43,110	3,41,62,876	5,022
सूती रस्सी (पौंड)8	45,58,185	45,58,18	5,69,77,213

****

हड़प्पा सभ्यता और सरस्वती नदी

डॉ. नितिन सहारिया *

प्रस्तावना – सरस्वती नदी का हड़प्पा सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। भारतीय प्राचीन ग्रन्थों (ऋग्वेद, पुराण, महाभारत इत्यादि) में सरस्वती नदी की महिमा का खूब गुणगान किया है। सरस्वती को नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ, माताओं में श्रेष्ठ, अत्यन्त बलशाली, प्रर्वतों के शिखरों को तिनके के समान बहाकर ले जाने वाली, अत प्रचण्ड, ममतामयी नदी तथा दीनहीन की दरिद्रता दूर करने वाली बताया गया है। सरस्वती नदी हिमालय से निकलकर, आर्यवर्त्त के मुख्य भू-भागों से गुजरती हुई अरब महासागन में गिरती थी। वर्तमान समय में सरस्वती नदी की उत्पत्ति हिमाचल प्रदेश के सिरमौर की पहाड़ियों से एक छोटे से नाले के रूप में होती है। कई और छोटे-छोटे पानी के स्त्रोत आकर मिलने से इसकी स्थिति में सुधार होता है। मार्कण्डेय नदी मिल जाने से आधुनिक सरस्वती का निर्माण होता है। आगे चलकर रासू नामक नगह पर सरस्वती तथा घग्घर नदियों का संगम रूप हो जाता है। फतेहबाद मानसा, सिरसा जिलों से निकलकर सरस्वती पदी राजस्थान के मरूस्थल मे लुप्त हो जाती है। राजस्थान के थार मरूस्थल में विशाल नदी तल तथा उसके आस-पास फैले हड़प्पा संस्कृति के अवेशेषों के आधार पर कह सकते है कि प्राचीन समय में निसंदेह सरस्वती नदी एक विशाली नदी थी। वर्तमान में इसको घग्घर हाकड़ा, सोतर तथा नाथ इत्यादि नामों से भी जाना जाता है।

कृषि की शुरूआज होने के साथ ही विश्व के अन्य भागों की तरह सरस्वती नदी घाटी में भी प्रारम्भिक कृषि संस्कृतियों के लोगों ने अपने बस्तियॉ बसानी शुरू की थी। सरस्वती नदी घाटी ने न केवल कृषि के लिये उपजाऊ भूमि तथा सिंचाई के लिये पानी, बल्कि उद्योग धन्धों के लिये व्यापक कच्चा मील और व्यापार के आवा-गमन के लिये अच्छे जल मार्ग भी प्रदान किये। ऐसी अनुकूल स्थिति होने के कारण प्रारम्भिक कृषि संस्कृतियों के छोटे-छोटे गॉव, समय के साथ-साथ हड़प्पा सभ्यता के विशाल नगरों में बदल गये। आरेन स्टेन, ए0 घोष, बी0बी0 लाल, एस0पी0 गुप्ता, सूरजभान, रफीक मुगल, आर0एस0 बिष्ट, बसन्त शिंदें, जे0पी0 जोशी, के0एन0 दीक्षित, अमर सिंह इत्यादि विद्वानों के अध्ययनों के माध्यम से सरस्वती नदी घाटी में हड़प्पा सभ्यता के नये आयाम प्रस्तुत किये गये। सरस्वती नदी घाटी में सबसे अधिक 1000 से भी ज्यादा हड़प्पा सभ्यता के पुरास्थल खोजे जा चुके हैं। जो बड़े शहरों, छोटे शहरों, कस्बे, गांवों, व्यापारिक केन्द्रों तथा औद्योगिक केन्द्रों के रूप में विकसित थे। निसंदेह सरस्वती नदी घाटी हड़प्पा सभ्यता का सबसे ज्यादा पंसदीदा स्थल रहा और यह क्षेत्र हड़प्पा सभ्यता के उदय तथा विकास का भी महत्वपूर्ण गवाह बना।

कालक्रम – कार्बन तिथि और सांस्कृतिक वस्तुओं के आधार पर कह सकते है कि सरस्वती नदी घाटी की प्रारम्भिक कृषि बस्तियां विश्व के अन्य कृषि बस्तियों के समकक्ष है। सरस्वती नदी घाटी की प्रारम्भिक कार्बन तिथि 7570-7180 ई.पू., 6688-8201 ई.पू., 6200-5850 ई.पू. भिरडिना से प्राप्त हुई है। (दीक्षित और मणि, 2012 : 268) लगभग इनके ही समकक्ष कार्बन तिथि कालीबंगा, राखीगढ़ी तथा गिरावड़ से प्राप्तु हुई है। कुणाल के आरम्भिक स्तरों से लघु पत्थरों के उपकरण (माईक्रोलिथ) और नव-पाषाणिक परम्परा के उपकरण प्राप्त हुये है। (खत्री और आचार्य, 1997) इसी प्रकार के उपकरण बलूचिस्तान में मेहरगढ़ (नव-पाषाणिक स्थल) से भी प्राप्त हुये। भिरड़ाना और मसूदपुर से प्राप्त मानव की मृण्मय-मूर्तियां भी प्रारम्भिक बलूची संस्कृति की मृण्मय-मूतियों से काफी समानता रखती है। इस प्रकार सरस्वती नदी घाटी में स्थाई बस्तियों की शुरूआत विश्व की अन्य ग्रामीण बस्तियों के साथ ही हुई। सरस्वती तथा उसकी सहायक नदियों में पूरे वर्ष पानी भरा रहता था। और वह अपने साथ उपजाऊ मिट्टी बहाकर लाती थी। कृषि की उत्पत्ति के कारण मनुष्यों ने खाना-बदोश जीवन छोड़कर इस क्षेत्र में बसना शुरू किया। कालान्तर में इन्हीं से ग्रामीण बस्तियों का विकास हुआ और वा आगे चलकर हड़प्पा सभ्यता के नगरों में परिवर्तित हो गये।

गृह-निर्माण संरचना – कृणाल, भिरड़ाना, गिरावड़, फरमाणा और फरमाणा-11 के उत्खननों से प्रारम्भिक कृषि संस्कृतियों की गृह-निर्माण संरचना पर व्यापक प्रकाश पड़ा। सरस्वती नदी घाटी में सबसे पहले लोगों ने गर्त निवासों (जमीन के अन्दर गड्ढे खोदकर) में रहना शुरू किया। इन गर्त निवासों के आस-पास छोटे-छोटे गड्ढों के माध्यम से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वे लोग गर्त निवासों के ऊपर लकड़ी तथा घास-फूस की सहायता से झोंपड़ियों का निर्माण करते थे। एक गर्त निवास समूह में बहुत से गर्त होते थे। जो विभिन्न-विभिन्न कार्यो के लिये और कूड़ा-कर्कट डालने के लिये प्रयोग किये जाते थे। जिसमें रहने वाले गर्त का अधिकतम व्यास 3.40 मीटर तथा कम से कम 2.00 मीटर होता था। अन्य उपयोगी गर्तो का व्यास 0.10-2.30 मीटर पाया गया है। 14 गर्तो के प्रमाण से, 16 गर्तो के भिरड़ाना से, 60 गर्तो के गिरावड़ से, 8 गर्तो के फरमाणा)-11 और 1 गर्त के से प्राप्त हुये है। कुणाल, गिरावड़ और फरमाणा-11 से हमें गर्त निवासों के साथ-साथ ईटों के प्रयोग के भी प्रमाण प्राप्त हुये है। 3200 ई.पू. तक आते-आते सरस्वती नदी घाटी में गृह-सरंचना का निर्माण गर्त निवासों से बदलकर सुरक्षा दीवारों से सुरक्षित कस्बों के अस्तित्व के रूप में आने लगा। इन कस्बों में संयुक्त घरों,

* शासकीय एम.एम.महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत

सुरक्षा दीवार, सुव्यवस्थित गलियां, अच्छी नालियों के प्रमाण मिलने लगे थे। इन घरों में अनेक कमरों के साथ रसोईघर, स्नानघर, संग्रहण के लिये अलग-अलग कमरों की व्यवस्था दिखाई देती है। इस सभी घरों के निर्माण के लिये कच्ची ईटों का प्रयोग किया जाता था। यही संव्यवस्थित व्यवस्थाएं आगे चलकर हड़प्पा सभ्यता के नगर-विन्यास योजना की विशेषताएं बनी।

कृषि और पशुपालन - सरस्वती नदी घाटी में कृषि का क्रमबन्ध रूप में विकास मिलता है। कुणाल के निचले स्तरों से केवल जौ और मसूर के प्रमाण मिलते है (सारस्वत और पोखरिया, 2002-03)। साथ ही बांस तथा विभिन्न प्रकार की घास-फूस के साक्ष्य भी प्राप्त हुये है। जो सम्भवत: झोपड़ियों के निर्माण के लिये प्रयोग में लाये जाते रहे होंगें। लेकिन ऊपर स्तरों से प्राप्त फसलों की विभिन्न प्रजातियॉ सरस्वती नदी घाटी में कृषि विकास की ओर इशारा कर रही है। कुणाल के ऊपरी स्तरों से गेंहू, जौ, चावल, मूँग, मसूर, तिल आदि की विभिन्न प्रकार की प्रजातियों के प्रमाण मिलने लगते है। कालीबंगा, बनावती, बालु, फरमाणा इत्यादि से हमें कृषि पर आधारित समाज का पता लगता है। विशिष्ट प्रकार की फसलें, फसल बोने की विधि, कृषि के उपकरण, सिंचाई व्यवस्था में व्यापक विकास को दर्शाती है। कालीबंगा से प्राप्त जुते हुये खेत और बनावली से प्राप्त हल का नमूना भी उच्च-स्तरीय कृषि की ओर इशारा करते है। बड़े-बड़े संग्रहण के स्थानों से भी ज्यादा मात्रा में किया गया फसल उत्पादनों के बारे में पता चलता है। नि-सन्देह सरस्वती नदी घाटी की उपजाऊ जमीन और अच्छी सिंचाई व्यवस्था ने प्रारम्भिक कृषि संस्कृतियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

कुणाल और गिरावड़ से प्राप्त साक्ष्य के आधार पर कह सकते है कि सरस्वती नदी घाटी में सर्वप्रथम बैल, गाय, भैंस, बकरी और सुअर को पालतू बनाया गया था। इनसे मुख्य रूप से भोजन प्राप्त किया जाता था। बैल, गाय और भैंस की प्राप्त हड्डियों से पता चलता है कि हड़प्पा कालीन पशुपालन में इनका मुख्य योगदान था। बैल का प्रयोग कृषि कार्य के साथ-साथ याता-यात के लिये भी किया जाता था। गाय तथा भैंस का प्रयोग सम्भवत: दूध के लिये ही किया जाता रहा होगा।, भेड़, बकरी और सुअर मुख्य रूप से माँस प्राप्त करने के काम में आते रहें होगें। इनके अलावा जंगली जानवरों तथा जलचरों के प्रमाण भी मिले है। इससे पता चलता है कि समाज में शिकारी प्रवृत्तियॉ भी प्रचलित थी।

उद्योग धन्धे तथा व्यापार -सरस्वती नदी घाटी में धातु को गलाने, आन्तरिक तथा बाहरी व्यापारिक गतिविधियों के साक्ष्य प्रारम्भिक स्तरों से ही मिलने लगते हैं। भिरड़ाना में गर्त निवासों से तांबे को गलाने वाले मृद्‌भाण्ड, तांबे के अयस्क प्राप्त हुये है और कुणाल तथा गिरावड़ से तांबे के बने उपकरण भी मिले है। (राव 2006, खत्री और आचार्य 1997, शिंदे 2011) इस प्रकार पता चलता है कि सरस्वती नदी घाटी के आरम्भिक लो धातु गलाने की कला से अच्छी तरह से परिचित थे। गर्त निवासों से प्राप्त कार्नेलियन अग्रेट, चालसिडनी और लापिस लाजुली के मनके विभिन्न स्थानों से की गई आयात गतिविधियों के साक्ष्य है। साथी ही सरस्वती नदी घाटी के लोगों के द्वारा अरावली के पत्थरों का विभिन्न समकालीन संस्कृतियों को निर्यात किया जाता था। हड़प्पा स्थल और उसकें आस-पास के क्षेत्रों से प्राप्त अरावली पत्थरों से इसका पता चलता है। (ला 2008) उत्खनन से प्राप्त बड़ी मात्रा में पशुओं की मृण्मयमूतियों, मृद्‌भाण्ड, चूड़ियॉ, मनके, पत्थरों और हड्डियों की वस्तुओं से भी स्थानीय उद्योगों की प्रगति के बारे में पता चलता है। विशिष्ट व्यापारिक गतिविधियों तथा उच्चस्तरीय उद्योग धन्धों के साक्ष्य लगभग 3000 ई.पू. सरस्वती नदी घाटी में मिलने लगते है। विभिन्न प्रकार के आभूषण, औजार और उपकरण, पुरास्थलों के उत्खननों और अन्वेषण के माध्यम से प्राप्त होने लगते है। मुद्राएं, बाट और माप आदि की उपस्थिति एक विशिष्ट प्रकार की बाजार प्रणाली के उदय का द्योतक है। 3000 ई.पू. के लगभग बड़ी मात्रा में अर्धकीमती पत्थरों के आभूषणों का आयात किया जाने लगा था और स्थानीय वस्तुओं का निर्यात भी। अरावली पहाड़ियों के आस-पास स्थानीय वस्तुओं को अनाने की कार्यशालाएँ स्थापित की जाने लगी थी। मानहेरू से हमें स्टेटाईट के मनके के बनाने की कार्यशाला के प्रमाण मिले है। (ठाकरान 2010) इस काल में सम्भवत: व्यापारिक लोगों के समूह की भी उत्पत्ति हो गई थी जो व्यापारिक तथा औद्योगिक कार्य की देख-भाल करते थे। इस प्रकार सरस्वती नदी घाटी में एक नगरीय सभ्यता के लिये जरूरी उद्योग धन्धों और व्यापारिक गतिविधियों की नींव डाल दी गई थी।

मृद्‌भाण्ड - सरस्वती नदी घाटी के प्रारम्भिक कृषि संस्कृतियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के मृद्‌भाण्ड उपयोग में लाये जाते थे। मुख्य रूप से थालियॉ, कटोरे, घड़े, हत्थेदार मृद्‌भाण्डों इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। मृद्‌भाण्ड भलि-भांति तैयार की गई मिट्टी से बनाये जाते थ। आरम्भिक स्तरों से प्राप्त बर्तनों की धीमे चाक पर बनाने के साक्ष्य मिले है। साथ ही हस्तनिर्मित मृद्‌भाण्डो के प्रमाण भी मिलते है। लेकिन बाद में मृद्‌भाण्डों को तज चाक पर बनाया जाने लागा था। इस मृद्‌भाण्ड पात्र-परम्परा में मुख्य तौर से लाल रंग, पाण्डु रंग और धूसर रंग के भाण्डों की परम्पराएँ प्रचलित थी। इन मृद्‌भाण्डों पर विशेष प्रकार के चित्रण मुख्यतय: लहरदार रेखाएं, लटकन चित्रण, वृत्त, वनस्पति, आड़ी तिरछी रेखाओं का चित्रण मिलता है। सरस्वती नदी घाटी में मृद्‌भाण्डों के कुछ एक आधारभूत बदलावों को छोड़कर हड़प्पा संस्कृति की मृद्‌भाण्ड-परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान निभाती रही है।

निष्कर्ष - सरस्वती नदी ने आरम्भिक कृषि संस्कृतियों को उपजाऊ जमीन के साथ-साथ सिंचाई के लिये व्यापक पानी प्रदान किया और शिवालिक तथा अरावती की पहाड़ियों के कारण उद्योग धन्धों को बढ़ावा मिला। सरस्वती नदी के लोगों ने कृषि और पशुपालन में विकास किया और विकसित एवं विशिष्ट मृद्‌भाण्ड कला का भी विकास किया। मृण्मयमृतियों, शवदाह, आभूषणों, कृषि, व्यापार और उद्योग धन्धों के माध्यम से एक आदर्श आर्थिक सामाजिक ढांचा तैयार किया। धीरे-धीरे सरस्वती नदी घाटी की ग्रामीण संस्कृतियों ने नगरीय जीवन में प्रवेश करने के सारे आवश्यक साधन जुटा लियें। इस प्रकार हजारों-हजारों वर्षो के क्रमबद्ध विकास से सरस्वती नदी घाटी में प्रथम नगरीय हड़प्पा सभ्यता का उदय हुआ माना जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Dikshit, K.N. and B.K. Mani, 2012. Indian Civilzation Evolved in the 8th Millenium
2. BCE in the Plains of 'Lost' River Saraswati. Puratattva-42:265-269
3. Kenoyer, J.M. And R.H. Meadow 2000. The Ravi Phase : A New Cultural Manifestation at Harappa in Harappa. In South Asian Archhaeolgy 1997, vol. i(Eds. Maurizio Taddei and Giuseppe De Marco), pp. 557=-76. Rome : Istitiuto Italiono per' I Africa El' Oriente.
4. Khatri, J.S. And M. Acharya 1997, Kunal : The Earliest Pre-Harappan Settlement, in Facts of Indian Civilzation (Eds. J.P. Joshi), pp. 88-91. Delhi AryanBooks International.

5. Law Randall William 2008. Inter-Regional Interaction and Urbanism in the ancient Indus Vally : A Geologic Provenience Study of Harappa's Rock and Mineral Assemblage, Ph.D. Thesis, Madison : University of Wisconsin.
6. Mughal, M.R. 1997. Ancient Cholistan : Archaeotogy and Architecture. Lahore Ferozsons.
7. Permar, Narender 2012, Protohistoric Investigations in the Bhiwani District of Haryana. Ph.D Thesis, Pune : Deccan College Post Graduate and Research Institute.
8. Petric, C.A., R.N. Singh and A.K. Singh 2009, Investigating Changing Settlement Dynamics on the Plains : the 2009 Survey and Excavations at Masudpur (Hissar District, Haryana) Puratattva 39 : 38-49.
9. Rao, L.S. 2006. Settlement pattern of the Predecessors of the Early Harappans at Bhirrana, District Fatehabad, Haryana Man and Environment XXXI (2) : 33-42.
10. Saraswat, K.S. and Anil Pokharia 2002-03. Palaeoethno-botanucal Investigation at Early Harappan Kunal. Pragdhara 13 : 105-139.
11. Shinde, Vasant, Tishiki Osada, and Manmohan Kumar 2011a (Eds.) Exacavations at Farmana, District Rohtak, Haryana. India 2006-2008. Kyoto : Indus Project, Research Institute for Humanity and Nature.
12. Shinde, Vasant, Tishiki Osada, and Manmohan Kumar 2011b (Eds.) Exacavations at Girawad, District Rohtak, Haryana. India 2006. Kyoto : Indus Project, Research Institute for Humanity and Nature.

****

Faculty Retention In Private Commerce Colleges, Indore

Dr. Abha Singh * Pallavi Mane **

Abstract - The paper states that **"Faculties"** are Institution's most **"Valuable Assets"** and Institutions constantly develop New Strategies to improve their Human Resource Management. The paper discusses Human Resource Strategies and confirms that extensive changes that are adapted to the requirements of the Institution. The paper also relates that a new component of the Strategic Human Resource Management is that of helping the faculties to cope up with Institutional change.

Details - "A new component of the Strategic Human Resource Management is that of helping the Faculties cope up with Institutional change. This change can occur in numerous forms and can relate to several features of the business operations conducted by the Institution. For instance, Change occurs when the Institution undergoes a **"Reformation of New Faculty Members."**

The leadership of the Institution is prone to change and Faculties must be prepared to cope with it. What will this change mean to them? Maybe it will bring about new tasks, new colleagues, new responsibilities or new remuneration systems. Whichever the case, they must be prepared. Also, a change affecting the Faculties is given by the financial difficulties faced by the Institution, when faculties might themselves be subjected to repercussions, such as downsizing, delays in getting their salaries or reduced benefits.

Finally, change can affect faculties in the form of New Internal Policies which implement New Codes of Conduct."

Tags - change, strategy, personal, strategic, human, resource, management.

Introduction - An effective "Faculty Retention Program" is a systematic effort to create and foster an environment that encourages faculties to remain employed by having policies and practices in place that address their diverse needs to their utmost satisfaction.

Elements of a Sustainable Strategy - Indian economy faces a huge challenge in terms of skilled human resource capacity, which has a deliberating effect on its ability to make strides in the areas of socio-economic and political development. While various efforts have been made to address the problem, there seems to be little progress, due to a variety of reasons, particularly, the inadequate investment in **"Education Training Programs."**

In the past, **"Education Jobs"** were considered desirable and sufficient candidates could be found to fill most certain jobs. Moreover, once employed, faculties would often spend their entire careers in Education Service. In areas where there was a change, new faculties could be recruited easily.

Today there is a high demand in the **"Education Sectors"** for faculties possessing particular Qualifications, Experience and are Professionals in the subjects of Management. The supply of Qualified Faculties is limited and good workforce planning requires a twofold approach of Aggressive Recruitment and Innovative Retention Strategies. Retention policies need to focus on elimination of unwanted makeovers.

"The escape route from the mass poverty now in most part of the country is improved income. This means Invention and Reinvention, Innovation, and Reverse Innovation. **Such processes require skills that can be produced only in Education Programs."** Unfortunately, the Institutions themselves do not seem capable of mobilizing the intellectual strength needed to drive these processes. Indeed, **"Staff Development/Retention remains a major challenge"**.

Good Quality Education is an important avenue towards nurturing the Faculty needed for Universal Education. **In order for Education to develop the above, it must ensure that its own areas are well-developed.**

"The excellence of Education is a function of the people it is able to enlist and retain on its faculties."

Clearly, unless something is done to enhance the ability of these institutions to attract and to retain the requisite levels of Academic Staff, the situation can only get worse. Unsatisfactory working conditions of Academics will only continue to push them towards the attractive lifestyles that they can enjoy in other Organisations outside Education.

The purpose of this study is to identify mechanisms for Staff Retention that are feasible under currently severe financial constraints, and to gauge their effectiveness in

* Professor, Govt. Arts & Commerce College, Indore (M.P.) INDIA
** Research Scholar, School of Commerce DAVV, Indore (M.P.) INDIA

offsetting the risk of staff loss commonly associated with capacity building efforts. It is also worth mentioning that the primary mandate of this study is to seek **"Non-Salary Solutions"** to "**Staff Retention Problems"**. There is a tendency to assume that problems with Recruitment and Retention can be solved only through **"Salary-Based Interventions"**.

"The leading assumption that lies behind proposing Salary-Based Solutions to the problems of Recruitment and Retention is that since the problems are market-driven, they are also salary-based." Thus, our main purpose in this study is to come up with measures that can be implemented within the tight Education Sector. Consequently, we hope to make recommendations that are feasible and action-oriented. The recommendations will outline what has to be done and how it needs to be done. This does not mean, however, that we will shy away from **"Salary-Based Solutions"** where they are necessary.

Faculty Retention - Concepts and Analytical Framework

In order for an Institution to succeed, meet its goals and be dynamic, there are many factors that have to be considered. It is not just about making the Faculties satisfied and happy with their jobs, not just about having that competitive edge against other Institutions, not just knowing what to do or how to do things in order to be called **'successful.'**

An Institution that is bound to be successful would consider Faculties as one of its priorities. An Institution must take care of its faculties the same way faculties contribute to the Institution they are working for.

Talent is an in-demand commodity these days for almost everyone. As Institutions work to recruit new Faculties and retain existing ones they are discovering that there are no quick and easy answers for success.

A thorough understanding of the factors that influence retention in their own specific environment should drive what exactly an Institution decides to do. For this reason many Institutions seeking to effectively manage Attraction and Retention (A&R) Strategies decide to undertake the following before implementing any Solutions:

- establish internal benchmarks for A&R performance indicators
- measure the cost of faculties
- agree work completion for Faculties Attraction and Retention levels

Broadly there are three sets of factors that determine an Institutions ability to Attract and Retain Faculties. Of the three influencing categories, Institutional Practices are the most controllable given an understanding of what is currently happening and what should be happening. Although it may not be possible (or legal!) to control individual attributes it is relatively easy to identify links between them like job satisfaction and then modify Institutional practices accordingly.

Our Understanding of Faculties needs - Typically our approach to understand Faculties needs will allow to:

- Quantify the impact of Faculties.
- Identify the drivers that are currently contributing to the problem.
- Isolate, by various demographics, faculty propensity to stay with the Institution.

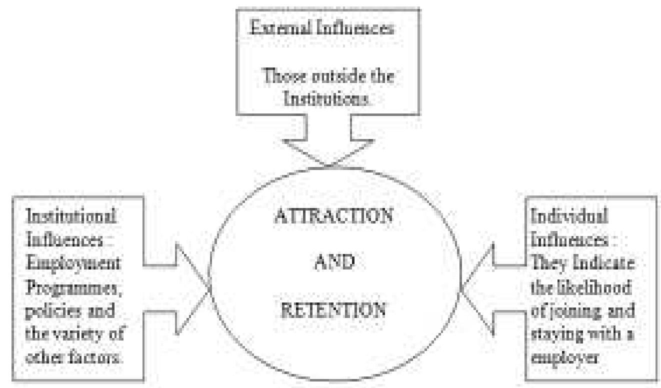

- Communicate and promote the necessary research amongst faculties
- Devise an appropriate Attraction and Retention strategy

Having gained recognition of the need to act, the next step in successfully managing retention levels involves gaining an understanding of the dynamics of the problem. At the Recruitment Communications Institution, view the ability to retain Faculties as a function of the Institutions capacity to generate faculty commitment.

As the diagram in our introduction explains – by using the tools at its disposal, Institutions must create the right environment to breed commitment, which in turn acts as a magnetic force to keep people attracted.

Our research tool has been specially designed to -

- Identify the factors, and their corresponding relationships, which are currently affecting faculty commitment
- Weight the importance and relevance of each an every faculty and leadership, team perspective, on provoking higher retention.
- Aid the assessment of the likely impact of remedial actions.

Strategies For Considratons -

What People Want -

"...people want to feel "Valued and Valuable". They want to belong, to know that they, their work and their ideas matter. They want a diversity of challenges, and the ability to make decisions without excessive tie ups. They want to feel connected to upper management, knowing they can share ideas with Institution decision makers**."**

In order to retain Faculties in Jobs which are in high demand today, It would be wise to review its Salary Structure.

Key Players in Faculty Retention - Identify, review, document, and publicize alternative retention policies, procedures, and efforts.

- Offer Rewards and Recognitions to Faculties who earn Degrees or job related Certifications.
- Increase support of Education benefits, including more reimbursements.
- Encourage flexibility in work schedules and timings and provide guidance to faculties on how to do it.
- Take the lead in providing guidance and trainings, and separations to be used as tools to measure retention.
- Conduct a salary review of critical comparison to other similar Institutions and adjust salaries to keep pace.
- Improve career mobility.
- Provide training to support open communication.
- Provide more career development counselling to Faculties.
- Discuss concerns and needs openly with Seniors.
- Take responsibility for their own career development.
- Invest in the future by providing up-to-date technology and resources to support it (i.e., technical support and training-Computers using Internet and Microsoft Office).
- Faculty recognition for volunteer activities at work and external to the organization.
- Excellence awards in career field.
- Longevity service awards.
- The "best of the best" awards within an Institution.
- Leave Benefits.
- Alternate weekends off.

Suggestions for remedial action and Examples of Good Practice -

- **Recruitment and Retention -** To avoid the tedium, frustration and delays of the recruitment process, the following procedures can be useful. Human Resource departments should put in place mechanisms that enable them to track faculty members' reasons for leaving, such as exit surveys/interviews.
- **Promotion and Permanent Appointment/Tenure**

The Human Resource department should have a database that tracks the career path of all academic staff, and notify all appointees who are coming up for tenure. to ensure that each of these processes is anchored in a committee system at every level – i.e., the departmental, faculty/college, and university - which is made up of peers and has representation from both genders.

- **Institutional Governance and Workplace Climate**

The selection process for Heads Of Department needs to be more open and participatory than is the practice in most institutions. To offer Training programs for newly appointed Faculties to acquaint them with different skills needed to accomplish the demands of their role. The need for the institutions to address these reality-perception gaps, through better, regular, and accessible flows of information. Workplace Climate requires to be Hygiene Conscious and Cleanliness acts as a major role amongst them on regular basis. Alongwith the usage of Computers daily.

- **Teaching, Research and Professional Development**
- **Workload**

To avoid inordinate workloads which are not only morale-deflating, but physically and psychologically draining, Institutions have to insist on the need to balance intake with resources, when they discuss these matters with Senior Officials.

- **Mentoring -** Mentoring is an important ingredient in the nurturing of junior scholars, in general, and underrepresented groups, in particular, for successful academic careers. In view of the low proportion of female staff in Institutions, it will be useful to direct mentoring efforts towards increasing their numbers. Mentoring can be both formal and informal.
- **Teaching and Research -** It will be useful for institutions to establish a New Faculty Research Fund from which new hires can access Starter Programmes that help to facilitate their career development.
- **Salaries and Benefits -**A reasonable improvement in their working conditions (salary and non-salary) are likely to result in more than proportionate levels of job satisfaction.

REcommendations and Conclusion - The realisation of the vision **"to be a leading Institution of Academics"** is wholly dependent on the Knowledge, Skills and Abilities of **Faculty Staff Members** that are employed.

The institution should develop a proper Innovative Retention Strategy . Institutions should, therefore, be prepared to make financial provisions in order to retain faculty staff members. A distinct difference should be made between Administrative, Support and Academic staff when developing a retention strategy.

- For Academic Staff Members, the retention strategy should include: Personal and Professional development; flexible working hours (for academic staff members); and inclusive time for research activities.
- For Administrative Staff Members the retention strategy should include: Career development; challenging tasks; autonomy; and more responsibilities.

The most intangible cost, and one that is most difficult to estimate, however, is that of losing future leaders. If Institutions fail to recruit the best academic minds, that loss of talent will not only negatively affect students in the post-secondary system, but will also translate into a cost borne by all individuals in current and future generations.

Future work should also include the tracking of Staff who have left the institutions, in order to collect personal accounts explaining their departures. This will assist us in understanding Staff Attrition from the perspective of those who have actually left the Institutions.

Another useful focus for further work is a comparison of conditions of services between Academic Staff and their counterparts, with similar qualifications and experience, who are employed outside the Institutions.

It is a belief that when the above recommendations are considered and implemented, the Faculty Staff members will remain with the institution for a longer period and thus

make a **Recognised Institution** with a positive and efficient workforce that strive for effective service delivery.

References :-

1. Books on Faculty Retention, Management and Strategies.
2. www.iimidr.ac.in
3. www.leafcutter.com
4. www.ehow.com
5. http://en.wikipedia.org/wiki/Research

****

Human Resource Accounting Practices at Infosys

Yagna Joshi *

Introduction - Human is the buzzword in the modern knowledge based society. It is the most vital input on which the success & failure of the organization very much depend upon. Starting from the classical economist to modern human capital economist such development is considered to be a continuous process.

It is one of the most important 'M' associated, which is considered while taken care of 4M's associated with any organization and they are money, machines, materials and men. But the most interesting thing is that the first three are recognized and find a place in the assets side of the Balance sheet of the organization. But in case of fourth one ambiguity prevails among the accountant. In spite of its usefulness has been acclaimed in various literature over the decades but its application still remain a susceptible issue, the IASB and the ASB in different countries have not been able to formulate any specific accounting standard for measurement & reporting of such valuable elements.

The assets of an organization could be broadly classified into tangible and intangible assets. Tangible assets referred to all the physical assets which could be presented in the balance sheet including plant and machinery, investments in securities, inventories, cash, cash equivalents and bank balance, marketable securities, accounts and notes receivables, finance receivables, equipment on operating leases, etc.

Intangible assets included the goodwill, brand value and human assets of a company. The human assets involved the capabilities, knowledge, skills and talents of employees in an organization.

In the past, less importance was given by organizations to value their human assets. Moreover, it was also considered difficult to value them since there were no defined parameters of valuation. Companies did not value human resources as these were never treated as an asset in the past. All investments related to employees, including salary as well as recruitment and training costs were considered as expenditures. In addition, accountants also felt that the stakeholders of a company may not accept the concept of placing a monetary value on human resources.

The importance and value of human assets started to be recognized in the early 1990s when there was a major increase in employment in firms in service, technology and other knowledge-based sectors. In the firms in these sectors, the intangible assets, especially human resources, contributed significantly to the building of shareholder value. The critical success factor for any knowledge-based company was its skilled and intellectual workforce. Therefore, today, it is a popular phenomenon among the Indian corporate world is to disclose information relating to human resource in annual statements.

It was first promulgated by BHEL (Bharat Heavy Electrical Ltd), a leading public enterprise, during the financial year 1972-73. Later it was also adopted by other leading public and private sector organization in the subsequent years. Some of them are Hindustan Machine Tools Ltd. (HMTL), Oil and Natural Gas Corporation Ltd.(ONGC), NTPC, Cochin Refineries Ltd. (CRL), Madras Refineries Ltd.(MRL), Associated Cement Company Ltd.(ACC) and Infosys Technologies Ltd.(ITL).

Meaning Of Human Resource Accounting - HRA has been defined by American Accounting Association's committee as "the process of identifying & measuring data about human resources & communicating this information to interested parties". Stephen knauf defined HRA as "The measurement & quantification of human organizational inputs such as recruiting, training, experience & commitment."

According to Eric. G flamholtz, " HRA represents accounting for people as an organizational resource. It is the measurement of the cost & value of people for the organization".

Hence, it can be said that, it is the process of developing financial assessment for people within organization & society and monitoring of these assessment through time, it deals with.

Although HR valuation has important implication for external financial reporting, in the contemporary economic scenario valuing HR has been greater significance for internal HRM decision.

HRA information disclosed by some of the companies (See table in last page)

Models of Human Capital Valuation - Many models have been created to value human capital. Some are based on historic costs while some are based on future earnings. But each has its own limitations and one model has proved to be more valid than other. Although the Lev and Schwartz

* Research Scholar, Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu (Raj.) INDIA

model has been the most widely use model for its ease of use & convenience.

The Lev & Schwartz Model - The Lev and Schwartz model states that the human resource of a company is the summation of value of all the Net present value (NPV) of expenditure on employees. The human capital embodied in a person of age 'r'is the present value of his earning from employment.

Under this model, the following steps are adopted to determine HR Value:

- Classification of the entire labour force into certain homogeneous groups like skilled, unskilled, semiskilled etc. and in accordance with different classed and age wise.eg. In Infosys the classification is based on software professionals & support staff etc.
- Construction of average earning stream for each group. For example, at Infosys Incremental earnings based on group/ age have been considered.
- Discounting the average earnings at a predetermined rate in order to get present value of human resources of each group.
- Aggregation of the present value of different groups which represent the capitalized future earnings of the concern as a whole,

$$Vr = I(t) / [(1+r)^{(t-r)}]$$

Where, Vr = the value of an Individual r years old
I (t) = the individual's annual earnings up to retirement
t = retirement age
r = a discount rate specific to the cost of capital to the company.

Critical appraisal of the Lev & Schwartz model

a) It is essentially an input measure.It ignores the output i.e. productivity of employees.
b) Service state of each individual employee is not considered.
c) The training expenses incurred by the company on its employees are not considered.
d) The attrition rate in organization is also ignored.
e) Factors responsible for higher earning potentiality of each individual employees like seniority, bargaining capacity, skill, experience etc. which may cause differential salary structure are also ignore.

HRA in Practice at Infosys - In the financial year 1995-96, Infosys Technologies (Infosys) became the first software company to value its human resources in India. The company used the Lev & Schwartz Model and valued its human resources assets at Rs 1.86 billion. Infosys had always given utmost importance to the role of employees in contributing to the company's success. Analysts felt that human resources accounting (HRA) was a step further in Infosys' focus on its employees. Narayana Murthy (Murthy), the then chairman and managing director of Infosys, said: "Comparing this figure over the years will tell us whether the value of our human resources is appreciating or not. For a knowledge intensive company like ours, that is vital information."

The concept of HRA was not new in India. HRA was pioneered by public sector companies like Bharat Heavy Electronics Ltd. (BHEL) and Steel Authority of India Ltd. (SAIL) way back in the 1970s. However, the concept did not gain much popularity and acceptance during that time. It was only in the mid-1990s, after Infosys started valuing its employees, that the concept gained popularity in India. By 2002, HR accounting had been introduced by leading software companies like Satyam Computers and DSQ Software, as well as leading manufacturing firms like Reliance Industries.

HR managers were quick to respond on the above developments by stating that more and more organizations had now started to realize the importance of skilled workforce. They felt that to be successful in highly competitive markets, the Company requires to continuously improve the level of performance of its workforce. HRA enabled the Company to understand whether the skill sets of its human capital was appreciating or not. R. Krishnaswamy, an actuarial accountant, said, "The value can be used internally by an organization to make comparisons from unit to unit, from year to year, as well as within its industry."

Stock market analysts felt that the 'comprehensive disclosure policy' was becoming a differentiating factor among companies in various industries. Yezdi H. Malegam, managing director, S.B. Billimoria & Company commented, "In the last few years, people are realizing that their intangible assets are worth much more than their tangible ones. Now an attempt is being made to put a value to these intangibles, and to bring these hidden values to book."

Analysts felt that HRA was an investor-friendly disclosure, and assured stakeholders that the company had the right human capital to meet its future business requirements.

HRA information disclosed by some of the companies

Name of the organization	HRA introduced in the year	Model	Discount rate (in %)
BHEL	1973-74	Lev & Schwartz model	12
SAIL	1983 – 84	Lev & Schwartz model with Some refinements as suggested by Eric.G. Flamholtz& Jaggi and Lev	14
MMTC	1982 – 83	Lev & Schwartz model	12
ONGC	1981-82	Lev & Schwartz model	12.25
NTPC	1984-85	Lev & Schwartz model	12
INFOSYS	1995-96	Lev & Schwartz model	12.96
	2006-07	Lev & Schwartz model	14.97

Economic Growth And Role of Legislation

Dr. Prabhakar Pandey * J. K. Patel **

Abstract -There is considerable Disparity in economics status of various countries of the world. According to report prepared by the United Nations in Human Development in 2007 GDP per capita across the world ranged from a highest of US $ 103042 in Luxemburg to a lowest of US $ 115 in Burundi. The Question arise of the countries. There may be many causes availability of natural resources lack of entrepreneurial spirit of the people and different from of the Govt. or legislation. This article seeks to analysis the role of legislation and rule of law in economic development
Key Word- Economic Growth, Legislation, development, rule of law.

Economic Growth - In economic terms economic growth is the increase in value of goods and service provided by an economy and conventionally measured by the increase in real gross domestic product (GDP). After Rio declaration of 1992 there has been a growing focus in 'Sustainable economic growth'. The world commission of Environment and Development (Brundland commission) in its publication 'Our Common Future' (1987) defined the Sustainable development as "Development that meets the needs of present future without compromising the ability of future generation to meet their own needs". Therefore the realist of development should be in context to only economic growth but sustainable development". Hence the realist of development is not only economic growth but what is known as sustainable development.

Factor of Development -Even before Adam Smith's "Wealth of Nation" the study on development and economic disparity among nations of the world has been going on but thinking moved beyond factors of production and market in twentieth century.

In the decades of 50 and 60 it was leveled that the path of development lie in capital formation[1] in the 70's it was realized that physical capital was not enough and fulfillment of basic human needs was also important. But efforts in this direction too did not produce results then improving the social capital through education and health were linked with development. But this also did not get the break though. These has been debt crisis in Latin American and chronic poverty in Africa and south Asian countries in 1080's. This Freed to leave it was realized that the path of development lay in improving economic management and giving greater role of market force. There was a mixed result of this story. This result in Latin America was disappointing where as East Asian countries performed that institutions of Governance may make the difference of the institution approach.

The institution Approach - This Approach is based on the idea pioneered by Douglas north " that the productivity of country's citizenry and resources depends in large social, political and 3economic institutions competitive markets, freedom of exchange and secure private property rights are all example of institution that contribute to economic growth.[1]

In 1990's the focus was towards "legal institution" and understanding the relationship between country's legal environment financial sector and economic growth. The study on the relationship between the belief that well functioning legal institution (i.e. the rule of Law) are most important to economic development.

Rule of Law - The rule of law means that the law enacted transparently and are enforced specializing in the promotion of rule of law has set four principles:-

1. The Government and its official and agent are accountable under law.
2. The law's are clear, publicized, stable and fair and product fundamental rights, including the security of persons and property.

Legal and Financial System - It has been identified that there is a connection between legal environment and financial development of various countries. Ross Levine has expressed in his view that "Legal System that provide strong legal protection for investors have permitted the development of sophisticated financial market, which enhances the economy's ability to beat risk in turn encouraging entrepreneurship and economic growth" 2. The legal and regulatory environment does matter for financial development. It is a established fact that the countries which give legal and **regulatory** system give high priority to creditors have better functioning financial intermediaries than the countries where the legal system provides weaker support to creditors

It is also found that countries which impose compliance with law efficiently and enforce them effectively have better

* Prof. & Head (Commerce) Dr. C. V. Raman University, Kargi Road Kota, Bilaspur (C.G.) INDIA
** Head (Law) Dr. C. V. Raman University, Kargi Road Kota, Bilaspur (C.G.) INDIA

development of financial intermediaries. If has been established that countries where corporation publish relatively comprehensive and accurate financial statement have better developed financial intermediaries. Thus it confirms that the legal and regulatory environment is positively associated with economic growth.

Role of institution - The role of institution which enforce the legislation is more important for economic growth than the mere availability of legislation. Success of the legislation depends upon the following-

(1) Design- i.e. development the law in participatory manner.
(2) Implementation – i.e. mechanism for enforcement of law
(3) Monitoring – i.e. system to assess the performance of law
(4) Revision – i.e. modification of law to achieve the objectives of legislation

Most of the countries give emphasis to design aspect of the legislation and the real challenge in other three areas i.e. implementation monitoring and revision are neglected which are the real challenge to achieve the objective of legislation.

Legislation in India - India is one of the most over legislated countries in the world Beside the act left lay British the Indian govt. has been enthusiastic to frame new laws as the solution to combat countries problem. Only the enactment of law will not ensure the objectives if the Act. In the Indian context it is felt that enforcement of these laws is missing. Therefore there is slow economic growth in spite of robust set of economic laws in the country. Some recent laws including the RTI have been instrumental in improving governance and decreasing corruption.

A study by IMF on corruption (1997)[3] finds that the level of investment economic growth is negatively linked that is to say that the more corruption the less instrument and the less economic growth.

2. Why worry about corruption? Panlo Mauro IMF 1997[3].

A recent working paper on economic growth law and corruption in India[4] tries to analyze the impact of recent legislation on government in 20 state of India and concludes that,

(1) If the corruption index improves by one standard deviation (legal 2.38 in this case measures the variation from the normal Indian) the investment rate increase by more than 4 % point and annual growth of per capita GDP increase by over a half percentage point. If a country improves its standing the corruption will enjoy the benefit of an increase investment improve employment and growth.

In the seventh D.P. Kohli memorial lecture on economic growth and issue of governance (2006) analyzed, the evolution of reforms with the development of sound legal framework and regulation of financial intermediaries and identified three important steps by reform agenda:-

(i) The first was to dismantle the complex regime of License permits and control which directly affected the production and distribution.

3. Economic growth, Law and Corruption: Evidence from India, Sambit Bhattacharya and Reghuvdra jha, ASARC working paper 2009/15 August 2009.

(i) The second was to reverse the strong bias towards state ownership of means of production and proliferation of public sector enterprises in almost every sphere of economic activity

(ii) The third was to abandon our inward looking trade policy and embrace international trade which encouraged efficiency and decrease the cost of production.

All these, of course required legislation and it is evident now that the recent economic legislation have contributed significantly to the current growth trajectory of the country.

Conclusion - On the basis of the analysis of the research evidence on the role of the legislation in economic growth it may be concluded that there is significant linkage between role of law. Legislation and economic growth. The quality of legislation affects the role of financial intermediaries and financial market which in turn affect economic growth. But only legislation can not affect the economic growth they need 'good institution' i.e. the social, political and economic agencies which strictly follows the cannons of good governance.

Another significant point a successful legislation is its implementation and enforcement of the laws. Sustainable economic growth is a product of both implementation enforcement and content of legislation. The implementation of laws has been a major challenge for India, although there is evidence to prove that of some of recent law such as RTI has been exceptionally successful in improving accountability. It is one of the best India's reform initiative.

References -

1. Douglas North "Economic Freedom and The Environment for Economic Growth" 2004.
2. The process by which law are enacted administered and enforced is accessible fair and efficient
3. Access to justice is provided by competent independent and ethical adjudicator, attorneys or representative and judicial officers.
4. Ross Levine , Law and Finance and economic growth journal of Financial intermediation (1999)
5. Administrative Law Dr. Jai Jai Ram Uppadhyay.
6. Land Acquisition Act 1894.
7. Environment Protection Act 1986.
8. Indian forest Act 1927.

****

Training Needs Of Non Governmental Organizations In Kota Block

Jobert V Joseph * Lovegy Pappachan **

Abstract - Training is the process of getting knowledge and skill for a specific task . Nongovernmental organizations are doing developmental work for the betterment of the society . The present age is a time for the welfare needs of the society. NGOs are playing vital role in community development. They acts towards the problems in the society. Training programmes are necessary for the improvement of all aspects of the work . Human life revolves around the improvements in their life. There are different strategies to make betterment in their life. Kota block belongs to tribal area and fifth schedule area. This research paper tries to find out the needs of training programmes for NGOs.

Introduction - Nongovernmental organizations are working parrelly with government. In other words, they are substituting developmental measures for the society. Every organization have a systematic training programme for the growth and development of its employees. It means that teaching of specific skills for the employees assigned tasks. In Kota block NGOs mainly working three areas. That are education , health and livelihood . Training programmes are organizing to enhance the skills of employees in nongovernmental organizations. NGOs are following on the job training for their employees. On the job training is suitable for imparting skill that can be learnt in relatively short period of time. It permits the trainee to learn on the equipment and in the work environment.

NGOs are working in the grass root level. That means trainee will learn about the geographical, cultural social and economical changes in the proposed area. That kind of training helps the employee to implement different projects of the organization . In the case of health projects the employee may deals with children , women and health workers. On the other hand education projects requires to deal with students, teachers and parents. Through the training programme employee will acquaint with function effectively towards the organizational goal. It also helps increase productivity and quality of the employees .

Review of literature -Training is important not only from the point of view of the organization but also for the employees. Training is valuable to the employees is because it will give them greater job security and an opportunity for advancement. A skill acquired through training is an asset for the organization and the employee . Every organization based on the training department . NGOs also needs training for their employees to impart the necessary skills for the organizational requirements . According to Edwin B Flippo " training is the act of increasing the knowledge and skills of an employee for doing a particular job" .Training involves the development of skills that are necessary to perform a specific task.

According to Dale Yodder the use of the term " training and development in today's employment setting is far more appropriate than training alone since human resources can exert their full potential only when the learning process goes far beyond simple routine. In NGOs also there is a need for training to their personnel. There are different categories of employees in NGOs. They are managers documentation staff and field staff. This three level staff requires three different kind of trainings . That will enhances the productivity of the employees.

Objectives of the study -

1. To study about the activities of NGOs in Kota block.
2. To examine the effectiveness of training programme available to NGOs.
3. To find out the shortcomings in training patterns.
4. To suggest the improvement of training programmes for NGOs in Kota block.

Discussion - NGOs are giving assistance to the marginalized people of the society. Training enhances the skills of the employees in the organization. There are different activities doing by various NGOs. This paper explores the different activities of NGOs in Kota block. There are three level of training occurred in NGOs. Firstly managerial, implementation , monitoring and evaluation. This three level needs three different aspects of training. And also looks into different aspects and various needs of trainings programmes available to NGOs.

Suggestions - From the above discussion , these are necessary suggestion for improving the training programmes for NGOs.

1. Training programmes should be more easily accessible to all staffs.

* Research Scholar, Dr. C.V. Raman University, Kargi Road, Bilaspur (C.G.) INDIA
** Research Scholar, Dr. C.V. Raman University, Kargi Road, Bilaspur (C.G.) INDIA

2. Training materials should be available in local language.
3. Training programmes should be given to the appropriate candidate to get maximum out put for the projects.
4. Trainer should be know the grass root level people.
5. After the training programme there should be follow up from the organizational side.

Conclusion - Training programmes are available in Kota block for NGOs. For the successful implementation of the projects of the NGOs are giving training for their employees. All the NGOs are working in the three sectors of development. That are health ,education and livelihood. The present training facilities are good and useful for the employees. The difficulty is coming in the case implementing the new programme for this area. And another one concern is Kota block belongs to tribal area and fifth schedule area. There is a need for training programmes for grass root level workers. That is the need for time and betterment of different developmental needs of Kota block.

References :-

1. Principles of management T.N. Chhabra.
2. Human resource training C.B. Patnayak.
3. NGO and development S.N. Pawar.

****

Jeans instability of Hall plasma under the influence of Suspended particles

V.K. Ojha * D.L. Sutar ** R.K. Pensia *** N.K. Dabkara****

Abstract - The problem of Jeans instability of Hall plasma in the presence of suspended particles and incorporating viscosity, thermal-conductivity and the effect of finite electron-inertia. The equation of the problems are stated and a general dispersion relation is obtained using normal mode analysis with the help of relevant linearized perturbation equations of the problem. This general dispersion relation is discussed for the system is stable or unstable.
Key words - Thermal conductivity, Hall-Effect, Finite Electron-Inertia, Fine Dust Particles, Rotation, Magnetic Field.
PACS Nos. :- 94.30.cq, 52.25.xz, 94.05.Dd.

Introduction- The Jeans instability of a gaseous plasma is important for understanding various astrophysical problems. It plays an important role in cloud collapse and the formation of stars. The self-gravitational instability was discovered by Jeans (1). These has been great interest in analyzing the onset of self-gravitational instabilities is rotating, magnetized or turbulent media and these are studied by Chandrasekhar (2). In this connection, many researchers have investigated the self-gravitational instability of a homogeneous plasma considering the effects of various parameters [Chhajlani, R.K. and Sangvi (3), R.K. , Chhajlani, R.K. and Vyas, M.K.(4) , Lima J.A.S., Silva R. and Santos J.(5) , Bhatia P.K. and Chhonkar R.P.S.(6) , Shaikh S., Khan A. and Bhatia P.K. (7), Sharma, R.C., Gupta, U.(9), Gupta, U., Kumar, V.(11), Sharma, R.C., Aggarwal, A.K.(12), Kumar, P., Singh, G.J., Lal, R.(13), Gupta, U., Sharma, G.(14)]. Recently prajapati et al.(15) have discussed the self-gravitational instability of rotating viscous Hall plasma with arbitrary radiative heat loss functions and electron inertia. Pensia et al.(16) have discussed the effect of quantum correction on disturbances propagating in the gaseous plasma having fine dust particles. In the light of above studies we find that suspended particles and electron inertia are two important parameters to discuss the self-gravitational of gaseous plasma incorporating the effect of Hall current, thermal-conductivity, viscosity and rotation and magnetic field. Thus is the present work we want to study the effect of suspended particles, finite electron inertia, Hall current on the self-gravitational instability of infinite homogeneous gaseous plasma under the influence of corolios force, viscosity and thermal-conductivity in the presence of transverse magnetic field. The result of the present study will help to understand the astrophysical problems.

Linearized Perturbation Equations - We consider an infinite homogeneous, viscous, Self-gravitating, rotating, ionized plasma composed of gas and the fine dust particles (suspended particles) incorporating thermal conducting and finite electron inertia.

Linearized Perturbation Equations of the Problem are,

$$\frac{\delta\vec{v}}{\delta t} = -\frac{\vec{\nabla}\delta P}{\rho} + \vec{\nabla}\delta\phi + \frac{KN}{\rho}(\vec{u}-\vec{v})$$

$$+\vartheta\nabla^2\vec{v} + \frac{1}{4\pi\rho}\left(\vec{\nabla}\times\vec{h}\right)\times\vec{H} + 2\left(\vec{v}\times\vec{\Omega}\right) \qquad (1)$$

$$\frac{\partial\delta\rho}{\partial t} = -\rho\vec{\nabla}.\vec{v} \qquad (2)$$

$$\delta P = C^2\delta P \qquad (3)$$

$$\nabla^2\delta\phi = -4\pi G\delta\rho \qquad (4)$$

$$\left(\tau\frac{\partial}{\partial t}+1\right)\vec{u} = \vec{v} \qquad (5)$$

$$\lambda\nabla^2\delta T = \rho C_p\frac{\partial\delta t}{\partial t} - \frac{\partial\delta P}{\partial t} \qquad (6)$$

* Department of physics, Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA
** Department of physics, Mewar University Gangrar, Chittorgarh (Raj.) INDIA
*** Department of physics, Govt. Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA
**** Department of physics, Govt. Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA

$$\frac{\delta P}{P} = \frac{\delta T}{T} + \frac{\delta \rho}{\rho} \qquad (7)$$

$$\frac{\partial \vec{b}}{\partial t} = (\vec{H}.\vec{\nabla})\vec{v} - (\vec{v}.\vec{\nabla})\vec{H} + \frac{C^2}{\omega_{pe}^2}\frac{\partial}{\partial t}\nabla^2\vec{b} - \frac{C}{4\pi Ne}\vec{\nabla}\times\left[(\vec{\nabla}\times\vec{h})\times\vec{H}\right] \qquad (8)$$

Where,

$\vec{v}(v_x, v_y, v_z), \vec{u}(u_x, u_y, u_z), N, \rho, P, \phi,$ $\vec{H}(0,0,H), \vec{\Omega}(0,0,\Omega), T, G, \vartheta, C_p, \lambda, R,$ $m,\ \rho_s,\ \omega_{pe},\ K_s(6\pi\rho r)$ and $\vec{h}(h_x, h_y, h_z)$

denote respectively, the gas velocity, the particle velocity, the number density of the particle, density of the gas, pressure of the gas, Gravitational potential, magnetic field, rotation, temperature, Gravitational constant, kinematic viscosity, specific heat at constant pressure, thermal conductivity, gas constant, mass per unit volume of the particles its density, plasma frequency of electron, the constant is the stokes drag formula and the perturbation in magnetic field.

Dispersion Relation - We analyse these perturbations with normal oscillation technique, we find solution of equation (1)-(8). In a uniform system we can find a plane-wave solution with all variables varying as,

exp {i(Kz+ωt)} (9)

Where K are the wave number of perturbation along the z-axis and the frequency of harmonic disturbances, Using (2)-(9) in (1), we obtain the following algebraic equations for the components.

$$M_1 v_x - \left(\frac{K_z^2 V^2 K^2 A_3}{A_2} + 2\Omega\right) v_y + \frac{ik_x}{k^2}\Omega_T^2 s = 0 \qquad (10)$$

$$\left(\frac{K_z^2 K^2 V^2 A_3}{A_2} + 2\Omega\right) v_x + M_2 v_y - 2\Omega_z v_z = 0 \qquad (11)$$

$$d_1 v_z + \frac{ik_z}{k^2}\Omega_T^2 s = 0 \qquad (12)$$

The divergence of (1) with the aid of (2)-(9) gives

$$\frac{ik_x k^2 V^2 A_1}{A_2} v_x - \left\{\frac{iK_x K_z^2 V^2 K^2 A_3}{A_2}\right\} v_y - M_3 s = 0 \qquad (13)$$

Where $s = \frac{\delta\rho}{\rho}$ is the condensation of the mediun

$\gamma = \frac{C_p}{C_v} = \frac{C^2}{C'^2}$ ratio of the specific heat,

$V = \frac{B}{\sqrt{4\pi\rho}}$ is the Alfven velocity,

$A = \frac{KN}{\rho}$ has the dimension of frequency,

$\tau = \frac{m}{K_s}$ is the relaxation time,

$\tau A = \frac{\rho_s}{\rho}$ is the mass conservation,

$\sigma = i\omega$ is the growth rate of perturbation,

$\Omega_\vartheta = \vartheta K^2, \quad A_1 = \sigma f, \quad f = \left(1 + \frac{C^2 K^2}{\omega_{pe}^2}\right), \quad \theta_k = \frac{\lambda}{\rho C_p}$ is the thermometric Conductivity,

C and C' is the adiabatic and isothermal velocities of sound.

$$d_1 = \left(\sigma + \Omega_\vartheta + \frac{\beta\sigma}{\sigma\tau + 1}\right), \quad d_2 = \left(\frac{K^4 V^2 A_3}{A_2} + 2\Omega\right), \quad \Omega_{j'}^2 = \left(C'^2 K^2 - 4\pi G\rho\right)$$

$$\Omega_j^2 = \left(C^2 K^2 - 4\pi G\rho\right), \quad \Omega_T^2 = \left(\frac{\sigma\Omega_j^2 + \gamma_k \Omega_{j'}^2}{\sigma + \gamma_k}\right), \quad A_3 = \left(\frac{CH}{4\pi Ne}\right),$$

$$M_1 = \left(d_1 + \frac{V^2 K^2}{A_1}\right), \quad M_2 = \left(\sigma d_1 + \Omega_T^2\right), \quad A_2 = \left(A_1^2 + A_3^2 K^4\right),$$

The nontrivial solution of the determinant of the matrix obtained from (11)-(13) with $(v_x,\ v_y,\ v_z,)$ having various coefficients, that should vanish is to give the following dispersion relation.

$$d_1\left(\sigma d_1 + \Omega_T^2\right)\left(M_1^2 + d_2^2\right) = 0 \qquad (14)$$

The dispersion relation (14) shows the combined influence of fine dust particles thermal conductivity, finite electron inertia, magnetic field, viscosity and rotation of the self-gravitational instability of a homogeneous plasma. If we ignore the effect of finite electron inertia then (14) reduces to Chhajlani and Vyas (4). The present results are also similar to those of Chhajlani and Sanghvi (3) in the absence of rotation and finite electron inertia neglecting the contribution of finite Larmor radius (FLR) connection and Hall parameter in that case. In the absence of finite fine dust particles (14) give similar result as are obtained by prajapati et al.(5) excluding the effects of arbitrary

radiative heat-loss functions , permeability ,electrical resistivity and Hall-effect in that case.

Thus with these correlations we find that the dispersion relation (14) is modified due to the combined effects of finite dust particles, finite electron inertia, rotation , magnetic field, viscosity and thermal conductivity. This dispersion relation well be able to predict the complete information about the a caustic wave, Alfven wave and Jeans gravitational instability of the gaseous plasmas considered. The above dispersion relation is very lengthy and to analysis the effects of each parameter we now reduce the dispersion relation (14) for two modes of propagation.

Analysis of the Dispersion Relation - Thus the dispersion relation (14) reduces in the simple from to give

$$d_1\left[M_1^2+\left(2\Omega+\frac{K^4V^2A_3}{A_2}\right)^2\right](\sigma d_1+\Omega_T^2)=0 \quad (15)$$

The equation (15) shows the dispersion relation which has tree functions. we discuss them separately. In the above dispersion relation first factor equated to zero gives,

$$\tau\sigma^2+\sigma\{1+\tau(A+\vartheta_k)\}+\vartheta_k=0 \quad (16)$$

The first factor of this dispersion relation represent stable mode.

The second factor equated to zero gives,

$$\sigma^8\tau^2 f^4+A_7\sigma^7+A_6\sigma^6+A_5\sigma^5+A_4\sigma^4+A_3\sigma^3+A_2\sigma^2+A_1\sigma+A_0=0 \quad (17)$$

This is Eight degree polynomial equations and shows the combined influence of fine dust particles, viscosity, Hall-Effect, rotations, magnetic field, thermal-conductivity in the transverse mode of propagation when axis of rotation is parallel to the direction of magnetic field.

Where the coefficients are very lengthy and emitted constant term are

$$A_0=K^8\vartheta_k^2A_3^4+4\Omega^2K^8A_3^4+4\Omega K^8V^2A_3^3+K^8V^4A_3^2 \quad (18)$$

The third factor equated to zero gives,

$$\sigma^4\tau+\sigma^3\{1+\tau(A+\vartheta_k)\}+\sigma^2\left[(\vartheta_k+\Omega_k)+\tau\{\Omega_j^2+\Omega_k(A+\vartheta_k)\}\right]+\sigma(\Omega_j^2+\vartheta_k\Omega_k+\tau\Omega_k\Omega_j^2)+\Omega_k\Omega_j^2=0 \quad (19)$$

This is four degree polynomial equations and shows the combined influence of fine dust particles, viscosity, rotations, magnetic field, thermal-conductivity in the transverse mode of propagation when axis of rotation is parallel to the direction of magnetic field.

Conclusions - In the present research work, we have studied the problem of Jeans instability of infinite homogeneous gaseous viscous plasma in the presence of suspended particles and transverse magnetic field under the influence of Hall-current, thermal-conductivity and finite electron inertia. The general dispersion relation is obtained, which is modified due to the presence of all parameters. The viscosity has stabilizing effect on the Jeans instability.

References :-

1. Jeans, J.H. : 1902, Phil. Trans. Roy. Soc. London 199.
2. Chandrashekhar, S: 1961, "Hydrodynamic and Hydro-magnetic Stability" Clarendon Press, Oxford, Chapter 13.
3. Chhajlani, R.K. and Sangvi, R.K. : 1985 Astrophysics and Space Science 177 35-46.
4. Chhajlani, R.K. and Vyas, M.K. : 1988 Astrophysics and Space Science 145 223-240.
5. Lima J.A.S., Silva R. and Santos J., Astronomy & Astrophysics, 396, 309-313, 2002.
6. Bhatia P.K. and Chhonkar R.P.S., Astrophysics and Space Science, 114, 135-149, 1985.
7. Shaikh S., Khan A. and Bhatia P.K., Physics Letters A, 372, 1451-1457, 2008.
8. Shaikh S., Khan A. and Bhatia P.K., Z. Naturforsch. 61a, 275-280, 2006.
9. Sharma, R.C., Gupta, U. , Int.J. Eng. Sci., 31(7) (1993), pp. 1053-1060.
10. Gupta, U., Sharma, G., Journal of Applied Mathematics and Computing, 25(1-2) (2007), pp. 66.
11. Gupta, U., Kumar, V., Chemical Engineering Communications, 197(9) (2010), pp. 1225-1239.
12. Sharma, R.C., Aggarwal, A.K., Int. J of Applied Mechanics and Engineering, 11(2) (2006), pp. 391-399.
13. Kumar, P., Singh, G.J., Lal, R., Thermal Science, 8(1) (2004), pp. 51-61.
14. Gupta, U., Sharma, G., Applied Mathematics and Computation, 196(1) (2008), pp. 158-173.
15. Prajapati, R.P., Pensia, R.K., Kaothekar, S. and Chhajlani,R.K. : 2010 Astrophysics and Space Science 10509 010-02736, 1-25.
16. R.K. Pensia et al. "Effect of Quantum Correction on Disturbances Propagating in the Gaseous Plasma Having Fine Dust Particles" J. Pure Appl. & Ind. Phys. Vol.3 (1) 49-55(2013).

****

The Best Approach To Environmental Management Is An Integrated Approach For Environment Problem & its Effect

Dr. Kanti Pachori *

Abstract -Air pollutants are due to the compounds of CO2 & CO, SO2, H2S, H2SO4, NO, NO2, Hno3, Ozone, Fluoro Carbons, Hydrocarbons, Metals, Petro Chemical Products and Particulate matters. The impact of air pollution is popularly known as GREEN HOUSE EFFECT, ACID RAIN & OZONE DEPLETION etc. Major Rivers & Fresh water streams are badly polluted by industrial wastes or effluents. Important revers like Yamuna, Ganga, Gomti, Damodar, Hoogly, Canvery, Godavari, Sone & Suwao are being polluted due to various sources of pollution. UN Conference on environment in Stockholm (1972) organized a conference regarding the quality of air and control of population which was concluded with slogan "Conserve or Perish" Environmental conservation is a desire to pursue development along rational and sustainable lines.

Key words :- Environmental, bio-diversity, Acid rain, global temperature, Global warming.

Introduction - Environmental management is a process of planning, review, assessment, decision- making and the like which is essential in the real life situation of limited resources and changing priorities. The important aspects of environmental management are-

(i) to create a pollution free environment,
(ii) to protect man and animals from pollution,
(iii) to protect bio-diversity of the world,
(iv) to analyze the impact of development plans on environment,
(v) to help in formulation of national and regional environmental policies,
(vi) to monitor the on-going plans for the quality of environment,
(vii) to sponsor awareness programs and to educate people at all levels
(viii) to examine the efforts mode under environmental management and its results.
(ix) To encourage research in the various fields of environment, and
(x) To suggest guidelines to the government for the improvement of the quality of environment.

Approaches - The approaches of the management of environment can be grouped into two categories, viz. (i) Preservative approach, and (ii) Conservation approach. According to the first, man should not disturb the natural system and should adjust according to it. While the conservative approach is that there should not be overexploiting of nature and conservation of nature is essential for sustainable development. Although the various approaches developed for the environments management are : (i) Ad hoc approach, (ii) Problem solving approach, (iii) system approach, (iv) specialist discipline approach, (v) Voluntary sector approach, (vi) Commercial approach, (vii) Human ecology approach, (viii) Political ecology approach, and (ix) Although best approach to environmental management is an integrated approach in which all the components of the environment have been taken into consideration and its proper management as a whole, is done.

Priority sectors or issues - The list of issues of environmental management is so exhaustive that it is not possible to discuss all aspects; therefore, priorities should be fixed for global and national levels. Mary H. Cooper, in a report 'Setting Environmental Priorities' lists the following as the most of global issue-

(i) Greenhouse effect and consequent climatic changes,
(ii) Ozone depletion,
(iii) Acid rain,
(iv) Air pollution,
(v) Indoor air pollution
(vi) Municipal and industrial solid wastes.
(vii) Likely escape of toxic/hazardous chemicals,
(viii) Nuclear wastes,
(ix) Arresting pace of deforestation and restring balanced minimum tree cover area,
(x) Habitat and ecological diversity protection, and
(xi) Land, water and natural resource management.

On the other hand developing countries like India are facing a number of environmental problems and all need proper management. The important issues which need management are (i) forest, (ii) wildlife, (iii) soil (iv) pollution control (vi) population and urbanization (vii) conservation or resources and bio-diversity, etc.

The immediate steps required for the environmental management are environmental education, environmental legislation and its implementation, monitoring and mapping

* Asst. Professor (Chemistry) Govt. Nirbhaya Singh Patel Science College, Indore (M.P.) INDIA

of environment.

Air pollutants are due to the compounds of CO_2 & CO, SO_2, H_2S, H_2SO_4, NO, NO_2, Hno_3, Ozone, Fluoro Carbons, Hydrocarbons, Metals, Petro Chemical Products and Particulate matters. The impact of air pollution is popularly known as GREEN HOUSE EFFECT, ACID RAIN & OZONE DEPLETION etc. Major Rivers & Fresh water streams are badly polluted by industrial wastes or effluents. Important revers like Yamuna, Ganga, Gomti, Damodar, Hoogly, Canvery, Godavari, Sone & Suwao are being polluted due to various sources of pollution. UN Conference on environment in Stockholm (1972) organized a conference regarding the quality of air and control of population which was concluded with slogan "Conserve or Perish" Environmental conservation is a desire to pursue development along rational and sustainable lines. The undesired change in environment is the violation of human right to live and grow in proper environment. Human right is of global consideration thus conservation of environment is mandatory.

Man has always been fascinated by the diversity of life, biodiversity entails all for us of biological entities inhabiting the earth including prokaryotes and eukaryotes, wild plants and animals micro and macro organisms, domesticated and wild plant and even genetic material like seen and germplasm The earth and its environment are true laboratories of nature which keep constantly churning out the process of various kinds. Living organism in soil, air or water owe their continued survival to the balance of the physical and chemical conditions prevailing on earth and its environment. Is view of these ecological factors, mankind has to see that no such circumstance prevail which can force an abnormal and harmful situation resulting in peril to the natural system.

Result - The present paper discusses various threats to biodiversity & their impat on natural ecosystem.

In study a survey was done for the water resources, their availability & compared with the requirement of water for different uses of water in the area. Another survey was done to analyze the management of water, conservational efforts made by government & NGOs. The objective of the study is the amaryllises of quality & quantity of water to meet the abstractive needs, & how to enrich the resources of Rivers, Lakes & Aquifers. The water treatment & disposing of the affluent coming from the human use of water was also studied.

The study concludes that the available water resources are very less in quantity & the total requirement of water in rural area is about 1416.33 million cubic meters per anum & in urban area it is 2339.20 million cubic per anum. & it is growing day by day with the population & its needs. The efforts of conversation of water & its managements by the Govt. & non. Govt. Organizations is very obsolete & there is a need of public awareness & its participation for this purpose. An increase in global temperature will cause sea levels to rise and will change the amount and pattern of precipitation, and a probable expansion of subtropical desert. Warming is expected to be strongest in the Arctic and would be associated with continuing retreat of glaciers, permafrost and sea ice. Other likely effects of the warming includes more frequent occurrence of extreme weather events including heat waves, droughts and heavy rainfall, species extinctions due to shifting temperature regimes and changes in agricultural yields. Warming and related changes will vary from region to region around the globe, with projections being more robust in some areas than others. In a 40C world, the limits for human adaptation are likely to be exceeded in many parts of the world, while the limits for adaptation for natural systems would largely be exceeded throughout the world. Hence the ecosystem services upon which livelihood depend would not be preserved.

Environment pollution - Environment pollution is now one of the serious problems faced by the people in the country. Rapid population growth Industrialization and urbanization In country are adversely affecting the environment. Thought the relationship is complex, population size and growth tend to expend and accelerate these human impact on the population levels. However environmental pollution not only bad,s to deteriorating environmental condition but also have adverse effect on the Biodiversity. India is one of the most degraded environment countries in the world and is paying heavy health and economic price for it. The present investigation is on attempt to examine population increasing urbanization and its influence on the environment and biodiversity the secondary analysis conducted of the changes and trends over last fifty years. The analysis reveals that rapid population growth plays on important roll in environment problems of the country from deforestation to land degeadation air and water population to the spread to diseases the analysis has suggested that there is a urgent need to control population and environmental population in the country for the better biodiversity of present and future generation.

Environmental conditions play a key role in defining the function and distribution of plants, in combination with other factors. Changes in long term environmental conditions that can be collectively coined climate change are known to have had enormous impacts on plant diversity patterns in the past and are seen as having significant current impacts. [1] It is predicted that climate change will remain one of the major drivers of biodiversity patterns in the future.

The Earth has experienced constantly changing climate in the time since plants first evolved. In comparison the present day, this history has seen Earth as cooler, warmer, drier and wetter, and CO_2 (carbon dioxide) concentrations have been both higher and lower. These changes have been reflected by constantly shifting vegetation, for example forest communities dominating most areas in interglacial periods, and herbaceous communities domination during glacial periods. [6] it has been shown that past climatic change has been a major driver of the processes of speciation and extinction. The best known example of this is the

Carboniferous Rainforest Collapse which occurred 350 million years ago. This event decimated amphibian populations and spurred on the evolution of reptiles.

There is significant current interest and research focus on the phenomenon of recent anthropogenic climate changes, or global warming. Focus is on identifying the current impacts of climate change on biodiversity, and predicting these effects into the future.

Changing climatic variables relevant to the function and distribution of plants include increasing CO2 concentrations, increasing global temperatures, altered precipitation patterns, and changes in the pattern of 'extreme' weather events such as cyclones, fires or storms.

Because individual plants and therefore species can only function physiologically, and successfully complete their life cycles under specific environmental conditions (ideally within a subset of these), changes to climate are likely to have significant impacts on plants from the level of the individual right through to the level of the ecosystem or biome.

Increases in atmospheric CO2 concentration for affect how plants photosynthesise, resulting in increases in plant water use efficiency, enhanced photosynthetic capacity and increased growth. Increased CO2 has been implicated in 'vegetation thickening' which affects plant community structure and function. Depending on environment, there are differential responses to elevated atmospheric CO2 between major 'functional types' of plant, such as C3 and C4 plants, or more or less woody species; which has the potential among other things to alter competition between these groups. Increased CO2 can also lead to increased Carbon : Nitrogen ratios in the leaves of plants or in other aspects of leaf chemistry, possibly changing herbivore nutrition.

Increases in temperature raise the rate of many physiological processes such as photosynthesis in plants, to an upper limit. Extreme temperatures can be harmful when beyond the physiological limits of a plant.

As water supply is critical for plant growth, it plays a key role in determining the distribution of plants. Changes in precipitation are predicted to be less consistent than for temperature and more variable between regions, with predictions for some areas to become much wetter, and some much drier.

General effects - Environmental variables will not act in isolation, but also in combination with one other, and with other pressures such as habitat degradation and loss or the introduction of exotic species. It is suggested that that these other drivers of biodiversity change will act in synergy with climate change to increase the pressure on species to survive.

All the waste either municipal solid waste. Industrial waste, domestic refuses, urban refuse, garbage, rubbish are one of the greatest threat in our society. We are not drawing our due attention to this burning problem and it is hampering human health as well as economical and social wealth.

This major environmental problem, excess pollution has become National Concem. It has been admitted widely now this without following the measures of waste recycling, rapid and complete removal of environmentally dangerous waste through advanced scientific methods, reuse, recycle, waste dump, our survival can be on the stake.

Waste Awareness n Management is need among citizens, industrialists, entrepreneurs and big houses. WASTE CAN BE CONVERTED INTO WEALTH by re-use, recycle and can be used as raw material for many industries and concerns.

Waste recycling, waste treatment, waste disposal, waste utilization and other pollution control measures covering non-conventional energy can lead to pollution free society with high rate of employment, high industrial rate social and economical upliftment with better world.

Some of the Major projects which can be establish to convert different types of waste into the wealth for the Nation can be summed as;

Acid Recycling System, Alternative gas from Corn Waste, Waste water clarification and recycling for Industrial and livestock use, Waste rubber Yields Tiles, Waste Tyres for compressive strength, Waste plastic for construction purpose, Waste egg shelf used as in Medical applications Projects and so on ......

Thus thousands of innovative projects are in pipeline with advanced technological support to convey all sort of WASTE INTO WEALTH for the good sake of Society and Nation.

Electronic waste, e-waste, e-scrap, or Waste Electrical and Electronic Equipment (WEEE) describes discarded electrical or electronic devices. There is a lack of consensus as to whether the term should apply to resale, reuse and refurbishing industries, or only to product that cannot be used for its intended purpose. Informal processing of electronic waste in developing countries may cause serious health and pollution problem, though these countries are also most likely to reuse and repair electronics, some electronic scrap components, such as CRTs, may contain contaminants such as lead, cadmium, beryllium, or brominates flame retardants. Even in developed countries recycling and disposal of e-waste may involve significant risk to workers and communities and great care must be taken to avoid unsafe exposure in recycling operations and leaching of material such as heavy metals from landfills and incinerator ashes. Scrap industry and USA EPA officials agree that materials should be managed with caution, but many believe that environmental dangers of used electronics have been exaggerated.

Global warming - Global warming is the greatest crisis ever collectively faced by human kind like other crisis. It is global in nature, threatens the survival of civilization. There is increasing concem about gradual warming of the atmosphere through green house effect and consequent climate changes.

Climate change - Climate change is the moral challenge of our generation "and that "ITU is one of the most important stakeholders in terms of climate change: International Telecommunication Union (ITU) is committed to achieving

climate neutrality and to working with our membership to promote the use as an effective tool to combat climate change.

The global emissions of green house gases are due to human activities which have grown from pre- industrial era with an increase of 70 percent (as a baseline) from during period 1970 to 2004. Carbon dioxide is an most important anthropogenic green house gases (GHS). Its annual emission has grown by about 80% during period from 1970 to 2004, risen from 21 to 38 gigatones (Gt). The causative factor for this enhancement in emission is poverty. Poverty eradication has been supplemented with development on sustainable basis, in a country's like India the activities led to collection of wood, fuel wood from forest, for burning as fuel wood energy for cooking food and other activities, deforestation for establishment of commercial and residential areas, industries, new railway lines, agricultural sector, construction of dams and implementation of irrigation projects. The deforestation is main producer of carbon dioxide Forests play a vital role in global carbon budget acting as sink or sources of carbon including environmental stability.

Some of the critical impacts of climate change assessed across the globe are as below By 2100, agricultural productivity in South America could fall by 12 to 50 per cent. In Mexico, 30 to 85 per cent of farms could face a total loss of economic productivity by 2100.

Climate-related natural disasters (storms, droughts and floods) cost, on average, 0.6 per cent of GDP in affected countries.

Hurricane damages will increase by 10 to 26 per cent for each 1^{o}F warming of the sea.

Many Andean glaciers will disappear within the next 20 years placing 77 million people under severe water stress by 2020 Caribbean corals will bleach and eventually die. Since the 1980s, 30 per cent of corals already have died, and all could be dead by 2060.

Increase in risk of dengue, malaria and other infectious diseases in some areas.

The Amazon rainforest could shrink by 20 to 80 per cent if temperatures increase by 2 to 3^{o}C

Large biodiversity losses are expected in Mexico, Argentina, Bolivia, Chile and Brazil.

Even though, the Region is not one of the main sources of global GHG emissions that are driving global warming, the above list shows that the impact of climate change on Latin America is and will be dramatic and costly and highlights the urgency of actions to address this problem.

The key to combating climate change is to stabilize and eventually reduce the emission of GHG. Global success has been achieved in the past with a reduction in ozone depleting substances (Such as chlorofluorocarbon (CFC) gases) to 20 per cent of their 1990 levels by 2004, due to the 1987 Montreal Protocol. However, emissions of carbon dioxide have grown by around 80 per cent since 1970 and, despite the 1997 Kyoto Protocol, which set aggregate targets for a limitation/reduction by 5 per cent of 1990 levels by 2008-2012.

Conclusion -

Problem & Solution - As we know, greenhouse gases such as carbon dioxide (CO2) are serious pollutants which contribute to climate change on Earth, specifically global warming. Tropical forest helps in two ways: a) they regulate global climate patterns and help mitigate negative effects of climate change, specifically, global climate warming, and b) they serve as storages of global biodiversity, specifically plant and animal diversity.

The human activities all over the globe have been responsible for use of huge volume of fossil fuels in the form of gasoline, oil, coal, and natural gases has resulted in emission of four long lived green house gases i.e. carbon dioxide, methane, nitrous oxide and halocarbons. About 83% of carbon dioxide emission is due to burning of fossil fuels. Many emissions are biogenic and are influenced by human beings. The anthropogenic sources of emissions are biomass burning, volcanoes eruption, lightening, biogenetic emissions from land area and oceans. Due to green house gases there has been global warming on account of which society is suffering not only in India but across the globe due to rise in temperature, which is widespread across the globe and is greater in northern latitude, rise in sea- level coastal areas in India, Jawa, Sumitra, Jakarta due to expansion in ocean depths. The climate change has been visualized by reduction in cold days and cold nights in winter, frost has become less frequent, with warm days and not nights a more prevalent and frequent. The frequency of untimely heavy precipitation has increased leading to surface run- off causing floods and damaging ecological diversity and leading to health hazards.

References :-

1. Times of India Jan 2014
2. Study of Enviroment 2013. Roy Publication New Delhi .
3. SRF Research Journal 2014
4. UN Conference on environment in Stockholm (1972. Cooper, in a report 'Setting Environmental Priorities'

****

Symbolism in the poetry of W.B. Yeats

Dr. Pratibha Rajpoot *

Introduction - Symbolism in day to day life is described as objects, persons, actions and relationships i.e. tonics energy of tiger, horsepower for representing the power of the motors engines. Many counties are symbolized by their products. Symbols are used for conveying the values and meaning of ideas intended to represent. Anthropologists observes symbols and their use in a society, What people desire meanings from symbols and their areas. They use symbols as a raw material for comparative study of processes of human thoughts and actions. They also give social dimension to the study of symbolism.

The word symbolism is very much popular literary device in the modern English and American poetry. To depict life in the present day, complex social setup W.B. Yeats has a unique place in the modern English poetry and emerges as a poet symbolist. A careful reading reveals the hidden and deeper meaning when interpreted symbolically, the scope widens and the full implications of what W.B. Yeats says are brought about. Symbolism represents the answer of basic queries of life as birth, death, love, hate, fear and immortality. We generally use two types symbols one stands for tradition and daily life, second symbols for literature, Art and religion.

Since literature is a way to portray human experiences in its variety depth, complex circumstances influenced by socio-economic, cultural and technological development. The symbols are the best elements of the literary activity to expose realities by evoking suggesting and analyzing the total situations with concrete images which is triumphant experience. Yeats theory of poetry is guided by his concept of Symbols. According to him " A symbol is indeed the only possible expression of some invisible essence a transparent lamp without a spiritual flame" To him 'Some invisible essence' was only the greater reality-which the realist had discarded. He believed that the only real world is the world created by imagination, because the world of sense and reason is deceptive and the entities of this world of imaginations can be grasped only in terms of symbols.

Man creates symbols while giving name to the image of the outer world to express his feeling by wonder. Yeats poetry consists of many theories i.e. theory of imagination. 'theory of symbol', theory of mask' etc. He indeed mixed up poetic principles with hermetic examples and always conscious of increasing the power of poetry and the role of poet. As a description and extension to the theory of symbolism. W.B. Yeats in 1901 led to formulate in the 'Essay on Magic' that our borders of memories are as shifting and that our memories are a part of one great memory. And it is a study of symbols of myth, frances, dreams and other human dreams and other human visions like, Psychoan-alylitical and anthropological. It is essential to define a symbol as a literary term and understand its relations with others figures of speech such as simile metaphor etc, which are used to create images and various categories of symbol in detail in a particular reference to modern English poetry. The word symbol derives from the Greek work 'symballien' meaning to put together and the related noun, symbol on meaning 'mark token' or 'sign'. The new oxford Enclyclopedia Dictionary defines symbols as a thing standing for a representing something else, especially material thing taken or presents immaterial or abstract thing as an ideal or equality. Symbols stands to represents usually the resembalances in quality and characteristics as the Oak tree is a symbol of strength, this whiteness, lion and rose commonly symbolize or represent innocence, courage and beauty respectively. Human body and marks on it have been used for symbolic expression almost in all societies. These marks may be permanent i.e. tattooing or temporary i.e. body painting and temporary colour marks on body. Dress is also used as a symbol to convey a particular expression of a value or an idea. Symbols are essentially words, which are not merely connotative but also evocative and emotive. Symbols can be used to convey pure sensation or the poet's apprehension of transcendental mystery.

In a later essay on symbolism Yeats asserted that it after appeared in poetry without the poet's being consciously aware he was using, it for illustration he took passage from Burns:-

The white moon is setting behind the white wave,
And time is setting with me, O!

These lines, Yeats declared, are perfect symbolical"

Take from them the whiteness of the moon and of the wave, whose relation to the setting of time is too subtle for

* Guest Lecturer (English) Govt. College, Amarwara, Distt. Chhindwara (M.P.) INDIA

the intellect and take from their beauty. But when all are together mood, and wave and whiteness and setting time and the last melancholy cry they evoke and emotion which cannot be evoked by any other arrangements of colour and sound and forms.

'Byzantium' is a dramatic example of Yeats handing of the image, and a difficult that poet appears to distinguish between two meanings of the word. The unplugged images of day recede. These day time image which the poet so immediately dismisses are apparently the ordinary objects of experiences which make up the external world. Only at the and of the poem do we learn that they are made of the same stuff as the night time image, one of which now proceeds to invoke:-

Before me floats and image man or shade
Shade more than man, more image than a shade.

Such image seems at first to be for removed from life. Since they are indetifiable neither with the living man nor his ghostly substitute. How may the poet grasp these images as the must do it if his poetry is to go below the superficies of days. Yeats answers with the below powerful lines :-

For Hades ' bobbin bound in Mummy cloth
May unwind the winding path
A mouth that has no moisture and no breath
Breathless mouths may summon……..

Hade's bobbin is the soul, which comes from the underworld and eventually return there until its rebirth. In life it winds up the mummy cloth of experiences, a funeral term used because in the poem life a paradoxically regarded as a surrender of the souls freedom and therefore as a kind of imprisonment or death. On returning to Hades the soul unwinds the cloth- the winding path of nature- like a bobbin unwinding thread. But says, the poet, even during life, at moments of 'breathless', inspiration, we escape from ourselves and our past and summon the deathless, lifeless image which has no moisture and no breath.

Many poems of The Rose volume for instance. A fairy song, The white Bird, A Dream of Death and when you are old etc. are purely romantic in nature but Yeat's sense of spiritualism comes out of his romanticism.

Yeats in his last phase wrote j poetry between 1936 and 1939. New poems includes thirty five poems starting with The Gyres and ending with, Are you content. Yeats poetic purpose often intoxicated him in this last period. His melancholy tone prevailed in these poems because by his old age. We find yeats brooding over powerful natural symbols and images that characterized symbols and images that characterized most of his works. The contrast between Youth and old age, the common place of outer reality and heroic dreams treated with plain derogatory images and new national symbols. Yeats remained still romantic in choosing image and symbols. He treated his obsessive icons that he discovered in the figures like Lady Gregory, Maud Gonne, Crazy Jane Cuchulain who aroused emotion suggested focuses but were sufficiently complex to remain mysterious.

According to T.S. Eliot " The last poems express the plight of old age without any hope of salvation. The tone of discontent, dissatisfaction, restlessness that comes from his disappointment with experience and his reluctance to leave the chance of novel revelation marked. Yeats could not be absolute for life or death and so 'tragic joy' is charged with pressure. 'The Gyres' the first poem of his volume established the theme of 'tragic joy'. According to him 'tragic joy' is a brave opposition to decay and death. Hence, The Gyres displays Yeat's idea of 'tragic joy'."

There is in the creative joy of acceptance of what life brings, or a hatred of death for what it takes away, which arouses within us through some sympathy perhaps with all other men an energy so noble so powerful that we laugh aloud and mock in the terror or the sweetness of our exaltatti, at death and oblivion. Indeed 'the Gyres got a great deal of its force echoes of proceeding works.

For beauty dies of beauty, worth of worth,
Love's pleasure drives his love away.
The painter's brush consumer his dreams.

He comments that 'The Gyres' is a prayer like effort to keep open the Channels of creativity, to maintain the habit of composition. The whole poem cycles of nature of life and death and rebirth that man dreams has become a single gigantic image. So the creation of an imagery world becomes of real worth.

'The Black Tower' is Yeat's last poems. It makes over for the last time what remains Yeat's central symbol, the tower. It is now the tower of refuge only because he is aware of the distress the moments brings. This poem like 'The Gyre's records the moments when the Gyre changes dissection. According to him this is a poem "On the subject of political propaganda." It is indeed true that Yeats could never forget the heroic deal till his death. He believed that the dormant sprit of Ireland will awake and inspire the people to attain their former dignity and power.

It is evident that there is much nonsense in Yeats's ideas but there is more wisdom than nonsense. Yeats's poetics and creative process are undoubtedly personal but at the same time they are of universal value. The present work comes to its conclusion with this observation that Yeats, indeed, produced seeds for others to cultivate and reap and harvest.

References :-

1. A Commentary on the collected poems of - W.B. Yeats A Norman Jeffares Published by Macmmillan and Co. Ltd. 1924.
2. W.B. Yeats and his world - By Micheal Mac Liammair and Eavan Thames and Hudson Ltd. London- 1918.
3. W.B. Yeats - Essay and Introduction London and Macmillam and Co. Ltd. 1969.
4. Outline History of English Literature - Hudson 1981
5. Yeats and Irish 18 Century Dublin. Faulkner Peter, Dolmen Press 1965

भारत और वैश्वीकरण -सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भ

डॉ. उमेद प्रसाद विश्वकर्मा *

शोध सारांश - भूमण्डलीकरण संसार को इतना करीब ले आया है, जितना यह पहले कभी नहीं था। संचार क्रांति ने इस प्रक्रिया को अधिक सुगमता प्रदान की है। हालाँकि, भूमण्डलवादी, परम्परावादी और विवर्तनवादी इसे बहुत अलग नजरिए से देखते हैं। भूमण्डलीकरण का वर्तमान स्वरूप यद्यपि पूँजीवादी प्रणाली की विजय की उद्घोषणा करता है, यह उसके विकास में एक महत्वपूर्ण चरण भी है। इसके द्वारा उत्पन्न की गई संपूर्ण संयोजकता और अन्तनिर्भरता के लिए, विश्व में व्यापार और पूँजी प्रवाह अभी तक विश्व के तीन क्षेत्रों में एकीकृत है- संयुक्त राज्य अमरिका, जापान और यूरोपियन संघ के देश। इसके अलावा भूमण्डलीकरण ने शेष विश्व पर विकसित विश्व की पकड़ की पुष्टि की है। उदारीकरण के माध्यम से राज्यों ने अपने समाजों को भूमण्डलीकृत विश्व से जोड़ा है। जबकि राष्ट्र-राज्य इस विकास के साथ अपने तरीके से पेश रहा है, उसके नीचे, बगल में और ऊपर नई संस्थाऐं हैं, जो सामने आई हैं। कुल मिलाकर भूमण्डलीकरण ने आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों पर गहरा प्रभाव डाला है। यद्यपि भूमण्डलीकरण को अपनाने में, भारत ने देर की, आज यह भूमण्डलीकरण विश्व में भी भली-भाँति व्याप्त है, जबकि भारत ने उदारीकरण की नीति को अपनानकर संतोषजनक आर्थिक एवं व्यापार वृद्धि दर्ज की है, विद्यमान विचारधाराओं का तर्क है कि इस घटनाकाल में अलाभान्वित एवं श्रमशील आम जनता का भविष्य गर्त में चला गया है।

प्रस्तावना - अस्सी के दशक में विश्व के बड़े हितों में संसाधनों के आवंटन में राज्य से विपणन की ओर एक प्रबल विचलन हुआ। इसी के साथ आई सूचना और संचार क्रांति जो विपणन की पक्षधर थी। यह विचलन अर्थव्यवस्था कुनियां और कर एवं सरकारी खर्च घटाने की कार्यवाही की ओर ले गया। उदारीकरण समर्थित विपणन की प्राथमिकता को भूमण्डलीकरण पूंजी द्वारा खुला समर्थन दिया गया। पारदेशीय उद्यम और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक अभिकरणों ने भी उदारीकरण की नीति का अनुसरण के लिए राज्यों पर अत्याधिक दबाव डाला। 1989 में पूर्वी यूरोप में समाजवादी शासनों के विध्वंस और 1991 में सोवियत संघ के विलय को विपणन की विजय के रूप में पुकारा गया और विपणन शक्तियों को और अधिक प्रोत्साहन मिला।

संप्रभुता को खतरा - राष्ट्र-राज्य 20वीं शताब्दी के अंत में वैश्वीकरण के आने से संकटपूर्ण स्थिति में फंस गया है। इसने राष्ट्र-राज्य की तरह उसके अस्तित्व के बहुआयामी होने की वैधता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। राष्ट्र-राज्य भूमंडलीय एकीकरण और स्थानीय विघटनकारी शक्तियों द्वारा बीचों-बीच फँसा लिए गए हैं। **जॉन क्रेशे** ने रेखांकित किया है कि सफल निर्यातकर्त्ताओं तक को अनुभवों को रेखांकित किया है कि जिनमें कि पूर्वी एशिया के देशों जैसे अनेक सफल निर्यातकर्ता शामिल हैं, यही रहा है कि यह सफलता भी उन्हें स्वेच्छा से या मजबूरी में मालों के बाजार के उदारीकरण की ओर ले जाती है और मुद्रा का मूल्य बढ़ाने में भी योग देती है। ये दोनों चीजें मिलकर, निर्यात प्रतियोगियात्मकता को कमजोर करके व्यापार संतुलन को बिगाड़ती है। इसके बाद, भुगतान संतुलन घाटे की भरपाई के लिए जरूरी विदेशी मुद्रा हासिल करने के लिए वित्तीय उदारीकरण का सहारा लेना पड़ता है। इन देशों में बुनियादी मानकों के मजबूत होने के चलते बाहरी पूँजी के प्रवाह अपेक्षाकृत आसानी से हासिल भी हो जाते हैं। यह चीज विदेशी वित्तीय प्रवाहों पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता की ओर ले जाती है, बहरहाल इस तरह के प्रवाह आर्थिक नीति के मामलों में राष्ट्रीय सम्प्रभुता को कमजोर करते हैं।

वैश्वीकरण, राज्य और क्षेत्रीयता - आर्थिक उदारवाद के प्रति प्रत्यक्ष परिवर्तन के राजनीतिक सिद्धांत कहीं अधिक जटिल बन रहे है। 1980 के दशक के अंतिम वर्षो में राजनीतिक परिदृष्य राष्ट्रवादी तनावों का बड़े पैमाने पर तथा विश्व अर्थव्यवस्था को समुचित रूप से प्रयुक्त न करने में संस्थाओं की कमजोरी का पुन: प्रवर्तन हुआ। नई राजनीतिक संरचनाओं जो राष्ट्रीय सीमाओं से परे जा सके, के गठन के लिए कुछ प्रयास किए गए। 1992 के अंत में यूरोपीय संघ ने अपने बारह सदस्य देशों के भीतर एकमात्र बाजार की स्थापना की। इसके अतिरिक्त वह आर्थिक सहयोग के बुनियादी समर्थन में एक राजनीतिक संघ के गठन के लिए संघर्ष कर रहा है। दूरस्थ पूर्वी यूरोप की सरकारें उन योजनाओं पर विचार कर रही हैं जो बढ़ते हुए आर्थिक गठबंधन की तरह क्षेत्र के भीतर राजनीतिक सहयोग में वृद्धि करें। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जिसका कनाडा और मेक्सिको के साथ मुक्त व्यापार करार स्थापित हो चुका है, अब एफ.टी.ए.(F.T.A) की संकल्पना को दक्षिण अमेरिका में लागू करने के लिए तैयार है।

- **औद्योगिक नीति सुधार -** कुछ विशिष्ट उद्योगों के छोड़कर इसमें औद्योगिक लाइसेसिंग को समाप्त कर दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित मदें एकदम प्रतिबंधित हो गई और इसने सीधा विदेशी निवेश पर प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में जनस्वामित्व के विनिवेश वाला एक चरणबद्ध कार्यक्रम शुरू किया गया। अनिवासी भारतीय(NRIs) को निवेश के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया गया और भारतीय उद्यमों द्वारा बाह्य निवेश को उदार बनाया गया।
- **विनिमय दर सुधार -** 1991 में रूपए का अवमूल्यन हुआ। 1992-93 में रूपए की अंशत: परिवर्तनीयता और 1994 में चालू खाते पर पूरी परिवर्तनीयता की गई। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) की

* अतिथि विद्वान (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

स्थापना द्वारा पूँजी बाजार सुधार कार्य शुरू किए गए।

- **वित्तीय सुधार –** निजी क्षेत्र के बैंक जिनमें विदेशी साझा व्यापार बैंक शामिल हैं, को अपना कारोबार चलाने एवं बढ़ाने की अनुमति दे दी गई। निजी गैर–बैकिंग वित्त कंपनियों के लिए नीतिगत शासन स्थापित किया गया। उस दिशा में कोई नीतिगत समझौता नहीं किया गया। जिनमें द्वितीय पीढ़ी सुधार नामक सुधार किये जाते हैं। इसकी अनुपस्थिति में, सरकार ने उन क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा पैदा करने का प्रयास किया है जहाँ अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार था। विपणन प्रतिस्पर्धा के लिए बीमा क्षेत्र के दरवाजे खोले गये, विनिवेश के लिए दिशा–निर्देश निर्धारित करने का प्रयास किया गया और विश्व व्यापार संघ से अपने समझौते के मुताबिक अनेक मदों से सीमा शुल्क हटाए।

सामाजिक क्षेत्रों में निवेश – भारत में उदारीकरण दशक में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं गरीबी घटाने जैसे सामाजिक क्षेत्रों में व्यय घटता रहा है। जो सरकार सामाजिक आधारभूत संरचना– जैसे प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल, आवास या पेयजल अथवा भौतिक आधारभूत संरचना जैसे– परिवहन, ऊर्जा या संचार का प्रबन्ध नहीं कर सकती, वह विदेशी निवेश हो न हो, किसी भी स्थिति में जनता की आर्थिक समस्याओं को हल नहीं कर सकती। ऐसे कई उदाहरण हैं। लातिनी अमेरिका के कई देशों में कुछ रकम या प्रति व्यक्ति के लिहाज से विदेशी निवेश खूब हुआ, लेकिन उससे उनको लाभ नहीं हुआ। जो काम सरकारों को करना है उन्हें बहुराष्ट्रीय निगम और अनिवासी भारतीय नहीं करने वाले हैं।

- सकल घरेलू उत्पाद की प्रतिशतता पर शिक्षा पर केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों का खर्च सबसे अधिक प्रभावित उच्चतर शिक्षा का क्षेत्र रहा है। प्राथमिक शिक्षा के अग्रताप्राप्त क्षेत्र को भी है इस सुधार अवधि में कोई सार्थक रूप से बड़ा आवंटन नहीं प्राप्त हुआ।
- राज्यों में भी, कुछ मिलाकर, विकास खर्च घटा है।
- स्वास्थ्य क्षेत्र हेतु आवंटन सातवीं योजना में 1.7 प्रतिशत से 1997–98 के दौरान एक प्रतिशत तक घटा।
- जबकि केन्द्रीय सरकार ने कई वर्षो से सामाजिक क्षेत्र के बड़े हिस्से को काम में लगाए रखा है। इन क्षेत्रों में राज्यों को केन्द्रीय सहायता घटी है। भूमण्डलीकरण के बाद भारतीय मध्य वर्ग के जीवन में बनावटी रंग–ढंग, चमक–दमक और कृत्रिमता ने व्यापक रूप से घुसपैठ की है जिसका प्रतिबिम्ब हिन्दी सिनेमा में प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है आज भारतीय मध्यवर्ग, मॉल्स, मल्टीप्लैक्स, शॉपिंग काम्प्लैक्स, मैकडॉनल्ड, पिज्जा हट और फैशनेबल वस्त्रों की चकाचौंध में ऐसा खोया है, कि वह ढाई–तीन घण्टे की फिल्म में पूरी दुनिया घूम लेता है।

भारत में भूमण्डलीकरण के कारण सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृष्य में तीव्रता से परिवर्तन हुए हैं। जिससे यूरोपीय और अमरिकी संस्कृति को अपनाने की होड़ के साथ ही इनसे जुड़ी मुसीबतें भी बढ़ी हैं। आज विदेशी कंपनियों को भारत एक बड़ा बाजार के रूप में दिखाई देता है, क्योंकि आज यहाँ का मध्यवर्ग सूचना के आधुनिकतम उत्पादों से लैस है। आज उसकी स्थिति दस–पन्द्रह साल पहले की नहीं रह गई, वह आज साइबर जगत में भ्रमण करता है और टेलीविजन उसे देश–विदेश की हर नवीनतम घटना और उत्पाद की जानकारी पलक झपकते देता है। जिसके कारण वह सुबह उठने से लेकर रात्रि शयन तक निरंतर सूचनाओं से घिरा रहता है बल्कि उनसे प्रभावित भी होता है, फलस्वरूप वह भी भूमण्डलीय बाजार का एक उपभोक्ता बनने से खुद को रोक नहीं पाता है। इस संदर्भ में **सच्चिदानंद सिन्हा** कहते हैं कि– दरअसल नई संचार क्रांति सग्लोबल विलेज बनने की बजाय संसार आज ग्लोबल सुपर मार्केट बन गया है।

आर्थिक भूमण्डलीकरण – आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण सर्वाधिक चर्चित प्रक्रिया है, आर्थिक रूप से संसार एक ईकाई बनता जा रहा है। एक देश की आर्थिक घटनाऐं अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित करने लगी है। अनेक प्रमुख क्षेत्रोमें आर्थिक प्रक्रियाऐं अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीयकृत होती जा रही है। यह प्रमुख क्षेत्र है– संचार, उत्पादन, व्यापार, वित्त एवं अन्य आर्थिक सहयोग के मामले। अब समस्त संसार में अभूतपूर्व रूप से व्यापार आदान–प्रदान होने लगहै। डॉलर, पाउण्ड, यूरो तथा येन जैसी मुद्राओं का चलन विश्वव्यापी हो गया है। डॉलर के विषय में यह कहा जाने लगा है कि जितने डालर अमेरिका में चलते है उससे अधिक शेष विश्व में प्रचलित है। इन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा जारी धन प्राप्ति में विशेष अधिकार (Special Drawing Rights - SDR) तथा यूरोपीय यूनियन द्वारा जारी मुद्रा का भी प्रमुख स्थान है। क्रेडिट काड(Credit Card) के रूप में प्लास्टिक मुद्रा भी समस्त विश्व में स्वीकृत होती है। बैकिंग व्यवस्था भी भूमण्डलीय हो गयी है।

आर्थिक भूमण्डलीकरण का प्रभाव – वे समर्थक जो इसके समर्थन में अपना मत रखते हैं उन आधारों को निम्नानुसार देखा जा सकता है–

- यह उपभोक्ता के लिए लाभकारी है। भूमण्डलीकरण के उदय से वस्तुओं और पूँजी के मापदण्ड और आवंटन क्षमता में बढ़ोत्तरी हुई है।
- यह माना जाता है कि इसने विशाल अप्रयुक्त संसाधनों को उजागर किया है और विश्वभर में आर्थिक उगाही की ओर उन्मुख किया है।
- परिणामत: इसने राज्य को पीछे खदेड़ दिया है, परजीविता और नौकरशाही को अन्दर ही अन्दर खोखला कर दिया है और उद्यमवृत्ति तथा ज्ञानाधारित उद्योग में एक लहर जगाई है।
- यह बहुतायत में ऐसा लचीलापन लेकर आया है जो उस प्रकार की दृढ़ता के सापेक्ष है, जो कल्याणकारी शासन और राज्य नियंत्रित व्यवस्था के अंतर्गत हुआ करती थी। इसके तत्वाधान में उत्पादन के एक लचीले ढंग, कार्य प्रणालियों, श्रम बाजारों उत्पादन, शिक्षा उपभोग के प्रतिमानों, बचतों आदि का उत्थान हुआ है।
- इसने मापदण्ड और गुणवत्ता, दोनों के एक भूमण्डलीय आर्थिक दर्जे के वायदे के साथ घाल–मेलों की प्रक्रिया और उद्यमों के अधिग्रहण को उच्च रूप से तीव्र गति प्रदान की है
- भूमण्डलीकरण ने पूँजी को चलायमान बनाने में बड़ी मदद की है तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसे द्विपक्षीय व बहुपक्षीय अभिकरणों पर विकासशील देशों की निर्भरता को कम किया है। आज वे विदेशी सीधा निवेश के लिए अपने विकल्प चुन सकते हैं और भूमण्डलीय पूँजी बाजारों तक सुगमता से पहुँच सकते हैं।
- अनेक देशों के लिए भूमण्डलीकरण अपनी प्रौद्योगिकी को विकसित करने का एक महत्वपूर्ण यंत्र–प्रबंध और भूमण्डलीय बाजारों तक पहुँचने का मार्ग रहा है।
- भूमण्डलीकरण ने ऐसे अनेक प्रौद्योगिक नवाचारों को महत्व दिए जाने की ओर अभिमुख किया है, जिन्हें संकीर्ण समाजों द्वारा प्रोत्साहित नहीं कया जाता। परिणामत: इन प्रोद्योगिकियों ने भूमण्डलीय प्रवाहों को अधिक तीव्र और द्रुत बना दिया है।

- भूमण्डलीकरण ने समुदायों और संस्कृतियों को आपस में जोड़ा है और उनके सामने विकल्पों को बढ़ाया है।

राजनीतिक क्षेत्र में भूमण्डलीकरण – राजनीतिक संदर्भों में वैश्वीकरण का अर्थ है– राष्ट्र राज्य को इस तरीके से अभिलेखबद्ध (Recorder) करना जो भूमण्डलीय एकता के अनुकूल हो। राष्ट्र–राज्यों की सम्प्रभुता की उम्मीद ही भूमण्डलीय स्तर की सम्प्रभुता के पश्चात की जाती है। विश्व के वैश्वीकरण की प्रक्रिया में राष्ट्र राज्य को हाशिए पर रखना सबसे बड़ी चुनौती है।

वैश्वीकरण पर राजनीतिक प्रभावों का आकलन निम्नानुसार किया जा सकता है–

- ऐसा माना जाता है कि विश्व–व्यापी उदारवादी लोकतंत्र का विस्तृत फैलाव भूमण्डलीकरण के वायदों के बिना संभव नहीं होगा।
- भूमण्डलीकरण ने सत्ता की जवाबदेही और पारदर्शिता को मजबूत करके उसे सुशासन की ओर अभिमुख किया है।
- इसने राष्ट्र–राज्य की शक्ति का परिसीमन किया है। शासक सम्भान्तों के विरोधियों एवं अलाभान्वित समूहों की आज कहीं अधिक व्यापक विश्व में पहुँच है। वास्तव में अनेक असहमत विचारों एवं पक्ष समर्थक समूहों ने अपने प्रतिष्ठानों को आगे बढ़ाने के लिए भूमण्डलीकरण का प्रभावी प्रयोग किया है।
- विभिन्न स्तरों पर आज प्रशासन की नई–संस्थाऐं हैं। विभिन्न स्तरों पर शक्ति के पुर्नसंगठन और निर्धारित लक्ष्यों की ओर इसके दिशा–निर्देशन द्वारा वे एक प्रभावशाली निर्वात को भरते हैं।
- भूमण्डलीकरण ने वर्ग संबंधों को बहुत प्रभावित किया है। सत्ता का पूँजी और विकसित विश्व की ओर विचलन तथा निर्णय लेने का अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों एवं सामूहिक पूँजी के एक गठजोड़ की ओर स्थानांतरण हुआ है। संगठित कामगार वर्ग की शक्ति का ह्रास हुआ है।
- भूमण्डलीकरण ने प्रवसन के प्रतिमानों के माध्यम से नए अनुबंधों की ओर ले गया है। विश्व के प्रत्येक बड़े शहर में उसी प्रकार की जीवन–शैली वाले नित्य नए सम्भ्रान्त वर्ग को जन्म दिया है। साथ ही प्रवासियों और श्रम बाजारों की तलहटी में स्थानीय श्रम के एक निकाय को जन्म दिया है।
- सूचना और जानकारी तक पहुँच के लिहाज से भूमण्डलीकरण ने राष्ट्रों के भीतर और उनके बीच असमानताओं को बढ़ाया है। इन्होंने सूचना संपन्न और सूचना विपन्न की नई सामाजिक श्रेणियाँ पैदा कर दी हैं।
- भूमण्डलीकरण के अंतर्गत नवउदारवादी विचारधारा अपनी विपणन स्वतंत्रता, निजी सम्पत्ति और संचय पर जोर के साथ एक प्रबल विचारधारा के रूप में उभरी है। हमेशा के लिए वैकल्पिक और पवित्र धारणाओं के प्रति इसमें आदर की भावना कम रही है। यह खुल्लम–खुल्ला राजनीति को तुच्छ नजर से देखता है, जबकि प्रत्येक उद्यम का यह समर्थन करता है। साथ ही भूमण्डलीकरण ने एक क्रम–परम्परावादी विश्व के निर्माण की ओर उन्मुख किया है जो सिंयुक्त राज्य और भूमण्डलीय पूँजी द्वारा संचालित है।
- भूमण्डलीकरण निगम पूँजी के विरूद्ध, परम्परावादी वाम और राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा करते दाहिनेय के मध्य का एक दिलचस्प गठबंधन उभरा है।
- भूमण्डलीकरण ने नए सामाजिक आंदोलनों के उदय की ओर अभिमुख किया है, जो परम्परावादी वर्ग आंदोलनों के भँवर से बाहर है, जैसे कि महिलाओं, खेतिहरों व जातीय समुदायों, विस्थापितों लोगों आदि के आंदोलन। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नई अर्थनीति का प्रभाव वैतनिक और अवैतनिक श्रमिक के रूप में महिला की दोनों हैसियतों पर पड़ता है। इससे महिला–पुरूष की असमानता घटने की बजाय बढ़ती है। सार्वजनिक क्षेत्र में सरकार के लोककल्याणकारी खर्चों में कटौती का सीधा प्रभाव महिला जीवन पर पड़ता है। बेरोजगारी, अस्थिर, आय और भौतिक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमत से गरीबी बढ़ती है एवं ढाँचागत समायोजन से महिला की सामाजिक गतिविधि प्रभावित होती है।
- भूमण्डलीकरण के तहत पाश्चात्य् और खासकर अमरीकी संस्कृति का वृहत विस्तार हुआ है। सांस्कृतिक प्रवाहों के बीच बहुत अधिक असंतुलन है। संस्कृति को थोपे जाने और प्रभुत्व जमाने के दोषारोपण, व्यापक रूप से सुनने में आते हैं। संस्कृतियाँ असुरक्षित हो गई हैं।
- अंग्रेजी भाषा एक पूर्व प्रबल स्थिति में उभरी है, जो कि भूमण्डलीय संगठनों और संस्थानों के भीतर और उनके बीच संचार की भाषा है। यह पाश्चात्य् वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए संचारण पट्टिका बन चुकी है।
- यह उल्लेखनीय है कि भूमण्डलीकरण के बावजूद प्रेस, टेलीविजन, राष्ट्रीय प्रसारण जैसे कुछ संस्थान राष्ट्रीय और सांस्कृतिक, परिवेशों में अभी तक जकड़े हुए हैं। **जवरीमल्ल पारख** है– जनसंचार माध्यमों के संदर्भ में समस्या यह है कि इन्हें उपभोक्ता वस्तु मानकर नहीं चला जा सकता है। ये माध्यम ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिनका असर मनुष्य के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ता है। इन बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन का गहरा संबंध राजनीतिक और सामाजिक जीवन से होता है। मनुष्य के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का गहरा असर हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय संरचना पर पड़ता है।

भूमण्डलीकरण में लोगों का बढ़ता प्रवसन शामिल है, राज्यों के भीतर भी और उनसे बाहर भी। संचार नेटवर्क अन्य संस्कृतियों को किसी और जीने के ढंग में तुरन्त ही ढाल देते हैं। वे साँस्कृतिक बहुवाद के उस तन्तु को मजबूत करते हैं, जो उत्तरोत्तर रूप से साँस्कृतिक प्रभुत्व हेतु प्रवृत्तियों का सामना करता है। इसने न सिर्फ परिवारों के परम्परागत स्वरूप को बदला है बल्कि अनेक बहुआयामी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों को जन्म दिया है। आज शहरी परिवारों की बढ़ती सामाजिक–आर्थिक असुरक्षा, वैचारिक सामंजस्य, मानसिक अन्तर्विरोध एवं घोर निराशा को भूमण्डलीकरण के रूप में देखा जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. श्रीवास्तव, डॉ.बलजीत कुमार – **भूमण्डलीकरण का हिन्दी सिनेमा पर प्रभाव : शोध धारा,** (त्रैमासिक), शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थान उरई (जालौन), उ प्र, वर्ष 2012, मार्च, अंक 01, पूर्णांक.24, पृ.-177
2. मिश्र, गिरीश – **निजीकरण के बढ़ते कदम,** नीति मार्ग (पाक्षिक), भोपाल, 30 अप्रैल 2012, वर्ष 14, अंक 14, पृ.40–41
3 मिश्रा, गिरीश – **नव उदारवाद की चहुंमुखी विफलता,** नीति मार्ग (पाक्षिक), भोपाल, 15 जनवरी 2013, वर्ष 14, अंक 20, पृ.-29
4. वही, पृ.-28
5. चौहान, शैलेन्द्र – **दुनिया बदलने की ललक,** इतिहास बोध (त्रैमासिक), अप्रैल–जून 2003, अंक 34, पृ.-58

6 सिंह, के.पी.– **विकासशील अर्थव्यवस्था एवं भूमण्डलीकरण का संकट**, राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा (अर्द्धवार्षिक), समाज विज्ञान विकास संस्थान, चांदपुर (बिजनौर) उ प्र, वर्ष 11, अंक 02, पृ.-24

7. चन्द्रशेखर, सी.पी.– **वैश्वीकरण की चुनौती,** रचना (त्रैमासिक), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, नवम्बर–दिसम्बर 99, अंक 21, पृ.-18

8. सिंह, प्रेम – **उदारीकरण की तानाशाही,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.-91

9. जैन, नीरज – **वैश्वीकरण या पुन: उपनिवेशीकरण**, गार्गी प्रकाशन दिल्ली, 2002, पृ.-134

10. भादुड़ी, अमित एवं दीपक नय्यर – **उदारीकरण का सच,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.-12

11. वही, पृ.-128

12. श्रम की दुनिया की रिपोर्ट –2008– **वित्तीय वैश्वीकरण के युग में आयु में असामनता,** श्रम की दुनिया, (मासिक), आई.एल.ओ.की पत्रिका, अंक 35, अप्रैल 2009, पृ.-52

13. कांत, कृष्ण – **वैश्वीकरण : कारण और परिणाम,** ज्ञान गरीमा सिन्धु (त्रैमासिक), अप्रैल–सितम्बर 2000, नई दिल्ली, संयुक्तांक अंक 02–03, पृ.-84

14. कुमार, विमल – **संपादकीय – वैश्विक परिदृष्य एवं आन्दोलन की दिशा,** सर्वोदय जगत (पाक्षिक), वाराणसी (उप्र), 1–15 अप्रैल 2013, वर्ष 36, अंक 16, पृ.-03

****

मनुष्य के जीवन मे जैव विविधता का महत्व

डॉ. दयाराम साहू *

प्रस्तावना – ज्ञात सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है, जहाँ जीवन संभव है। यहाँ सूक्ष्म पौधों से लेकर विशाल वृक्ष विद्यमान है, तो सूक्ष्म अमीबा से लेकर व्हेल जैसे विशाल प्राणी भी हैं। पृथ्वी पर लगभग दस लाख जीवधारी रहते हैं। इन जीवधारियों में मुनष्य का स्थान सर्वप्रमुख हैं। जीवन का समग्र रूप पृथ्वी की सतह पर एक पतली परत में ही सीमित है, जिसे जीवमण्डल या बायोस्फियर कहते हैं। प्रकृति जीवन के विविध रूपों का एक उलझा जाल है। पर्यावरण के निर्जीव किंतु अभिन्न अंगों मिटटी, जल, वायु आदि एक दूसरे को लगातार प्रभावित करते रहते हैं। प्रकृति ने धरातल, समुद्रों नदियों, झीलों आदि में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और उभयचर, जलचर तथा थलचल जीवों का सृजन किया है। परिस्थितियों को संतुलित बनाए रखने में इनमें से सभी की भूमिका महत्वपूर्ण है।

जैव विविधता अर्थ – जैव विविधता एक स्वत: समस्तवाद है, जिसका अर्थ है–जीवों की विविधता, जैव विविधता के अंतर्गत पौधों, पशुओं और सूक्ष्म जीवों की सभी प्रजातियाँ तथा पारिस्थितिकी और उससे सम्बद्ध समस्त प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। यह पृथ्वी पर जीवन का आधार है। जैव विविधता सामाजिक, नैतिक, साँस्कृतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

जैव विविधता का महत्व – जैव विविधता पशुपालन, कृषि, उद्यानिकी के द्धारा अनाज और ऊर्जा की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते हैं। यह दवाईयों के निर्माण और कागज के निर्माण जैसे बड़े औद्योगिक उत्पादनों में भी सहायक होते हैं। जैव विविधता का सीधा सम्बन्ध आर्थिक मूल्य से भी है, क्योंकि ये सभी उत्पादन कच्चे माल के लिये जैव विविधता पर निर्भर होते हैं। जीवन के उद्‌भव के समय कुछ नई प्रजातियों का बनना और कुछ पुरानी प्रजातियों का समाप्त होना एक सामान्य बात है। पृथ्वी पर जीवन के विकास के समय ये दोनों प्रक्रियाएँ लगभग एक साथ घटित होती है। लेकिन वर्तमान समय में प्रजातियों के घटने की दर नई प्रजातियोके बनने की दर की तुलना में बढ़ती जा रही है। मानव अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जैव विविधता का सबसे अधिक महत्व है, भारत जैसे देश में यहाँ जैव विविधता के माध्यम से बड़ी संख्या में लोग अपना जीवन यापन करते हैं। वर्तमान समय में भी लोग अपने समुदाय एवं अस्तित्व को बनाये रखने के लिए रोजमर्रा की जिन्दगी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरी तरह से प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित है। इसमें भोजन, आवास, तन ढँकने के लिए वस्त्र, घरेलू आवश्यकता की सामग्री, औषधियों, फसलों की वृद्धि में सहायक तत्वों फर्टीलाइजर्स, मनोरंजन आदि शामिल है। जैव विविधता का महत्व निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

- **सौंदर्य बोधक महत्व –** प्रत्येक प्रजाति एवं पारिस्थितिकीय तंत्र पृथ्वी की सुन्दरता एवं वैभव को बढाते हैं कोई भी प्रजाति विलुप्त होने के बाद हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है और विलुप्त हुई कोई भी पारिस्थितिकीय तंत्र को फिर कभी पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के मूल्य की गणना हम प्राकृतिक रूप से सुन्दर स्थानों की सैर करने वाले लोगों की संख्या से कर सकते हैं। यह सुन्दरता उन्हें उस स्थान विशेष को देखने के लिए प्रेरित करती है, किसी व्यस्त क्षेत्र या शहर में स्थित प्राकृतिक स्थल पर आने वाले व्यक्तियों की संख्या से इसके महत्वों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
- **आर्थिक महत्व –** हर प्रजाति एवं स्वस्थ पारिस्थितिकीय प्रणाली मानव के लिए एक विशेष महत्व रखते हैं जीवों का वैश्विक संग्रह, प्रजातियाँ, प्राकृतिक रहवास एवं पारिस्थितिकीय प्रणाली मनुष्य की आवश्यकता को पूरा कर पाती है और मानव के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सहायक होती है। मनुष्य अपनी औषधीय, अनाज तथा अन्य औद्योगिक उत्पादों के निर्माण के लिए आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए जैव विविधता पर निर्भर रहता है।

विकासशील देशों की 80 प्रतिशत जनसंख्या अपनी स्वास्थ्य सम्बंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जैव संसाधनों पर आश्रित है, इसकी पूर्ति पौधों एवं खनिजों के माध्यम से होती है। लगभग बीस हजार पौधों का उपयोग स्वास्थ्य सेवाओं के लिए एक स्त्रोत के रूप में किया जाता है। विकसित देशों में जिन दवाओं के उपयोग की जानकारी दी जाती है उनमें से लगभग एक चौथाई दवायें पौधों पर आधारित उत्पादों से बनी होती है। इनमें से मुख्य रूप से ली जाने वाली दवाएँ है इन दवाओं में फिलापेन्डुला अल्मारिया से बनने वाली एस्पिरिन एवं सिनकोना वृक्ष से मिलने वाली मलेरिया रोधी दवा कुनैन है।

- **उपभोगात्मक महत्व –** प्रकृति में पाये जाने वाले सभी सजीव जीव मनुष्य के लिए अनेक रूप में लाभकारी होते हैं। आदिकाल से ही मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भोज्य पदार्थो, औषधिय, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वाणिज्यिक उपयोग एवं साँस्कृतिक वस्तुओं के लिए जीव–जगत् पर निर्भर है । प्रकृति के द्धारा अनेक जैव पदार्थो को उत्पादित किया जाता है। मनुष्य इन उत्पादित जैव पदार्थो में लकड़ी, घास, चारा, मछली, रेशे, मांस, मोम, शहद, खाद्य पदार्थ आदि का उपभोग करता है। मनुष्य ने अत्यधिक उपयोगी पौधों, प्राणियों एवं इनसे प्राप्त पदार्थो का उपभोग किया है। यह जैव विविधता के उपभोगात्मक उपयोग के मूल्य को प्रदर्शित करता है।

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चौरई, जिला छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

- **उत्पादकीय महत्व –** इस जैव मण्डल में अनेक प्रकार के जैव पदार्थ प्रकृति द्वारा उत्पादित किये जाते हैं। मनुष्य इन जैव पदार्थों का उपयोग उपभोक्ता के रूप में करता है। यह जैव पदार्थ वनों से लकड़ी, फल–फूल, जड़ी–बूटियाँ, लाख, गोंद और कृषि से विभिन्न अनाज, प्राणियों से दूध, मांस, ऊन आदि का उत्पादन होता है। जैव विविधता के कारण ही उत्पादों में विविधता पाई जाती है जो कि पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
- **धार्मिक, आध्यात्मिक एवं साँस्कृतिक महत्व –** भारत देश में जैव विविधता के धार्मिक, आध्यात्मिक एवं साँस्कृतिक के महत्व देखने को मिलते हैं। कई वनस्पतियों एवं जंतुओं का पूजापाठ एवं धार्मिक संस्कारों में विशेष महत्व होता है। काली देवी को चढ़ायें जाने वाले फूल जासौन के और भगवान शिव को चढ़ाये जाने वाले धतूरे के फल को मंगलकारी माना जाता है। कई वनस्पतियों एवं प्राणियों को देवी–देवताओं से जुड़ा होने के कारण पवित्र माना जाता है। कई प्राणियों की प्रजातियों को देवताओं के अधिकारिक वाहन के रूप में पूजा जाता है जैसे शिव के वाहन के रूप में नंदी, गणेश के वाहन के रूप में मूषक और देवी दुर्गा के वाहन सिंह के रूप में पूजा जाता है। समस्त पारिस्थितिकीय तंत्र का साँस्कृतिक और आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। विभिन्न स्थानों पर वनों को देवताओं के स्थान एवं निवास मानकर संरक्षित रखकर पूजा जाता है इस तरह की संस्कृति आज भी सम्पूर्ण देश में देखने को मिलती है। मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों के अपने टोटम (वंश के देवता) होते हैं। वंश विशेष का अपना विशिष्ट टोटम होता है। यह देवता पेड़, स्तनधारी चिड़िया, सरीसृप आदि जीव–जंतु हो सकते हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि उनका उद्भव इन्हीं प्राणियों से हुआ है। इसलिए वे इन प्रजातियों को न कभी छेड़ते और न मारते हैं।
- **नैतिक महत्व –** प्रकृति की जैव विविधता का मानव समाज के लिए महत्वपूर्ण उपयोगी माना जाता है। पौराणिक पुस्तकों, ग्रन्थों, पंचतंत्र, जंगल आदि में जीव–जगत् की नीति कथाओं का विवरण प्रस्तुत है। इन ग्रन्थों में जीवों के माध्यम से जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा को सरल रूप से दर्शाया गया है। वृक्षों के समान दृढता, धन की प्रकृति, हिरन के समान चपलता, शेर के समान निडरता, बगुले के समान एकाग्रता, कुत्ते की स्वामिभक्ति, पक्षियों की चेष्टा आदि वर्तमान समय के मानव समाज के आचरण के लिए प्रतिरूप आदर्श माने जाते हैं। प्रत्येक प्रजाति अपने आप में अद्वितीय है एवं उसे अधिकार है। कि वह फले–फूले और बढ़े। प्रत्येक प्रजाति चाहे वह मानव के लिए उपयोगी हो या नही संरक्षित रहने का समान अधिकार है।
- **प्राकृतिक चक्र में सहायता –** जैव विविधता के कई बहुआयामी लाभ है। सभी हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करते हैं जिसके द्वारा वे वातावरण से कार्बन डाई–ऑक्साइड को अवशोषित कर प्राणदायिनी ऑक्सीजन को उत्सर्जित करते हैं यह प्रक्रिया वातावरण में कार्बन डाई–ऑक्साइड एवं ऑक्सीजन को संतुलन बनाए रखती है। जलीय पौधों की कुछ निश्चित प्रजातियाँ शैवाल एवं जीवाणु प्रदुषित जल में से भारी धातुओं को अलग कर उसें स्वच्छ बनाने कलिए जाने जाते हैं। बहुत से लोग जैव विविधता का आनन्द भ्रमण करके पक्षियों एवं प्राकृतिक दृष्यों को निहारने आदि के द्वारा आनन्द उठाते हैं। पौधे अपने आसपास के वातावरण को शांत एवं मनोरम बनाते हैं। वन अति प्राचीन समय से ध्यान एवं ज्ञान के लिए उपयुक्त स्थल माने जाते हैं।
- **रेशो के महत्व –** कपास, जुट, नारियल के रेशों बांस और अन्य घासें कुदरती रेशों के स्त्रोत है। इनका उपयोग स्थानीय अर्थव्यवस्था और उद्योगो में होता है जैसे रस्सियाँ, कागज, कपड़े बनाने में, निर्माण और पेक करने की सामग्री के लिए बोरों और गिनी बैग बनाने में, गलीचों के अस्तर बनाने में उपयोग किया जाता है वर्तमान समय में इनका उपयोग जिओ–टेक्स्टाइल के रूप में किया जा रहा है रेशों से बने जाल और झंझरी का उपयोग सड़को, नहरों, बाधों, और बंधानों के निर्माण एवं भू–क्षरण और भू–स्खलन से पहाड़ियों की ढ़लानों को बचाने के लिये किया जाता है।
- **जैव ईधन –** भारत की अधिकतर जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है ग्रामीण आबादी आज भी ईधन के लिए लकड़ी पर निर्भर रहती है कच्चे तेल के भण्डार कम होने और कीमते बढ़ने से बायोगैस, बायोडीजल और एथनॉल जैसे ईधन आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते जा रहे है। ये सभी ईधन जैव स्त्रोतों से प्राप्त होते हैं। करंज, जटरोफा, गन्ना, मक्का, बायोडीजल पेदा करने के काम आते हैं। भारत में जैव ईधन के उत्पादन पर्यावरण को हानि पहुँचाये बिना किया जा रहा है।
- **पर्यटन –** जो क्षेत्र जैव विविधता से समृद्धशाली है वहाँ पर्यटन एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि के रूप में भूमिका निभाता है इसमें पर्यटन और उससे सम्बंधित सेवाऐं जैसें होटल और परिवहन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल लोगो की रोजी–रोटी में सहायता मिलती है।

मिट्टी और जल का संरक्षण – वनस्पतियों का आवरण वर्षा के लिए एक कुदरती पोषक का काम करता है और नालों एवं नदियों के बहाव को नियंत्रित करने में सहायक होता है। ज्यादा समय तक पानी और उसके बहाव की गति को रोककर भू–जल को संग्रहण एवं पुन:निर्माण करने में सहायता करता है साथ ही सतह की उपयोगी मिट्टी के आवरण की रक्षा करके जमीन के कटाव को कम करने में भी सहायक होता है।

निष्कर्ष – आम तौर पर यह माना जाता है कि जैसे–जैसे किसी देश की आर्थिक गतिविधियों में बढ़ोतरी होती है या औद्योगिक रफ्तार पकड़ता है, जैव विविधता को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। पर ऐसा भी देखा गया है कि कभी–कभी औद्योगिक और मशीनीकरण से जैव विविधता की रक्षा भी हो जाती है। आज हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, अगर उससे हजारों बरस पहले के मानवीय रहन–सहन पर नजर दौड़ाएं, तो हमें एक ऐसी दुनिया नजर आती है जहाँ लोगों की भागम–भाग वाली दिनचर्या कतई नहीं थी। तब का आदमी काफी सुकून में नजर आता है। हाँ, अगर कोई चिंता थी तो वह भरण–पोषण की थी क्योंकि पेट उसके पास तब भी था जैसा कि आज है। हर रोज उसका आधे से अधिक समय भोजन के बंदोबस्त में बीतता था। भोजन का व्यवस्था खेती और वनों से होती थी। कालानुक्रम में वह आदिमानव खानाबदोश न होकर एक सभ्य समाज का नागरिक बन गया और मिट्टी के घरोमें निवास करने लगा तथा पका–पकाया भोजन करने लगा। भोजन पकाने के लिए लकड़ी का इस्तेमाल होता था और लकड़ी की व्यवस्था पेड़ों की कटाई–छँटाई करके पूरी की जाती थी।

जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ने लगी, वैसे–वैसे भोजन और आवास की जरूरत भी बढ़ने लगी। ज्यादा पेटो के लिए ज्यादा भोजन पकाना पड़ता था। ज्यादा भोजन पकाने के लिए ज्यादा लकड़ी की आवश्यकता होती थी और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए पहले से कहीं ज्यादा पेड़ काटने पड़ते थे। अधिक पेड़ कटने से जहाँ पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ने लगा, वहीं ज्यादा लकड़ी जलने से वायुमंडल में कार्बन डाई–ऑक्साइड जैसे गैसें दिन व दिन बढ़ने लगीं।

उन दिनों सीमेंट, सरिया जैसी निर्माण सामग्री की ईजाद नहीं हुई थी। लोग मिट्टी के घरों में रहते थे जिनकी छत, लेंटर, दरवाजा, किवाड़ों आदि के निर्माण में लकड़ी की काफी खपत होती थी और इसके लिए मोटे और सीधे तने वाले पेड़ों की कुर्बानी प्राथमिकता के आधार पर दी जाती थी। आवास की बढ़ती जरूरत ने इस प्रयोजन हेतु लकड़ी की आवश्यकता को और भी बढ़ा दिया जिसके कारण पेड़ों पर होने वाले हमले अब और भी धारदार हो गए थे।

मनुष्य सृष्टि की शुरूआत से ही अनुसंधानप्रिय प्राणी रहा है। अपनी खोजी प्रवृत्ति के कारण इस बीच उसने पत्थर के कोयले को ढूँढ़ निकाला। काठ के ईंधन के मुकाबले पत्थर के कोयले में आँच बहुत तेज होती थी, जो न केवल भोजन को जल्दी पकाने में मदद करती थी अपितु औद्योगिक भट्टियों के लिए भी यह बेहद उपयुक्त थी। दूसरे कम जगह में ज्यादा ईधन स्टोर हो जाता था। हालांकि, पत्थर के कोयले के प्रयोग से कार्बन डाई-ऑक्साइड जैसी गैसों के उत्सर्जन में बहुत कमी नहीं आई, परंतु इसके चलते ईंधन के लिए पेड़ों की कटाई पर कुछ रोक जरूर लगी। पत्थर के कोयले की खोज के बाद बारी आई डीजल, केरोसिन जैसे तरल ईंधन की। इस तरह के तरल ईंधन से मनुष्य के लिए भोजन पकाना और आसान हो गया तथा धीरे-धीरे चूल्हे, अँगीठी की जगह स्टोव नजर आने लगे। स्टोव से होने वाला प्रदूषण लकड़ी अथवा कोयले के मुकाबले कम था और लोग अब छोटे-छोटे कमरों के अंदर भी भोजन पका सकते थे। हाँ, स्टोव जलने से थोड़ा ध्वनि प्रदूषण जरूर होता था। पर मनुष्य का अनुसंधान रूपी रथ यहीं नहीं रूका और उसने एलपीजी, एलएनजी, इलेक्ट्रिक हीटर, माइक्रोवेव, सोलकुकर जैसी तमाम चीजें खोज डालीं जिनसे न केवल भोजन फटाफट तैयार करने में मदद मिली, अपितु प्रदूषण पर भी कारगर लगाम लगी।

अब जरा कल्पना करें कि यदि आज बिजली, एलपीजी, एलएनजी जैसी चीजों का आविष्कार न हुआ होता तो क्या हमारे जंगल देश की 125 करोड़ की आबादी की ईंधन की जरूरत को पूरा कर पाते? मान लो यदि पूरा भी कर पाते, तो आखिर कितने दिनों तक? वर्ष 2010 में स्पेन के मैड्रिड शहर में आयोजित वर्ल्ड एलपीजी फोरम की बैठक में प्रस्तुत आकड़ों के मुताबिक अमेरिका, चीन और जापान के बाद भारत दुनिया का चौथा सबसे बड़ा एलपीजी उपभोक्ता है। हमारे यहाँ 115 मिलियन से अधिक गैस कनेक्शन हैं और हर साल तकरीबन 900 मिलियन गैस सिलिंडर की आपूर्ति होती है। अगर गैसे से इतने अधिक चूल्हे भट्टियाँ न जल रही होती तो न जाने कितनी लकड़ी अब तक स्वाहा हो चुकी होती और न जाने कितना प्रदूषण आसमान को आच्छादित कर चुका होता। उसी प्रकार अगर आज भी मनुष्य मिट्टी के घरों में रह रहा होता और सीमेंट, सरिया, कंक्रीट, फाइबर जैसे पदाथोको तैयार करने वाली बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ न लगी होती तो छत पाटने, लिंटर डालने अथवा गेट बनाने में न जाने कितने टन लकड़ी खप गई होती। ओर तो ओर, सीमेंट सरिया, कंक्रीट के अभाव में बहुमंजिली इमारतों फ्लैट सिस्टन होता तो भारत की 125 करोड़ की आबादी को निवास करने के लिए बहुत अधिक जमीन की आवश्यकता पड़ती और यह आवश्यकता वनों को उजाड़े बगैर कतई पूरी नहीं होती।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. इंडियन सोसायटी और एग्रीविजनेस प्रोफेशनलस भोपाल- वनोपजों का प्रबंधन एवं जैव विविधता संरक्षण।
2. आओं जाने जीव जगत को - मध्यप्रदेश राज्य जैव विविधता बोर्ड, प्रथम तल किसान भवन, अरेरा हिल्स, भोपाल।
3. हमारी थाती हमारे बारानाजा, हमारी जैव विविधता, मध्यप्रदेश राज्य जैवविविधता बोर्ड, प्रथम तल किसान भवन, अरेरा हिल्स, भोपाल।
4. जैव विविधता एक साझा सरोकार, मध्यप्रदेश राज्य जैव विविधता बोर्ड, प्रथम तल किसान भवन, अरेरा हिल्स, भोपाल।
5. ग्रीन इकोनॉमी अर्थव्यवस्था अवलोकन धनकर पब्लिकेशनस् प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ।
६. जैव विविधता अधिनियम एवं नियम (राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक) मध्यप्रदेश राज्य जैव विविधता बोर्ड, भारत का राजपत्र प्राधिकार से प्रकाशित नई दिल्ली।
7. मध्यप्रदेश राज्य जैव विविधता बोर्ड, जैव विविधता एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग वल्लभ भवन, भोपाल, मध्यप्रदेश राजपत्र प्राधिभार से प्रकाशित।
8. जैव विविधता प्रबंधन समितियों के कर्तव्य - मध्यप्रदेश राज्य जैव विविधता बोर्ड, भोपाल।
9. मोगली बाल उत्सव।

****

आर्थिक विकास में कृषि जैव विविधता का महत्व

डॉ. दयाराम साहू *

प्रस्तावना – कृषि जैव विविधता का अर्थ जैविक खेती से है। जिसमें आनुवंशिक संसाधन, पर्यावरण, प्रबंधन और प्रभावों को शामिल किया जाता है जो किसानों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है यह प्राकृतिक चयन और मानव सदियों से अधिक विकसित आविष्कारशील का परिणाम है विविधता और परिवर्तशीलता पशुओं, पौधों, और सूक्ष्म जीवों ये कृषि जैव विविधता के व्यापक शब्द हैं। आज वर्तमान समय में मानव कृषि कार्य में रासायनिक खाद का प्रयोग करके अपनी खेती की उर्वरा शक्ति को कम करते जा रहा है एवं उत्पादन की क्षमता भी कम होती जा रही है। भारत वर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। इसलिए मध्यप्रदेश राज्य में जैव विविधता कृषि विभाग द्वारा कृषि कार्य रसायनिक खाद की अपेक्षा जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे खेती की उर्वरा शक्ति भी बनी रहे और उत्पादन अधिक मात्रा में हो। हरित क्रांति के समय बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। अधिक उत्पादन से खेती में अधिक मात्रा में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटशनक का उपयोग करना पड़ता है जिससे सामान्य व छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही है और जल, भूमि, वायु और वातावरण प्रदूषित हो रहा है। साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहें हैं। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिए गत वर्षो से लगातार टिकाऊ खेती के सिद्धांत पर खेती करने की सिफारिष की गई, जिसे प्रदेष के कृषि विभाग एवं जैव विविधता बोर्ड ने इस विशेष प्रकार की खेती को अपनाने के लिए बढ़ावा दिया जिसे हम जैविक खेती के नाम से जानते है। राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार की खेती करने के लिए प्रचार-प्रसार किया जा रहा है।

सम्पूर्ण विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या है, बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की रासायनिक, जहरीलें कीटनाषकों का उपयोग, प्रकृति के जैविक और अजैविक पदार्थो के बीच अदान-प्रदान के चक्र को प्रभावित करता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति खराब हो जाती है। साथ ही वातारवण प्रदूषित होता है तथा मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट आती है। प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकूल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थो के बीच आदान-प्रदान का चक्र चलता रहता था। जिसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु एवं वातावरण प्रदूषित नही होते थे।

भारत वर्ष में प्राचीन काल में कृषि के साथ-साथ गौ पालन का भी कार्य किया जाता था, जिसके प्रमाण हमारे ग्रन्थों में प्रभु कृष्ण और बलराम है, जिन्हें हम गोपाल और हलधर के नाम से संबोधित करते है। अर्थात् कृषि एवं गोपालन संयुक्त रूप से अत्यधिक लाभदायी था, जो कि प्राणी मात्र व वातावरण के प्रति अत्यन्त उपयोगी था परन्तु बदलते परिवेश में गोपालन धीरे-धीरे कम होते गये तथा कृषि में विभिन्न प्रकार की रासायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग होने लगा। जिसके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थो के चक्र का संतुलन बिगड़ता जा रहा है और वातावरण प्रदूषित होकर मानव जाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। अब हम रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर जैविक खादों एवं दवाईयों का उपयोग कर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है। जिससे भूमि, जल एवं वातावरण षुद्ध रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ्य

कृषि जैव विविधता के प्रकार :

- **खाद्य और कृषि के लिए आनुवांशिक संसाधन –** कृषि के उत्पादन के लिए मुख्य इकाईयों का गठन जंगली पौधों को काटना, भोजन के लिए प्रबंध करना, खेतो, चराई और पालतू प्रजातियों के जंगली रिश्तेदारी को शामिल किया जाता है। पालतु जानवरों सहित पषु अनुवांशिक संसाधन, जंगली जानवरों के भोजन के लिए षिकार आदि अनुवांशिक संसाधन के अन्तर्गत आते है।
- **जैव विविधता के उपकरणों का समर्थन –** कृषि जैव विविधता कृषि की पारिस्थितिकी तंत्र की सेवा पर आधारित है। कृषि जीवों के योगदान के लिए पोषक तत्व, साइकिल चालन, कीट और रोग विनियमन, प्रदूषण, परागण और तलछट विनियमन, जल चक्र के रखरखाव, कटाव नियंत्रण और जलवायु विनियमन और कार्बन को शामिल किया जाता है।
- **प्रभाव –** स्थानीय जलवायु, शारीरिक संरचना, पारिस्थिति की प्रणालियाँ जो कृषि जैव विविधता के निर्धारण पर प्रभाव छोड़ती है।
- **सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक –** सामाजिक, आर्थिक और साँस्कृतिक घटकों में कृषि जैव विविधता का विशेष योगदान है। मानव गतिविधियों और प्रबंधन के नियमों को बनाए रखना, लोगों की एक बड़ी संख्या में टिकाऊ आजीविका के लिए योगदान, पारंपरिक और स्थानीय ज्ञान, सांस्कृतिक कारको और भागीदारी प्रक्रिया के रूप में कृषि परिदृष्य के साथ जुड़े पर्यटन भी शामिल है।

कृषि जैव विविधता का महत्व – मानव अस्तित्व को बनाये रखने एवं सुखी पूर्वक जीवन निर्वाह करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ कृषि जैव विविधता से ही प्राप्त होती है जैसे-कपड़े के लिए कपास, आश्रय और ईंधन के लिए लकड़ी, पौधो और दवाओं के लिए जड़ी, आय एवं आजीविका निर्वाह के लिए खेती से प्राप्त होता है। कृषि जैव विविधता से मानव को भोजन के लिए

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चौरई, जिला छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

कच्चा माल, मृदा एवं जल संरक्षण, मिट्टी की उर्वरता और बायोटा के रखरखाव और परागण प्राप्त होते हैं। इसलिए आज के वर्तमान दौर में कृषि जैव विविधता का विशेष महत्व हो गया है।

जैव विविधता कृषि का आधार है लगभाग दस हजार वर्ष पहले खेती का कार्य प्रारम्भ किया गया था। उस समय जैव विविधता सम्पन्न थी। जैव विविधता से फसलें और पालतू पशुओं की प्रजातियों की उत्पत्ति हुई है और ये सब जैव विविधता के अन्दर है। यह पारिस्थितिकी तंत्र के लिए कृषि और मानव को बनाए रखने के लिए आवश्यक सेवाओं की नीव है। आज की फसल और पशु धन जैव विविधता कृषि के लिए महत्वपूर्ण है, कृषि भी जैव विविधता के संरक्षण और स्थायी उपयोग के लिए योगदान देती है। टिकाऊ कृषि दोनो को बढ़ावा देती है। जैव विविधता के रखरखाव से भोजन, कृषि उत्पादों के लगातार उपयोग, खाद्य सुरक्षा पोंषण और आजीविका के लिए आवश्यक होती है। इसके अतिरिक्त कृषि जैव विविधता की आनुवांशिक विविधता बदलते पर्यावरण के लिए अनुकूल है जलवायु परिवर्तन में इसका विशेष रूप से योगदान रहता है। कृषि जैव विविधता के महत्व का सामाजिक रूप से योगदान रहता है। कृषि जैव विविधता के महत्व को सामाजिक, साँस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय तत्वों में शामिल किया जाता है जो लगातार नई चुनौतियों का सामना करने एवं उसे बनाए रखने और लगातार बदलती परिस्थितियों के आधार पर उत्पादकता में वृद्धि से मानव प्रबंधन में विशेष योगदान होता है।

कृषि जैव विविधता से होने वाले लाभ :

- **कृषकों की दृष्टि से लाभ –** भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है एवं सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है रासायनिक खाद् पर कम निर्भरता होने से उत्पादन लागत में कमी आती है जिससे फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- **मिट्टी की दृष्टि से लाभ –** जैविक खाद के उपयोग से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है, भूमि की जलधारण की क्षमता में वृद्धि होती है एवं भूमि में पानी का वाश्पीकरण कम होता है।
- **पर्यावरण की दृष्टि से लाभ –** भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है, मिट्टी खाद् पर्दाथ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदुषण में कमी आती है, कचरे के उपयोग खाद् बनाने, फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय बजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता में खरा उतरना।

कृषि जैव विविधता (जैविक खेती) के विकास की विधियाँ – जैविक खेती, रासायनिक खेती की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है अर्थात जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णत: सहायक होती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक होती है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है इसके साथ ही कृषक भाईयों को आय अधिक होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उतरते है। जिसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक भाई अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है। आधुनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण प्रदूषण, भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है यह मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नितान्त आवष्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हो, शुद्ध वातावरण रहे एवं पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती की कृषि विधियों को अपनाना चाहिए जो कि हमारे नैसार्गिक संसाधनों एवं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बगैर समस्त जनमानस को खाद्य सामग्री उपलब्ध हो सके एवं हम खुशहाल जीवन जी सके।

- **नाडेप –** इस विधि का उपयोग सर्वप्रथम ग्राम पूसर जिला यवतमाल महाराष्ट्र के नारायण देवराव पण्डरी पाण्डे के द्वारा किया गया था इसलिए इसे नाडेप कहते है। इस विधि में कम से कम गोबर का उपयोग करके अधिक मात्रा में अच्छी खाद तैयार की जा सकती है। टांके भरने के लिए गोबर कचरा और बारीक छनी हुई मिट्टी की आवष्यकता होती है। जीवांश को 90 से 120 दिन पकाने में वायु संचार प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा उत्पादित की गई खाद में प्रमुख रूप से 0.5 से 1.5 प्रतिशत नत्रजन, 0.5 से 0.9 प्रतिशत स्फुर एवं 1.2 से 1.4 प्रतिशत पोटाश के अलावा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते है। निम्न प्रकार से नाडेप टांके से नाडेप कम्पोस्ट तैयार किया जाता है।
- **पक्का नाडेप –**पक्का नाडेप ईंटों के द्वारा बनाया जाता है नाडेप टांके का आकार 10 फीट लम्बा, 6 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊँचा बनाया जाता है। ईंटों को जोड़ते समय तीसरे, छटवे एवं नवें रद्दे में मधुमक्खी के छत्ते के समान 6'7 के ब्लाक या छेद छोड़ दिये जाते है जिससे टांके के अन्दर रखे पदार्थ को बाह्य हवा मिलती रहे। इससे एक वर्ष में एक ही टांके से तीन बार खाद तैयार किया जा सकता है।
- **कच्चा नाडेप भू-नाडेप –** कच्चा नाडेप परम्परागत तरीके के विपरीत बिना गड्ढा खोदे जमीन पर एक निश्चित आकार 12 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा एवं 3 फीट का लेआउट देकर व्यवस्थित ढेर बनाया जाता है। इसकी भराई नाडेप टांके के अनुसार की जाती है। इस प्रकार लगभग 5 से 6 फीट तक सामग्री जम जाने के बाद एक आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारो ओर से गीली मिट्टी एवं गोबर से लीप कर बंद कर दिया जाता है। बंद करने के बाद तीसरे दिन जब गीली मिटटी कुछ कड़ी हो जाए तब गोलाकार या आयताकार टीन के डिब्बे से ढेर की लम्बाई व चौड़ाई में 9-9 इंच पर 7-8 इंच के गहरे छिद्र बनाये जाते है। छिद्रो से हवा का आवागमन होता है और आवश्यकता पड़ने पर पानी भी डाला जा सकता है, ताकि बायोमास में पर्याप्त नमी रहे और विघटन क्रिया अच्छी तरह से हो सके। इस तरह से भरा बायोमास 3 से 4 माह के भीतर भली-भांति पक जाता है एंव अच्छी तरह से पकी हुई भुरभुरी दुर्गध रहित भुरे रंग की उत्तम गुणवत्ता की जैविक खाद तैयार हो जाती है।
- **टटिया नाडेप –**टटिया नाडेप भी भू-नाडेप की तरह होता है लेकिन इसमें आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारो ओर से लेप देने की जगह इसे बांस, बेशरम की लकड़ी एवं तुअर के डंठल आदि से टटिया बनाकर चारो ओर से बंद कर दिया जाता है। इसमें हवा का आवागमन स्वाभाविक रूप से छेद होने के कारण अपने आप ही होता रहता है।
- **नाडेप फास्फो कम्पोस्ट –**यह नाडेप के समान ही कम्पोस्ट खाद तैयार की जाती है अंतर केवल इतना रहता है कि इसमें अन्य सामग्री के साथ राख फास्फेट का उपयोग किया जाता है, जिसके फलस्वरूप कम्पोस्ट में फास्फेट की मात्रा बढ़ जाती है। प्रत्येक परत के ऊपर 12 से 15 किलो राख फास्फेट की परत बिछाई जाती है। शेष परत दर परत पक्के नाडेप टांके के अनुसार ही टांके की भराई की जाती है और गोबर मिट्टी से लीप कर सील कर दिया जाता है। एक टांके में लगभग 150 किलों राख फास्फेट की आवश्यकता होती है।

- **पिट कम्पोस –** इस विधि को सर्वप्रथम 1931 में अलबर्ट हावर्ड और यशवंत बाड ने इन्दौर में प्रयोग किया था इसे इन्दौर विधि के नाम से भी जाना जाता है इस पद्धति में कम से कम 9-5-3 फीट व अधिक से अधिक 20-5-3 फीट आकार के गड्डे बनाए जाते है। इन गड्डो को 3-6 भागों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार हिस्से का आकार 353 फीट का लगभग होता है प्रत्येक हिस्से को अलग-अलग भर दिया जाता है एवं अंतिम हिस्सा खाद पलटने के लिए छोड़ दिया जाता है।
- **नाडेप तैयार करने की विधि –** खाद सामग्री एकत्रित करने के पश्चात् आचार डालने की तर्ज पर नाडेप पद्धति खाद सामग्री एक ही दिन में या ज्यादा से ज्यादा 48 घंटे में पूरी तरह से टांकों में भरकर सील कर दिया जाता है।
- टांका भरने से पहले टांके के अन्दर की दीवार एवं फर्श को गोबर व पानी के घोल से अच्छा गीला कर दिया जाता है।
- सर्वप्रथम वानस्पतिक पदार्थ कचरा, डंठल, टहनियां, पत्तियां आदि पूरे टांके में छः इंच की ऊँचाई तक भर दिया जाता है। इस 30 घनफीट में 100 से 110 किलों वानस्पतिक सामग्री डाली जाती है। इस परत में उसे 4 प्रतिशत नीम या पलाश की हरी पतियां मिला दिया जाता है। जिससे दीमक पर नियंत्रण होता है।
- इसके पश्चात् गोबर का घोल 125 से 150 लीटर पानी में 4 किलों गोबर मिलाकर पहली परत के ऊपर इस तरह छिड़क दिया जाता है। कि पूरी वानस्पतिक सामग्री अच्छी तरह से भीग जाए। गर्मी में पानी की मात्रा अधिक रखी जाती है।
- तीसरी परत में भीगी हुई दूसरी परत के ऊपर साफ छनी हुई मिट्टी 50 से 60 किलों के लगभग समान रूप से बिछा दिया जाता है। परतों को इसी क्रम में टांके को उसके मुँह से 1.5 फीट ऊपर तक खोपड़ीनुमा आकार से भरते है। सामान्यत: 11 से 12 परतों में टांका भर जाता है। टांका भरने के बाद टांका सील करने के लिए 3 इंच मिट्टी की परत जमा कर गोबर से लीप देते है। 15 से 20 दिन के बाद टांके में भरी सामग्री सिकुड़ कर 8-9 इंच नीचे चली जाती है। तब पहली भराई की तरह ही सामग्री को भर कर सील कर दिया जाता है।

सावधानियाँ – नाडेप कम्पोस्ट को पकने के लिए 90 से 120 दिन लगते है। इस दौरान नमी बनी रहने देने के लिए एवं दरारे बंद करने के लिए गोबर पानी का घोल छिड़कते रहना चाहिए। घास आदि उगे तो उसे उखाड़ दे एवं कड़ी धूप हो तो घास-फूस से छापा कर दे।

निष्कर्ष – कृषि जैव विविधता का दोहन भविष्य की कार्य योजना बनाकर किया जाना चाहिए जो हमारी आने वाली पीढियों के लिए बनी रहे, कृषि जैव विविधता और परिस्थितिकीय तंत्र द्वारा जो सेवाये उपलब्ध कराई गई है उनमें आपसी सामंजस्य होना चाहिए जैव विविधिता पर कृषि प्रणालियों और प्रथाओं का प्रत्यक्ष रूप से दोहन होना चाहिए ताकि भविष्य में सकारात्मकता बनी रहे, उत्पादान में वृद्धि करने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग न करते हुए जैविक खादों का प्रयोग किया जाना चहिए जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहे एवं उपयोग किया गया खाद पदार्थो से बीमारियों से दूर रहा जा सकता है।

जैव विविधता बोर्ड को उद्यानिकी जैव विविधता के बारे में लोगो को जानकारी प्रदान करनी चाहिए ताकि लोग उद्यानिकी की खेती करके अधिक से अधिक लाभ कमा सके उद्यानिकी जैव विविधता में कीट नाशक दवाओं, रासायनिक खादों का प्रयोग न करते हुए जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए जिससे अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त हो सके। उद्यानिकी में विदेशी प्रजाति के स्थान पर देशी प्रजाति का उपयोग अधिक मात्रा में किया जाना चाहिए जिससे मूल प्रजाति बनी रहे उद्यानिकी कार्य करते समय विभिन्न प्रजाति का रोपण न करते हुए अधिक आर्थिक महत्व देने वाली प्रजाति का रोपड़ करना चाहिए।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में पशुपालन की विविधता को अधिक मात्रा में देखने को मिलती है राज्य सरकार एवं जैव विविधता बोर्ड द्वारा पशुपालको को पशुओं के बारे में जानकारी देना चाहिए, पशुपालकों को पशु पालन में रूचि पैदा करनी चाहिए अच्छे किस्म के पशुओं की व्यवस्था बेरोजगार युवाओं एवं भूमि हीन मजदूरों के लिए पशुओं के ऋण सम्बंधी सुविधा प्रदान करनी चाहिए, बोर्ड द्वारा अन्य महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में किया जाना चाहिए ताकि लोग अपनी आर्थिक आय में वृद्धि कर सके

हमारे देश में कृषि उत्पादन में टिकाउ वृद्धि के लिए मिट्टी की जैव विविधता का सही प्रबंधन किया जाना चाहिए। आधुनिक कृषि प्रणाली में रासायनिक खादों, खरपतवारों एवं जीवनाशियों का प्रयोग जैविक खेती के रुप करना चाहिए। मिट्टी एक सजीव माध्यम है जो असंख्य जीवित प्रजातियों से बनता है। जिसमें सूक्ष्म जीवाणु, फफूँद, अलगी, एक्टिनोमाइसिटस, प्रोटोजोंआ तथा बड़े प्राणियों में केचुआँ है। मिट्टी की जैव विविधता मिट्टी में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को प्रभावित करती है इसलिए मिट्टी पर पनपनें वाली विभिन्न वनस्पतियों के अंकुरण से लेकर उत्पादन तक बढ़ोत्तरी को प्रभावित करती है।

कृषि की जैव विविधता फसलों के उत्पादन को सीधे प्रभावित करती है। क्योंकि मिट्टी का यह जीवाष्म कृषि में आवश्यक पोषक तत्वों को परिवर्तित करके फिर उपलब्ध करवाता है। कृषि की इस जैव विविधता से कृषि में पानी सोखने की क्षमता बढ़ जाती है। जिससे भूमि पर सतह से बहने वाले पानी में कमी आती है। और भूमि का कटाव भी रूकता है। कृषि में जैव विविधता को बढ़ाने के लिए कृषि में नियमित रूप से पौध रोपण होना चाहिए और इस पौध रोपण में भी विविधता होनी चाहिए। कृषि में लगाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के पौधें मिट्टी में भी अधिक जैविक विविधता लाते हैं। मिट्टी में अच्छी जैव विविधता कायम रखने के लिए फसल चक्र अपनाना चाहिए। मिट्टी में रसायनिक खादों, खरपतवारों व जीवनाशियों का प्रयोग कम करना चाहिए। जैविक खादों व जैविक जीवनाषियों के प्रयोग से मिट्टी की जैव विविधता में बढ़ोत्तरी होती है। जैविक खादों में किसान गोबर की खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, हरी खाद, जीवाणुओं जैसे ऐजोटोबेक्टर, एजोसपाई, रिलयम व रहाई जोवियम पर आधारित खादों तथा पौधों के बेकार अवशेषों से बनने वाली खादों का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ नीम की खली के उपयोग से भी मिट्टी की उर्वरा शक्ति और जैव विविधता में बढ़ोत्तरी होती है। रसायनिक खरपतवारों के स्थान पर नाशी कीटों और वन्य रोगाणुओं पर आधारित खरपतवारों का प्रयोग करना चाहिए। कृषि में जैव विविधता को बढ़ावा देने के लिए स्थान विषेष के लिए मिट्टी में विशेष उपयोगी केचुओं की किस्मों को भी डाला जाना चाहिए। केचुएँ भूमि में कई पोषक तत्व, वृद्धि नियामकों के साथ-साथ जैव विविधता में भी वृद्धि करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. तिवारी, ज्वालाप्रसाद – औषधीय पौधे कृषि एवं उपयोग, अभिनव पकाशन जबलपुर (2004)

2. श्रीवास्तव, श्यामसुन्दर – कृषि वानिकी, सेन्ट्रल बुक हाउस, सदर बाजार, रायपुर (1995)
3. नवाज, आर.– कृषि वानिकी एवं जलवायु परिवर्तन, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर (2008)
4. जैविक खेती (प्राकृतिक एवं टिकाऊ खेती) किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, भोपाल।
5. जैविक खेती, मध्यभारत कृषक भारती, राष्ट्रीय कृषि त्रैमासिक पत्रिका।
6. मध्यप्रदेश की जैविक कृषि नीति, किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, भोपाल।
7. www.agrobiodiversity.com
8. www.internationalbiodivesityprogram.com
9. www.whatisagriculturebiodiversity.com
10. www.agriculturebiodiversityproblem.com
11. wwww.mpagriculturebiodiversityarea.com

****

कोल इण्डिया लिमिटेड में प्रशिक्षण की भूमिका

डॉ. दीपचंद भावंरकर *

शोध सारांश – आधुनिक समय में कोयला उत्खनन कार्य एक महत्वपूर्ण क्रिया कलाप का रूप ले चुका है उष्मा एवं ऊर्जा एवं ऊर्जा के उत्पादन के लिए लगभग सभी उद्योग कोयले का उपयोग करते हैं इस्पात सीमेन्ट फर्टिलाइजर तथा रेलवे जैसे आधारभूत एवं महत्वपूर्ण उद्योग भारी मात्रा में कोयले का उपयोग करते हैं। पेट्रोल तथा अन्य खनिज तेलों की दुर्लभता तथा मँहगाई से उत्पन्न तेल संकट ने समाज को ईंधन तथा ऊर्जा के लिए कोयले का सहारा लेने के लिए बाध्य कर दिया बढ़ती हुई माँग के कारण कोयले के नये भण्डारों के दोहन के लिए सुव्यवस्थित एवं संयुक्त प्रयास किये जा रहे है। उत्पादन की नई तकनीक तथा वैज्ञानिक तरीके से उत्पादन प्रारम्भ किया जा चुका है कोयले के उत्पादन को प्रति वर्ष बढ़ाया जा रहा है कोयला जैसी मूल्यवान वस्तु की बरबादी रोकने के लिए भी प्रयास किये जा रहे है। आगे आने वाले युग में भी कोयला ऊर्जा के आधार भूत स्त्रोतों के रूप में आधुनिक सभ्यता पर अपना अधिपत्य बनाये रखेगा। यह माना जाता है कि कोयला भारत के औद्योगीकरण की गति को निर्धारित करेगा। और साथ ही उसकी आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करेगा।

प्रस्तावना – श्रम सृष्टि का मूल है। किसी भी देश के आर्थिक विकास में मानव संसाधन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्राकृतिक सम्पदा की प्रचुरता से सम्पन्न देश का पर्याप्त एवं कुशल मानव संसाधन के अभाव में मनोवांछित प्रगति नहीं की जा सकती है। आर्थिक विकास करोड़ों व्यक्तियों की शक्तियों, गुणों व व्यक्तिगत लगाव के उपयोग पर निर्भर होता है। मानव संसाधन का एक अद्वितीय लक्षण यह है कि यह संसाधन अपने इनपुट से अधिक आउट पुट दे सकता है यदि इसका कुशल प्रबंधन किया जाए। यह लक्षण उत्पादन हेतु आवश्यक अन्य संसाधनों में नहीं पाया जाता है अन्य संसाधन समय बीतने के साथ अवमूल्यन की ओर अग्रसर हो जाते हैं जबकि मानव संसाधन समय बीतने के साथ और कुशल तथा अनुभवी होकर मूल्यवान हो जाता है।[1] कुशल मानव संसाधन किसी भी औद्योगिक संस्था की वास्तविक सम्पत्ति होती है। कुशल मानव संसाधन के द्वारा ही वर्तमान समय में सफलता के शिखर तक पहुँचा जा सकता है। क्योंकि एक प्रशिक्षित श्रमिक ही प्रस्तावित कार्य को कुशलता पूर्वक कम समय में निष्पादित कर सकता है। औद्योगिक संस्था के लक्ष्यों की पूर्ति श्रमिकों पर निर्भर करती है। इसलिए श्रमिक को किसी उद्योग में लगानें में लिए सबसे पहला कार्य श्रमिकों की भर्ती करना तथा प्रषिक्षण देना होता है। आप किसी व्यक्ति को एक मछली देंगे तो वह उसे खाकर स्वंय का पेट भर लेगा किन्तु उसे मछली पकड़ने के कार्य में प्रशिक्षित करेंगे तो वह पूरे परिवार का पेट भर लेगा।[2] उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती करने में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है तथा प्रशिक्षण के दौरान भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण दिये जाते हैं सरकार की राष्ट्रीय ऊर्जा नीति के तहत भारत की कोयला खानों को 1970 के दशक में दो चरणों में पूर्ण रूप से राष्ट्रीय नियंत्रण में लिया गया। कोकिंग कोयला खान (आपात काल प्रावधान) अधिनियम 1971 सरकार द्वारा 16 अक्टूबर 1971 को लागू किया गया, जिसके तहत इस्को, टिस्को और डी.बी.सी. के कैप्टिव खानों के अलावा भारत सरकार ने सभी 226 कोकिंग कोयला खानों का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया और उसे मई 1972 को राष्ट्रीयकृत कर दिया। इस प्रकार भारत कौकिंग कोल लिमिटेड बना था इसके अलावा 31 जनवरी 1973 को कोयला खान (प्रबंधन का हस्तांतरण) अध्यादेश 1973 लागू कर केन्द्रीय सरकार ने सभी 711 नान कौकिंग कोयला खानो का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया। राष्ट्रीयकरण के अगले चरण में मई 1973 से इन खानो को राष्ट्रीयकृत किया और इन नॉन–कोकिंग खानों का प्रंबधन करने के लिये एक सार्वजनिक क्षेत्र की कोयला खान प्राधिकरण लिमिटेड नामक कंपनी का गठन किया गया था। दोनो कम्पनियों का प्रबंधन करने के लिये कोल इण्डिया लिमिटेड के रूप में एक औपचारिक नियंत्रक कम्पनी का गठन नवम्बर 1975 में किया गया।[3]

कोयला उत्पादक कम्पनियाँ –

1. ईस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड (ई.सी.एल.) सैक्टोरिया, पं. बंगाल।
2. भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (बी.सी.सी.एल.) धनबाद, झारखण्ड।
3. सेन्ट्रल कोल फील्ड लिमिटेड (सी.सी.एल.) रॉची झारखण्ड।
4. साउथ ईस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड (एस.ई.सी.एल.) बिलासपुर, छत्तीसगढ़।
5. वेस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड (डब्ल्यू.सी.एल.) नागपुर,, महाराष्ट्र।
6. नार्दन कोल फील्ड लिमिटेड (एन.सी.एल.) सिंगरौली, म.प्र.।
7. महानदी कोल फील्ड लिमिटेड (एम.सी.एल.) संबलपुर, ओड़ीसा।
8. कोल इण्डिया अफ्रीकाना लिमिटाडा, मोजाम्बिक।
9. सेन्ट्रल माइन प्लानिंग एण्ड डिजाइन इंस्टिट्यूट लिमिटेड (सी.एम.डी.आई.एल.) रॉची, झारखण्ड। परामर्श कम्पनी है।

पिछले तीन सालों से लगातार सी.आई.एल. ने अपने समझौता ज्ञापन जो प्रमुख भौतिक और वित्तीय मानदण्डों के निष्पादन मूल्यांकन के लिये सरकार और सी.आई.एल. प्रबंधन के बीच आपसी सहमति से करार किया था, के अन्तर्गत उत्कृष्ट रेटिंग का दर्जा हासिल किया है।

कोल इण्डिया लिमिटेड का प्रमुख उद्देश्य उपलब्ध मानव संसाधन को विकसित करना और साथ ही साथ औद्योगिक प्रगति एवं मानव शक्ति के विकास को ध्यान में रखते हुये एक स्पष्ट परिपेक्ष्य के साथ उत्पादन की माँग को पूरा करना। प्रतिवर्ष कोल इण्डिया लिमिटेड मानव संसाधन विकास की

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, जुन्नारदेव, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

योजना तैयार करती है। विभिन्न सहायक कम्पनियों में स्थित 26 प्रशिक्षण केन्द्रों में मानव संसाधन विकास के प्रयासों को प्रमुख चार भागों में एकीकृत किया है।[4]

तकनीकी प्रशिक्षण इस प्रशिक्षण के मुख्य उद्देश्यों में निम्न को शामिल किया गया है

1. कुशल श्रमिकों की उपलब्ध कमी को पूरा करने के लिये सहायक कम्पनियों में प्रयोग किये जा रहे और कार्पोरेट स्तर पर विकसित किये जा रहे प्रौद्योगिकियों में प्रशिक्षण प्रदान करना।
2. कर्मचारियों को वैधानिक दायित्वों को पूरा करने के लिये तैयार करना
3. महत्व पूर्ण और गैर महत्वपूर्ण श्रेणियों में कर्मियों की आवश्यकता विश्लेषण और अनुमान करना और उन्हें तैयार करना ताकि कोल इण्डिया की परियोजनाओं में क्षमता निर्माण, नये उपकरण और उत्पादन प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी समृद्ध द्वारा प्रौद्योगिकी और पूंजी निवेश उचित लाभ प्रदान कर सके।

पुनर्ष्चर्या पाठ्यक्रम – तीन साल में एक बार उनके लिये जो पहले से ही बुनियादी पाठ्यक्रम पूरा कर चुके है या कोई विषिष्ट कौशल क्षेत्र में काम कर रहे है।

विशेष पाठ्यक्रम – वर्तमान प्रौद्योगिकी क्षेत्र उपकरण विन्यास या क्षमता में कोई परिवर्तन आया है या उत्पादन प्रणाली में सुधार किया गया है, तो सभी सम्बन्धित कर्मचारियों को उपयुक्त परिवर्तन के अनुसार तैयार करना है। सभी नये कर्मचारियों के लिये बुनियादी पाठ्यक्रम पूरा करना आवश्यक है, जो कुशल भूमिकाओं में है उनके लिये पुनर्ष्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित किया जाता है। बुनियादी प्रशिक्षण या तो वहीं सम्बधित कम्पनी में स्थित तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रों में आयोजित किया जाता है या किसी अन्य सहायक कम्पनी में जहाँ वह सुविधा उपलब्ध है। पुनर्ष्चर्या प्रशिक्षण स्थल पर या प्रशिक्षण केन्द्रों में आयोजित की जाती है। वैधानिक दायित्वों के प्रबंधन के लिये 105 व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र है।

प्रबंधन प्रशिक्षण– नये पद पर कार्यभार संभालने के समय अर्थात उच्च स्तर पर प्रवेश के समय ग्रेड E1 से E5 तक के प्रत्येक स्तर के अधिकारियों के लिये सहायक कम्पनी के प्रबंधन प्रशिक्षण केन्द्र में आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण दिया जाता है। ग्रेड M1 से M3 तक के उच्च स्तर के अधिकारियों के लिये प्रशिक्षण राँची में स्थित भारतीय कोयला प्रबंधन संस्थान (IICM) के सर्वोच्च प्रशिक्षण केन्द्र में प्रदान किया जाता है।[5]

परिवर्तन प्रशिक्षण – प्रबंध नीति के सिद्धांत से नए कर्मचारियों को या उन कर्मचारियों की जिन्हें नये कौशल हासिल करने की आवश्यकता है। पारंपरिक से अर्ध–मशीनीकृत खदानों में जाने के लिये या खानों के बंद होने के कारण या अतिरिक्त मानव शक्ति होने के कारण, यह प्रशिक्षण दिया जाता है।

सामान्य विकास प्रशिक्षण – खानों की स्थिति में बदलते परिदृष्य के साथ विशेष रूप से ई.सी एल., वी.सी.सी.एल. और कुछ सीमा तक सी.सी.एल. में और एम.सी.एल., एन.सी.एल., एस.ई.सी.एल. और डब्ल्यु.सी.एल. को अलग ध्यान में रखते हुए, कोल इण्डिया लिमिटेड की संगठनात्मक स्वास्थ्य लाभ और हानि, उत्पादकता बढ़ाने के लिये मानदंड, मूल्य मापदंड और कम्पनी के अस्तित्व के लिये उत्पादन में उत्कृष्टता के लिये मानदण्ड के बारे में कार्यकर्ताओं और पर्यविक्षकों तक नियोजित संगठनात्मक संचार और सीधा संपर्क के माध्यम से प्रचार किया जाता है।

निष्कर्ष – एक कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारी में विश्लेषण करने की क्षमता भी अधिक होती है और वह समय पर निर्णय लेकर दुर्घटनाओं से कर्मचारियों की सुरक्षा कर सकता है जबकि अकुशल व अप्रशिक्षित कर्मचारियों में तत्काल निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती इस लिए वह स्वयं तथा कर्मचारियों के समूह को दुर्घटना से नहीं बचा पाता है क्योंकि वह तत्काल निर्णय लेने में सक्षम नहीं होता है वर्ष 2002 में कुल प्रशिक्षित कर्मचारी 22,469 थे तो कुल दुर्घटनाओं की संख्या 901 थी जबकि 2010–11 में कुल प्रशिक्षित कर्मचारी 48,488 है, तो कुल दुर्घटनाएँ 520 हुई है इससे यह सिद्ध होता है कि प्रशिक्षण दुर्घटना रोकने में भी सहायक होता है। कोल इण्डिया लिमिटेड द्वारा प्रतिवर्ष कम से कम 1000 कर्मचारियों व अधिकारियों को प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए विदेशो में भेजा जाना चाहिए जिससे कि वहाँ से उच्च किस्म के प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात उनके द्वारा हमारे प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षक के रूप में नियुक्त करके हमारे कर्मचारियों व अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा सकता है। जिससे हमारे प्रशिक्षित मानव संसाधन की संख्या में वृद्धि होगी जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन बढ़ेगा और इससे कोल इण्डिया लिमिटेड के लाभों में वृद्धि होगी और हमेशा देश का अधिक से अधिक विकास होगा व आर्थिक दृष्टि से हम मजबूत होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. खनिज ऊर्जा अप्रेल 2008 अंक 35 नार्दन कोलफील्ड लिमिटेड, सिंगरोली।
2. खनिज ऊर्जा अप्रेल 2009 अंक 43 नार्दन कोलफील्ड लिमिटेड, सिंगरोली।
3. खनन भारती WCL(अंक 76, 1999, 110–2005)WCL
4. समन्वय सम्मेलन दिनांक 23 अगस्त 97,WCL
5. आर्य एवं टंडन – मानव संसाधन विकास डीप एण्ड डीप पब्लिकेशन नई दिल्ली (2004)
6. Kapoor, N.D. : ‘Hand-book of industrial law’ Sultan Chand & Sons, New Delhi, 1996.
7. Kera S.S. : “ Management and control in Public enterprise. Bombay. Asia publishing House, 1971.

****

कार्यस्थल पर अच्छे वातावरण का महत्व कोल इण्डिया लिमिटेड के संदर्भ में

डॉ. दीपचंद भावंरकर *

शोध सारांश – कार्य स्थल कोई भी हो, प्रकाश व्यवस्था अच्छी होने पर कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। कर्मचारी का मन कार्य करने में लगता है। कार्य के प्रति ईमानदारी और लगन आती है। और प्रकाश अच्छा हो तो नीरसता नहीं आती है। ओपन कास्ट खदानों में तो मशीनो से कार्य किया जाता है। तो अधिक प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि अण्डर ग्राउण्ड खदानों में अधिक प्रकाश व्यवस्था की आवश्यकता होती है। क्योंकि छत से पानी गिरता है रास्ते में बड़े–बड़े गड्ढे तथा पत्थर होने के कारण दुर्घटना ना हो इसके लिए पर्याप्त प्रकाश व्यवस्था अति आवश्यक है। श्रमिकों के कार्य के दौरान कोयले के डस्ट से सुरक्षा के लिए नाक व मुँह पर स्कार्प बंधा हुआ होना चाहिए ताकि शरीर के अन्दर डस्ट न जाये इसके परिणाम स्वरूप श्रमिकों में किसी प्रकार की कोई बिमारी नहीं होगी और श्रमिक स्वस्थ रहेगा। कार्य का वातावरण अच्छा होने से श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि होगी इससे कोल इंडिया लिमिटेड का उत्पादन बढ़ेगा इससे कम्पनी के लाभो में वृद्धि होगी और श्रमिकों का आर्थिक विकास होगा और अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो पायेंगे। कोल इण्डिया लिमिटेड की विभिन्न सहायक कम्पनियों में कार्यरत मानव संसाधन की तुलना के आधार पर विभिन्न श्रेणी के क्वाटरों का निर्माण कराया जाना चाहिए जिससे श्रमिक प्रसन्नता पूर्वक अपने परिवार के साथ आनंद पूर्वक रह सके और बिना चिन्ता के पूरी लगन व ईमानदारी से कोयला उत्खन्न के कार्य को पूरा कर सके और अधिक से अधिक उत्पादन करके कम्पनी के लाभो में वृद्धि कर सकें इस दृष्टि से श्रमिकों की सुविधाओं का पूरा पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए और जो उचित भी है।

प्रस्तावना – सरकार द्वारा निजी कोयला खदानों को अधिग्रहीत करने के साथ कोल इण्डिया लिमिटेड एक संगठित सरकारी स्वामित्व वाले कोयला खनन कार्पोरेट के रूप में नवम्बर 1975 में अस्तित्व में आयी थी। अपने प्रारंभिक काल में 79 मिलियन टन प्रति वर्ष मामूली उत्पादन करने वाली सी.आई.एल. आज दुनिया में अकेली सबसे बड़ी कोयला उत्पादक है। भारत के 8 राज्यों में फैले 81 खनन क्षेत्रों का संचालन करने वाली सी.आई.एल. 7 पूर्ण स्वामित्व वाली कोयला उत्पादक सहायक और एक खान, आयोजना एवं परामर्शी कम्पनी का शीर्षस्थ निकाय है। मोजाम्बिक में कोल इण्डिया अफ्रिकाना लिमिटाडा नामक एक खनन कम्पनी का स्वामित्व भी है सी.आई.एल. के पास वर्कशाप, अस्पताल आदि जैसी 200 अन्य संस्थाओं का भी प्रबंधन सी.आई.एल करती है। इसके 26 तकनीक एवं प्रबंधन प्रशिक्षण संस्थानों और 102 वोकेशनल प्रशिक्षण संस्थान भी है। सी.आई.एल. के अधीन संचालित भारत में सबसे बड़े कॉरपोरेट प्रशिक्षण संस्थान के रूप में भारतीय कोयला प्रशिक्षण संस्थान (आई.आई.सी.एम) है जो अत्याधुनिक प्रबंधन प्रशिक्षण की उत्कृष्टता का केन्द्र है और यह बहु आनुशासनिक प्रबंधन विकास कार्यक्रम आयोजित करती है।[1] महारत्न कंपनी बनने की सभी वित्तीय एवं अन्य पूर्वापेक्षाओं को पूरा करने के बाद सी.आई.एल. को अप्रेल 2011 में महारत्न कम्पनी का दर्जा प्रदान किया गया। चयनित सरकारी उपक्रमों को सशक्तिकृत कर अपने संचालन को विस्तारित करने तथा भूमण्डलीय स्तर पर अपने आप को स्थापित करने हेतु भारत सरकार द्वारा दी गई यह विशेषाधिकार की स्थिति है। देश के 217 केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों में से अभी तक सिर्फ पांच सदस्य ही इस चयनित क्लब में है। कोल इण्डिया लिमिटेड की विभिन्न सहायक कम्पनियों में सर्वे के दौरान यह देखने में आया है। कि पहले भूमिगत खदानो में छत से पानी गिरते रहता था और रास्ते में कीचड बड़े–बड़े पत्थर तथा गड्ढे होते थे जबकि वर्तमान समय में रास्ते में व्यवस्थित रूप से सीढ़ियाँ बनी हुई है तथा कार्य स्थल पर अंधेरा के स्थान पर व्यवस्थित रूप से लाईट लगे हुए है तथा छत सर पर ना गिरे इसके सहारे के लिए लकड़ी के गत्ते लगाये गये है ताकि छत को गिरने से रोका जा सके पीने के पानी की व्यवस्था भी ठीक है। एक पात्र का प्रयोग पीने के पानी के लिए रखा रहता है और श्रमिक अपनी आवश्यकता अनुसार उस पानी का प्रयोग पीने के लिए करते रहते हैं। इसी प्रकार से श्रमिकों का समूह टोलियों में बटा रहता है। और कोई टोली सुरंग बनाने के कार्य में लगी रहती है तथा कुछ टोली दानामेंट लगाने में लगी रहती है। इस प्रकार से जब सुरंग पूरे हो जाते हैं। तो कुछ समय पश्चात विस्फोट कर दिया जाता है। विस्फोट के दौरान श्रमिकों का समूह आधा या एक कि.मी. लगभग दूर चले जाते हैं। ताकि श्रमिकों की सुरक्षा हो सकें विस्फोट के लगभग एक घण्टे बाद कोयला उठाने का कार्य मशीनो द्वारा किया जाता है। एक राउण्ड में 6 से 8 ट्राली की माल गाडी लोड होने के बाद लोहे की पटरी से लगभग 100 हार्स पावर की मोटर के द्वारा माल गाड़ी को खीचा जाता है। इस प्रकार से मोटर के पास एक मोटर चालक के बैठने की व्यवस्था होती है। जब भी गाड़ी लोड हो जाती है। तब मोटर चालक के पास हरा लाईट जल जाता है और वही मोटर चालू कर देता है। जिससें कोयला लोडिंग गाड़ी अपने स्थान पर आ जाती है और खाली कर दिया जाता है। फिर पुन: खाली कोयला गाड़ी अपने स्थान पर चली जाती है। दैनिक क्रियाएँ निपटाने के लिए कोई व्यस्थित व्यवस्था नहीं होती है। जिसमें दैनिक क्रियाएँ निपटायी जा सके श्रमिक अपने दैनिक क्रियाएँ कहीं भी निपटा लेते हैं। तथा एक दो दिन बाद गंदगी फैलने लगती है तथा मेडिकल की प्रांरभिक व्यवस्था फील्ड आफिसर के पास होती है। जिससे दुर्घटना के तुरन्त बाद पट्टी बांधने तथा गोलियां खिलाने की पूरी व्यवस्था होती है। साथ

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, जुन्नारदेव, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

में चार पावर की टार्च एवं सर में प्लास्टिक की टोपी लगी रहती है। संचालन रूम में स्वीच अटेन्डेन्ट तथा टोली नायक तैयार रहते हैं।

ओपन कास्ट खदानो के सर्वे के दौरान पाया गया कि लगभग 50 से 100 एवं 100 से 150 फिट गहरें आयताकार खाई जैसी खुदाई की जाती है। यह खुदाई जे.सी.वी. मशीन द्वारा की जाती है। तथा इसके माध्यम से डम्फर भरे जाते हैं। लेकिन कोयले की सतह तक पहुँचने के लिए अधिक मिट्टी व पत्थर खोदने की आवश्यकता पड़ती है। जिससे कृषि भूमि का भी विनाष होता है तथा गर्मी के दिनों में उड़ती हुई धूल मिट्टी से पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है, इसी दौरान खदानों में पानी निकलने से पानी को किसी दूसरे स्थान पर इकट्ठा किया जाता है। तथा उस संग्रहित पानी को माईन्स एरिया में निवास करने वाली जनता को फिल्टर प्लांट के माध्यम से शुद्ध करके टंकी में एकत्रित किया जाता है। और इसे नल योजना के माध्यम से प्रत्येक घर में नल द्वारा पानी की सप्लाई की जाती है। प्रस्तुत शोध विषय के माध्यम से वर्तमान संचालन व्यवस्था एवं कार्य स्थल के वातावरण की समस्याएँ व सुझाव दिये गये है। ताकि प्रबंधन को अपनी व्यवस्थाओं को व्यवस्थित करने के लिए सहायक सिद्ध होगे और इन प्रयासों से अधिक से अधिक सामाजिक विकास एवं श्रमिकों के कल्याणकारी योजनाओं के संचालन में सहायता मिलेगी। शोध विषय कोल इण्डिया लिमिटेड की सात सहायक कोयला उत्पादक कम्पनियों का मिश्रित अध्ययन किया गया है।

भारतीय स्वतंत्रता के प्रभात काल से पहली पंचवर्षीय योजना में ही कोयला उत्पादन की काफी आवश्यकता महसूस की जाने लगी 1951 में कोयला उद्योग के लिए कार्यकारी दल की स्थापना की गई थी, जिसमें कोयला उद्योग श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों और सरकार के प्रतिनिधि शामिल किये गये थे। इसके लघु और विभाजित उत्पादन इकाइयों के एकीकरण का सुझाव दिया। इस प्रकार एक राष्ट्रीयकृत एकीकृत कोयला क्षेत्र का विचार पैदा हुआ कोयला खनन में एकीकृत समग्र योजना आजादी के बाद एक आवश्यक घटना है। नये कोयला क्षेत्रों की खोज और नई कोयला खदानों के विकास में तेजी लाने के उद्देश्य से 11 कोयला खदानों को मिलाकर नेशनल कोल डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन का गठन किया गया।[2]

सरकार की राष्ट्रीय ऊर्जा नीति के तहत भारत की कोयला खानों को 1970 के दशक में दो चरणों में पूर्ण रूप से राष्ट्रीय नियंत्रण में लिया गया। कोर्किंग कोयला खान (आपात काल प्रावधान) अधिनियम 1971 सरकार द्वारा 16 अक्टूबर 1971 को लागू किया गया, जिसके तहत इस्को, टिस्को और डी.बी.सी. के कैप्टिव खानों के अलावा भारत सरकार ने सभी 226 कोर्किंग कोयला खानों का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया और उसे मई 1972 को राष्ट्रीयकृत कर दिया। इस प्रकार भारत कौर्किंग कोल लिमिटेड बना था इसके अलावा 31 जनवरी 1973 को कोयला खान (प्रबंधन का हस्तांतरण) अध्यादेश 1973 लागू कर केन्द्रीय सरकार ने सभी 711 नान कौर्किंग कोयला खानो का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया। राष्ट्रीयकरण के अगले चरण में मई 1973 से इन खानो को राष्ट्रीयकृत किया और इन नॉन-कोर्किंग खानों का प्रंबधन करने के लिये एक सार्वजनिक क्षेत्र की कोयला खान प्राधिकरण लिमिटेड नामक कंपनी का गठन किया गया था। दोनो कम्पनियों का प्रबंधन करने के लिये कोल इण्डिया लिमिटेड के रूप में एक औपचारिक नियंत्रक कम्पनी का गठन नवम्बर 1975 में किया गया।[3]

निष्कर्ष - वर्तमान समय में खदानों में कार्य करने की दषाओ का प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण के दौरान पाया गया कि कार्य स्थल पर ना तो पीने का स्वच्छ पानी है। और ना ही स्वच्छ वायु है। और ना ही मुत्रालय और शौचालय की व्यवस्था है। कार्यरत श्रमिकों द्वारा अपनी दैनिक क्रियाएँ किसी भी स्थान पर निपटा लेते हैं। जिससे दो या तीन दिन बाद उससे गन्दी बदबू आने लगती है। इस प्रकार की कार्य दशाओं में श्रमिकों को कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार के वातावरण से अनेक प्रकार की बिमारियों के होने की आशंका बनी रहती है। तथा श्रमिक अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर पाता है। कोयला खदानो मैं अन्डर ग्रारण्ड कोयला खदानो के कार्य स्थल की दशाओ में वातावरण अत्यधिक खराब पाया गया इस प्रकार के वातावरण में सुधार किया जाना चाहिए जैसे पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था, शुद्ध वायु की उपलब्धता तथा भोजन अवकाश का प्रावधान इसके साथ ही मुत्रालय और शौचालय की उचित व्यवस्था भी होना आवश्यक है। जिससे कि कार्य स्थल के वातावरण को सुधारा जा सके और श्रमिकों की नष्ट हुई कार्यक्षमता को पुन: प्राप्त किया जा सके इससे उत्पादन अधिक बढ़ेगा और कोल इण्डिया के लाभो में भी वृद्धि होगी श्रमिकों की कार्य क्षमता तथा कार्य करने की दशाओ का सीधा सम्बंध है। दोनो एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। महिला श्रमिकों के लिए जिनके बच्चे 3 वर्ष से कम आयु के है। उनके लिए शिशु सदन की आवश्यकता होती है। जबकि विभिन्न सहायक कम्पनियों के सर्वेक्षण के दौरान किसी भी कोयला खदान में शिशु सदन की उपलब्धता नहीं पायी गई इससे महिला श्रमिकों को अधिक से अधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसके साथ ही भोजन अवकाश के समय में वे अपने बच्चो के साथ कुछ समय बिताने की आवश्यकता हो तो विश्राम ग्रह नहीं है। इससे वे पूर्ण लगन व ईमानदारी से मन लगाकर कार्य नहीं कर सकती क्योंकि उनका आधा ध्यान अपने बच्चो में तथा आधा ध्यान कार्य पर लगा रहता है। जिससे दुर्घटनाएँ घट सकती है। इसके परिणाम स्वरूप कई बार श्रमिकों को अपनी जान भी गबानी पड़ी है। कही-कही तो जलपान गृह की भी व्यवस्था नहीं है। इससे श्रमिकों को अधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. खनिज ऊर्जा अप्रेल 2008 अंक 35 नार्दन कोलफील्ड लिमिटेड, सिंगरोली
2. खनिज ऊर्जा अप्रेल 2009 अंक 43 नार्दन कोलफील्ड लिमिटेड, सिंगरोली
3. खनन भारती WCL (अंक 76, 1999, 110-2005)WCL
4. समन्वय सम्मेलन दिनांक 23 अगस्त 97, WCL
5. Kera S.S. : " Management and control in Public enterprise. Bombay. Asia publishing House, 1971.
6. Jindal M.L. : M.P.- Industrial Relation Act. 1960 Raj Kamal Publishing Indore 1997.

****

जनकल्याणकारी योजनाओं के प्रभावों का मूल्यांकन (विश्लेषणात्मक अध्ययन)

डॉ. राजेश कुमार लोखण्डे *

शोध सारांश – लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना बैंथम की अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की जनकल्याणकारी संकल्पना को पोषित करती है। विशाल जनसूंख्या वाले भारतीय विकासशील समाज में जनकल्याणकारी योजनाओं की उपलब्धता और उपलब्धि पर्याप्त नहीं कही जा सकती। ग्रामों में निवासरत् लगभग 80 प्रतिशत आबादी का अधिकांश भाग निर्धन, निरक्षर और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नही है। ऐसी स्थिति में भारतीय ग्रामीण विकास शासन के लिए एक चुनौती के रूप में है। एक ओर जहाँ अपर्याप्त अधोसंरचनाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण संसाधनों का भरपूर उपयोग न होने के कारण अनवरत् पलायन जारी है। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना उन उद्यमशील ग्रामीणों को एक समूह में कार्य करने का ऐसा रास्ता सुझाती है जो उनकी ग्रामीण मेलजोल वाली संस्कृति से घनिष्ठता से जुड़ा हैं। इंदिरा आवास योजना ने ग्रामीण निर्धन वर्गो को अपने जीवन स्तर को उठाने हेतु प्रेरित किया है। साथ ही शुष्क शौचालय और धुँआ रहित चूल्हे की अनिवार्य शर्त ने सामाजिक विकास को निर्दिष्ट किया है।

प्रस्तावना – अर्वाचीन विश्व में लोकतांत्रिक सरकारों के दौर में राज्य की अधिसंख्य जनता को सुखी रखना शासन का प्रमुख लक्ष्य होता है। जनकल्याण की धारणा में व्यक्ति के कल्याण का अर्थ होता है; उसका अपना सुख और सुख उसकी अवचेतन इच्छाओं की पूर्ति से प्राप्त होता है। समाज सिर्फ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है, जिनमें व्यक्ति अपनी अवचेतन इच्छाओं की पूर्ति कर सके। यह स्वीकारा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन का उद्देष्य कल्याण (Well Being) की प्राप्ति है। इसे उसका सुख भी कहा जा सकता है, परंतु सुख को दो अलग-अलग तरह से समझा जा सकता है : अ) मानसिक प्रसन्नता (Happiness) ब) भौतिक सुख का कल्याण (Welfare) प्रसन्नता एक मानसिक स्थिति है। जो कि व्यक्ति के दिमाग की उपज होती है। जबकि कल्याण की धारणा वस्तुओं के उपयोग से जुड़ी हुई है। मानसिक प्रसन्नता का सम्बन्ध व्यक्ति के अपने दिमाग से अधिक और भौतिक स्थिति से कम होता है। एक पढ़ा-लिखा अमीर तथा स्वस्थ्य व्यक्ति अप्रसन्न या उदास हो सकता है क्योंकि उसे व्यापार का तनाव है। एक व्यक्ति जिसे खाना, कपड़ा इत्यादि सब उपलब्ध हो तब भी उदास हो सकता है, क्योंकि उसे कुछ कहने/करने की स्वतंत्रता नहीं है।

प्रश्न जब भारतीय विविधतापूर्ण सांस्कृतिक समाज के बारे में विचारणीय हो तो विभिन्न आयामों से इसके विश्लेषण की आवश्यकता महसूस होती है। वर्तमान भारत में एक ओर जहाँ जनसंख्या के बढ़ते दबाव ने विकास को अप्रासंगिक सा बना दिया है, वहीं दूसरी ओर भारतीय ग्रामों में निवासरत दो तिहाई आबादी जो कृषि जैसे अस्थायित्व प्रकृति के व्यवसाय पर निर्भर है। ऐसे में विकास को ग्रामीण जनजीवन के संदर्भों में परिभाषित करना लाजिमी हो जाता है।

शासन द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि शासकीय योजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ उन वर्गो को प्राप्त हो सके जो शताब्दियों से आर्थिक अभाव में जीवन-यापन कर रहे हैं और दरिद्रता के अभिशाप से ग्रसित है। ग्रामीण विकास के द्वारा क्षेत्रीय आर्थिक असमानता को दूर करना प्रमुख लक्ष्यों में से एक होता है। इसी के साथ ग्रामीण गरीबी और भुखमरी को समाप्त करके ग्रामीण समाज को परम्परात्मक ढांचे व विश्वास से बाहर निकालना है। उनकी जीवन शैली और कार्य पद्धति में परिवर्तन लाना जिससे वे विज्ञान और तकनीकी समाज में प्रवेश कर सकें तथा विकास में शिक्षा के महत्व को समझ सके।

अध्ययन क्षेत्र – प्रस्तुत शोध का अध्ययन ग्रामीण विकास मंत्रालय की योजनाओं के प्रभावों के मूल्यांकन से संबंधित है।

- ग्रामीण विकास योजनाओं की मार्गदर्शिका में वर्णित दिशा-निर्देशों का विभिन्न संदर्भो में परिपालन किया जा रहा है या नहीं।
- पारदर्शिता, जबावदेही एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में आम जनता की भागीदारी का परीक्षण करना।
- इन कार्यक्रमों द्वारा निर्मित परिसम्पत्तियों की स्थायित्वता एवं मूल्य प्रभावोत्पादकता का परीक्षण करना

विष्लेषण – भारत में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भारतीय नेताओं ने अपने स्तर से ग्रामीण विकास की दिशा में प्रयास किए, जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ग्रामीण विकास के लिए शान्ति निकेतन में ग्रामीण सुधार कार्यक्रमों की शुरूआत की। टैगोर का उद्देश्य ग्रामीण जनता में उत्साह तथा नई जागृति लाना था, ताकि वे स्वावलम्बी बन सकें। इसके अलावा उन्होंने ग्रामीण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए बहुत जोर दिया। इसके लिए उन्होंने शान्ति निकेतन में बच्चों को शिक्षा देने के लिए कार्यक्रम चलाये। महात्मा गांधी ने भी ग्रामीण विकास के लिए सेवाग्राम अभियान 1931 में प्रारंभ किया। उनके सेवाग्राम का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये ग्रामों को पुनर्निर्मित करके स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनाना था। गाँधीजी ने ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों को फैलाने के लिये अनेक प्रयास किये। वे ग्रामों को भारत की आत्मा कहते थे, इस आत्मा के लिए उन्होंने अनेक सूत्रीय कार्यक्रम बनाये। खादी का प्रयोग बढ़ाने, कताई-बुनाई को उन्होंने विशेष स्थान दिया, क्योंकि यह उद्यम सरल एवं कम लागत पर घर में किया जा सकता था। उन्होंने चरखा द्वारा कपड़ा तैयार करने

* प्राचार्य, विद्या देवी शुक्ला महाविद्यालय, जुन्नारदेव, जिला छिन्दवाडा (म.प्र.) भारत

को प्रतिदिन के कार्यक्रम में शामिल किया तथा प्रतिदिन चरखे चलाकर कुछ न कुछ मात्रा में कपड़ा तैयार किया और सदैव खादी से निर्मित वस्त्र धारण किये। गांधीजी ने ग्रामीण क्षेत्रों में न केवल आर्थिक पक्ष को विकसित करने के लिए प्रयास किए, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए भी उन्होंने अनेक बुराईयों को दूर करने के लिए अति आवश्यक सुझाव भी दिये।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण विकास के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। अनेक राज्यों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पंचायतीराज व्यवस्था को नवजीवन दिया। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को तेजी से अपनाया गया। इसके लिए गाँवों में सामुदायिक विकास केन्द्रों की स्थापना की गयी। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिए अनेक विशेष कार्यक्रम अपनाये गये। गाँवों में विद्युत, जल, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा ग्रामीण औद्योगिकीकरण सहित अनेक परियोजनाएँ बनायी गयीं। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान ग्रामीण विकास के लिए निम्नांकित कार्यक्रमों को मुख्य रूप से अपनाया गया।

- सामुदायिक विकास कार्यक्रम, 1952
- व्यवहारिक पोषाहार कार्यक्रम, 1958
- पंचायतीराज व्यवस्था, 1959
- सघन कृषि जिला कार्यक्रम, 1960
- पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम, 1962
- जनजाति क्षेत्र का विकास कार्यक्रम, 1964
- सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम, 1965
- उन्नत बीज कार्यक्रम, 1965
- सघन क्षेत्र विकास कार्यक्रम, 1965

वर्तमान में ग्रामीण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को सरकार नियोजित ढंग से जनतांत्रिक विकास में परिणित कर रही है इसलिए प्रत्येक ग्रामीण को अपने ऊपर लागू होने वाले नियमों, कानूनों एवं प्राप्त होने वाली सुविधाओं के प्रति सूचनाओं एवं शर्तों की जानकारी आवश्यक है। यदि साधारण ग्रामीणजन स्वयं पढ़े-लिखे नहीं हैं तो वे अपने जनप्रतिनिधियों से पूर्णरूपेण सजग रहने की प्रत्याशा रखते हैं। देसाई ने उचित ही कहा है कि वर्तमान विकास संबंधी कार्यक्रम और प्रशासनिक व्यवस्था की प्रारंभिक जानकारी व्यक्ति के लिये अनिवार्य है।

ग्रामीण निर्धनों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए उनमें स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता उन्मूलन और विकास की नीति का अभिन्न अंग रहा है। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) ग्रामीण निर्धनों के लिए सबसे बड़ा स्वरोजगार-कार्यक्रम है। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना अप्रैल, 1999 में शुरू की गई। इसके लाभार्थियों में व्यक्ति या समूह (स्वयं-सहायता समूह) हो सकते हैं। किन्तु समूह दृष्टिकोण पर बल दिया जाता है। योजना का उद्देश्य लाभार्थी परिवारों को आय पैदा करने वाली परिसंपत्तियां प्रदान करके गरीबी की रेखा से ऊपर लाना है। इसके अंतर्गत बैंक ऋण और सरकारी अनुदान के रूप में मिश्रित सहायता दी जाती है। यह एक व्यापक कार्यक्रम है जिसमें स्वरोजगार के सभी पहलुओं जैसे निर्धनों को स्वयं सहायता समूह के रूप में संगठित करना, प्रशिक्षण, ऋण, प्रौद्योगिकी ढांचे और विपणन को शामिल किया जाता है।

आज भूमंडलीयकरण, निजीकरण, उदारीकरण और बाजारवाद ने जिस तरह उपभोक्तावाद को बढ़ावा देकर आभासी खोखले कल्पना चित्र के माध्यम से आमजनों विशेषकर युवाओं में जो आर्थिक संवृद्धि के सपनों को जन्म दिया है, उससे व्यवसायिक नैतिक मूल्यों में भारी गिरावट आई है। वर्तमान शोषणकारी, बाजारवादी अर्थव्यवस्था ने महानगरों के इर्द-गिर्द मौजूद ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कृषि भूमि एवं चारों महानगरों को जोड़ने वाले रास्तों में पड़ने वाले ग्रामीण क्षेत्रों को औद्योगिक गलियारों के रूप में विकसित विशेष आर्थिक क्षेत्र की संज्ञा से ज्ञापित किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कृषि भूमि को अन्यायपूर्ण भूमि अधिग्रहण कानून के द्वारा अधिग्रहित करके ग्रामीणजनों को उनकी जड़ों से अलग करना और मोटी धनराशि के प्रलोभन के बावजूद भी उसके उपभोग और उपयोग की कोई सार्थक योजना न देने से वे पुन: शोषण के किार होते हैं। झूठे अश्वासनों का बोलबाला बढ़ा है, अत्याधुनिक संचार के माध्यमों ने सांस्कृतिक विचलन की ओर अग्रसर किया है।

जंगलों और खेतों को तोड़कर जो उद्योग लगाये गये हैं वे देश में समृद्धि लाने के लिए हैं। क्या हम मान लें कि इन उद्योगों से गांव समृद्ध हो रहे हैं ? क्या समृद्धि की यह शर्त है कि उनके पुश्तैनी खेती व्यवसाय से उन्हें विदा करके उन्हें शहरों में रहने के लिए बाध्य किया जाये ? जो रोटी, कपड़ा और मकान वे खेती से ही जुटा लेते थे क्या उसकी आपूर्ति शहरों में सम्भव है ? नकारात्मक उत्तर प्राप्त होने पर अंतत: यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अमीर देशों के हिस्से में तो समृद्धि, मुनाफा और उपभोग का अंबार आता है लेकिन गरीब देशों के हिस्से में लगातार चलने वाला शोषण, काम की अमानवीय दशाऐं, पर्यावरण का क्षय और समय- समय पर ऐसे भीषण हादसे आते हैं इन सब को ढंककर रखने के लिए इन्हें उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएँ कह कर शाबासी दी जा रही है।

सुझाव :

- ग्रामीण विकास मंत्रालय की जनकल्याणकारी योजनाओं का लाभ सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से कमजोर वर्गों को तभी प्राप्त हो सकता है, जब उनके जागरूकता के स्तर को बढ़ाया जाये।
- ग्रामीण विकास मंत्रालय की जनकल्याणकारी योजना मनरेगा में हितग्राही वर्ग कार्य करने में तभी सुविधा महसूस करते हैं जब वे कृषि कार्य से मुक्त हो अथवा उनके स्वयं के व्यवसाय का समय उन्हें मंदा लग रहा हो। मनरेगा के काम कृषक/मजदूरों को तब प्रस्तावित किये जाएँ जब वे कृषि कार्य से मुक्त हों।
- भारतीय संदर्भ में महिलाएँ घरेलू कार्य संपन्न करने के साथ-साथ कृषि कार्यों में भी अपना अधिकतम योगदान देती हैं किंतु पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में भी पुरूषवादी वर्चस्व प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण विकास योजनाओं में महिला हितग्राहियों का एक निश्चित प्रतिशत होना जरूरी महसूस होता है।

निष्कर्ष - योजना के लिए पात्र हितग्राही का चयन; हितग्राहियों द्वारा आवश्यक प्रपत्रों/जानकारियों को सम्पूरित कर प्रकरण तैयार करना एक ऐसा कार्य है जिसमें विशेषज्ञता की आवष्यकता होती है। यही एक मुख्य वजह होती है जब क्रियान्वयन एजेंसियां महत्वपूर्ण होकर प्रभावी भूमिका अदा करने लगती है और हितग्राहियों का चयन उनकी इच्छा/अनिच्छा पर निर्भर हो जाता है।

कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ईंधन के लिए वनों पर निर्भरता व्याप्त है। जबकि वनों के संरक्षण के लिए ईंधन के वैकल्पिक साधनों को तलाशा जाना समय की मांग है। क्योंकि आज वास्तविकता यह है कि धरती संकट में है ऐसी बात करने वाले धरती की फिक्र सबसे कम करते हैं क्योंकि धरती की फिक्र भी आप करें और विकास का यह मॉडल भी चलाएँ, यह साथ-साथ संभव नहीं है। धरती की फिक्र अगर आप करते हैं तो आपको विकास का अपना मॉडल बनाना होगा और दूसरे मॉडल की तरफ देखकर

ललचाना छोड़ना होगा। धरती के सारे संसाधन सीमित है और पता नहीं कितने-कितने हजार-लाख वर्षो की रहस्यमयी तकनीक से प्रकृति ने उन्हें बनाया है। हमें वह सब बना-बनाया मिला है। तो हम उसका मनमाना इस्तेमाल करने में पागलों की तरह जुटे हैं।

पंचायत राज द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से ग्रामीण विकास की संभावनाओं में वृद्धि हुई है तथा ग्रामीण जनता में जागृति आई है। उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान हुआ है, तथा वे अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हुए हैं। तथापि ग्राम पंचायतों का कार्य निष्पादन अपेक्षानुरूप नहीं है। पंचायतें आत्मपोशित होने के स्थान पर परजीवी बनती जा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. झुनझुनवाला, भरत- भारतीय अर्थव्यवस्था : समीक्षात्मक अध्ययन, राजपाल एण्ड सन्स - दिल्ली, 2007,
2. खाखा, डॉ. श्रीमती तरसिला-ग्रामीण विकास, सिंघई पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स, रायपुर, 2011,
3. जैन, डॉ. एस.एन. - जवाहरलाल नेहरू का सामाजिक-राजनीतिक चिंतन एवं उसका दार्शनिक आधार, लोकतंत्र समीक्षा (अर्द्धवार्षिक), संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली, जनवरी-जून 2007, खंड-39
4. कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल एवं वाई. सुंदर राजन- भारत 2020- नवनिर्माण की रूपरेखा, राजपाल एण्ड सन्स - दिल्ली, 2002,
5. नेहरू, जवाहरलाल-श्रद्धांजलि, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार-नई दिल्ली,
6. श्रीवास्तव, डॉ. नरेन्द्र -भारत में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम - क्रियान्वयन एवं उपलब्धियाँ, नार्दन बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 1995

****

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ और कमियाँ

डॉ. राजेश कुमार लोखण्डे *

शोध सारांश – भारत में ग्रामीण विकास योजनाओं का क्रियान्वयन अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य हैं क्योंकि भारत की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी जो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, अशिक्षित/अल्पशिक्षित होने के साथ-साथ निर्धन भी हैं। विकासशील समाज होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधा पर्याप्त नहीं है। ग्रामीण विकास मंत्रालय प्रशासनिक दृष्टि से वर्तमान में अपनी शैष्वास्था में है जिससे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अपेक्षित गति प्राप्त नही हो पा रही है। डॉ. दुबे के कथनानुसार – ग्रामीणों तक विकास कार्यक्रम को पहुंचाने में उनकी स्वयं की बोली और उनमें प्रचलित मुहावरों का पूरी तरह उपयोग नहीं किया गया है। फलस्वरूप भी विकास अच्छे ढंग से नहीं हो पाता है। ग्रामीण क्षेत्रों की प्राथमिकताओं का निर्धारण एवं वहां की समस्याओं के कारगर समाधान के लिए भारत में प्रशिक्षित और समर्पित नौकरशाही का अभाव है। राजनीतिक दलों और जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक प्रतिबद्धता में कमी दिखाई पड़ती है। ऐसी विषम परिस्थितियों में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का निर्धारण, निर्माण और क्रियान्वयन काफी चुनौतीपूर्ण हो जाता है। वर्तमान में भारतीय परिदृष्य की उन चुनौतियों की विवेचना करना समीचीन हो जाता है साथ ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कमियों को चिन्हित करना भी आवश्यक को जाता है ताकि उनके समाधान कारक उपाय खोजे जा सकें।

प्रस्तावना – सामान्य व आदिवासी विकासखण्डों में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ और कमियों की विवेचना की गई।

- पारदर्शिता, जवाबदेही एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में आम जनता की भागीदारी का परीक्षण करना।
- इन कार्यक्रमों द्वारा निर्मित परिसम्पत्तियों की स्थायित्वता एवं मूल्य प्रभावोत्पादकता का परीक्षण करना।
- निर्धनता उन्मूलन एवं उत्पादकता बढ़ाने के संदर्भ में कार्यक्रमों के प्रभावों का मूल्यांकन करना।
- पंचायती राज संस्थाओं की इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में भूमिका एवं कार्यप्रणालियों का परीक्षण करना।
- विकास का जनजागरूकता से सह-संबंध ज्ञात करना।

शोध प्रविधि – द्वितीयक समंकों का संग्रहण ,सरकारी गैर सरकारी प्रकाशनों, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं व इंटरनेट द्वारा संकलित किया गया।

भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार ग्रामीण आर्थिक गतिविधियाँ रही हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लड़खड़ाने या विकास नहीं कर पाने पर सारे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण विकास की संकल्पना को महात्मा गाँधी के इस विचार से बल मिला कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है और जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा एवं गाँव पुन: आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक देश का विकास नहीं हो सकता।व्यापक रूप से ग्रामीण विकास से अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना है। यद्यपि ग्रामीण विकास की अवधारणा में वैचारिक एवं सैद्धांतिक मतभेद हैं, लेकिन व्यवहारिक रूप में ग्रामीण विकास की अवधारणा स्पष्ट है, जिसमें ग्राम्य जीवन में सुधार लाना है।

वर्तमान संदर्भ में, ग्रामीण विकास का सामान्य अर्थ ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास से लगाया जाता है। ग्रामीण विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत ऐसी नियोजन नीति अपनायी जाती है, जिसके द्वारा ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गो के व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को स्थानीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग द्वारा उठाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जा सके। अर्थात् ग्राम्य विकास प्राकृतिक, भौतिक और मानवीय संसाधनों का उपयोग, सुरक्षा एवं संवर्धन को कहा जा सकता है। जिसकी आवश्यकता मानव जीवन की परिस्थितियों में लम्बे समय तक सुधार लाने के लिए है। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों के पर्यावरण को सुरक्षित रखते हुए काम और आय के अवसरों की उपलब्धता का प्रावधान भी सम्मिलित है। **संक्षेप में ,** ग्रामीण विकास लोगों के विशिष्ट समूह (गरीब) के सामाजिक और आर्थिक जीवन को उन्नत करने हेतु बनायी गई एक रणनीति है। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका कमाने वाले लोगों में भी गरीब तबके के व्यक्ति को विकास के लाभ पहुँचाना शामिल है। ग्रामीणों के विकास के लिए केवल आर्थिक वृद्धि ही नहीं, बल्कि लाभों का न्यायोचित वितरण भी आवश्यक है।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना :

- विकासखण्ड कार्यालय या शासकीय एजेन्सियों द्वारा स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के स्वरोजगारियों की पहचान काफी आलोचनायुक्त और एक निश्चित ढर्रे को अपनाने वाली रही है।
- बैंकिंग क्षेत्र आज भी किसी अच्छी परियोजना को वित्तीय सहायता प्रदान करने के बजाए ऋण का सुरक्षित पुनर्भुगतान होने की संभावना वाली परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदाय करने में ज्यादा रूचि रखते हैं।
- शासकीय योजनाओं के लक्ष्य आपूर्ति का आंकड़ा शासकीय मशीनरी के लिए पुरूस्कार और दण्ड दोनों का काम करता है। जब बैंकिंग संस्थानों और विकासखण्ड कार्यालयों को अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करना होता है तो वे आनन-फानन में व्यवसाय का निर्धारण और

* प्राचार्य, विद्या देवी शुक्ला महाविद्यालय, जुन्नारदेव, जिला छिन्दवाडा (म.प्र.) भारत

स्वरोजगारियों का चयन कर लेते हैं। परिणामस्वरूप ठोस तार्किक आधार न होने के कारण या तो उद्यमी असफल हो जाता है या व्यवसाय घाटे का सौदा हो जाता है।

नवीय सभ्यताओं के विकास के मुख्य कारक उपजाऊ भूमि, जल की उपलब्धता, मैदानी भाग, प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता और संचार सुविधाओं के विकास की गुंजाइश कहे जा सकते हैं। बात जब ग्रामीण विकास के संदर्भ में हो तो कृषि एवं उससे संबंधित संसाधनों की उपलब्धता, निर्धनता उन्मूलन संबंधी योजनाओं की उपलब्धता तथा प्रयास और ग्रामीण संसाधनों से ग्राम्य विकास में उपयोग को प्रमुखता दी जा सकती है।भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार ग्रामीण आर्थिक गतिविधियाँ रही हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लड़खड़ाने या विकास नहीं कर पाने पर सारे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण विकास की संकल्पना को महात्मा गाँधी के इस विचार से बल मिला कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है और जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा एवं गाँव पुन: आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक देश का विकास नहीं हो सकता।

इंदिरा आवास योजना :

- ग्रामीण मजदूरों और निर्धनों के साथ औसतन यह स्थिति होती है कि उन्हें रोज श्रम-मूलक कार्यो को सम्पन्न करके भरण-पोषण की व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें मजदूरी गंवाने के साथ-साथ आने जाने में जेब से पैसा खर्च करना पड़े तो स्वरोजगार के प्रति उनकी अरूचि बढ़ने की आशंका बनी रहती है।
- उत्तरदाताओं की रिश्वत देने की स्वीकारोक्ति अभी भी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की खामियों को उजागर करती हैं, एवं इसे दूर करने के समुचित उपाय खोजने के लिए समाज वैज्ञानिकों/शोधार्थियों के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करती हैं।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना :

- वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के इस समय में जहां उत्पादन उपभोग, विनिमय एवं वितरण से संबंधित सभी आर्थिक गतिविधियों को बाजार शक्तियों के द्वारा संचालित किये या करवाये जाने का प्रयत्न किया जाता है; रोजगार गारण्टी कानून या योजना जैसी अवधारणा कुछ अटपटी सी लगती है, क्योंकि खुली अर्थव्यवस्था में रोजगार तो व्यक्ति की योग्यता, काम के प्रति समर्पण, निर्धारित परिणाम दे सकने की क्षमता, कार्य-स्थल पर निरंतर बनी रहने वाली उसकी आवश्यकता, समयानुसार परिवर्तन के प्रति उसकी तत्परता जैसे गुणों पर ही निर्भर करता है या करनी चाहिए। तब ही कड़ी प्रतिस्पर्धा के दौर में विकास व विस्तार की संभावनाएँ भी रह सकती है। दूसरी ओर गरीबी उन्मूलन व रोजगार सृजन हेतु सरकार के दायित्व से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। ऐसे में रोजगार गारंटी कानून सम्बन्धी सरकार की सोच को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता है हाँ इसकी व्यवहारिक उपयोगिता पर बहस अवष्य की जा सकती है।

सुझाव :

- ग्रामीण विकास मंत्रालय की जनकल्याणकारी योजना मनरेगा में हितग्राही कार्य करने में तभी सुविधा महसूस करते हैं जब वे कृषि कार्य से मुक्त हो अथवा उनके स्वयं के व्यवसाय का समय मंदा लग रहा हो।
- योजनानुसार सरकार प्रत्येक परिवार के न्यूनतम एक सदस्य को एक साल में न्यूनतम एक सौ दिन रोजगार उपलब्ध करवाने की गारण्टी देना चाह रही है। यहां प्रश्न उठता है कि क्या सरकार ऐसा कानून बनाकर दरिद्रता निवारण के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है।
- बैंकों और अन्य एजेन्सियों में कार्यक्रम के कार्यान्वयन का भार ऐसे अधिकारियों को सौंपा जाए जो तकनीकि और मानसिक दृष्टि से उसे वहन करने के योग्य है और जिनको ग्रामीण मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी हो।
- स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के माध्यम से जनसंपर्क कोश स्थापित करके योजनाओं को जमीनी स्तर पर वास्तविक रूप से लागू किया जा सकता है।

निष्कर्ष :

- विकासखण्ड कार्यालय या शासकीय एजेन्सियों द्वारा स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के स्वरोजगारियों की पहचान काफी आलोचनायुक्त और एक निश्चित ढर्रे को अपनाने वाली रही है।
- बैंकिंग क्षेत्र आज भी किसी अच्छी परियोजना को वित्तीय सहायता प्रदान करने के बजाए ऋण का सुरक्षित पुनर्भुगतान होने की संभावना वाली परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदाय करने में ज्यादा रूचि रखते हैं।
- हितग्राही मूलक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के यथोचित परिणाम न मिल पाने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि हितग्राहियों को उनके कौशल, क्षमता और रूचि को ध्यान में न रखकर योजना को केवल लक्ष्य प्राप्ति के लिए क्रियान्वित करने पर जोर रहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1 खाखा, डॉ. श्रीमती तरशिला -ग्रामीण विकास, सिंघई पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स रायपुर, 2011
2 कुमार, प्रशांत -धरती की किस्मत का फैसला, गांधीमार्ग (द्वैमासिक), गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, मार्च-अप्रैल 2010, वर्ष -52, अंक 2 ,
3 मालवीय, (राय), डॉ. एस.के. -क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण: ग्रामीण विकास के आयाम,रचना (द्वैमासिक), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, मार्च-अप्रैल 2003,
4 कटारिया, डॉ सुरेन्द्र-ग्रामीण विकास एंव पंचायती राज आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2003

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) Jan. to March 2015, E- Journal
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

प्रसिद्ध कहानियों पर बनी हिन्दी फिल्मों का आकलन

डॉ. मजीद कुरैषी *

प्रस्तावना - सिनेमा और साहित्य ऐसे विषय है जिनपर समय-समय पर कई किताबें व लेख प्रकाशित होते रहें है मगर इन दोनो के संबंधों को प्रगाढ़ता से दिखाने का प्रयास ज्यादा नहीं किया गया है। सिनेमा के विकास मे प्रारंभ से ही साहित्य की अहम भूमिका रही है इसका उदाहरण हम मूक फिल्म राजा हरिशचन्द्र से लेकर देवदास तक देख सकते है कहते है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है भारतीय फिल्में इसी दर्पण की तस्वीर है, क्योंकि दोनो कि प्रेरणा यह समाज ही है। और दोनो ही माध्यमों को अपनी बात कहने के लिए एक दूसरे की मदद लेनी पड़ती क्योकि साहित्य आसानी से आम लोगो के पास पहूँच पाता है। मगर जब साहित्यिक कृतियों को सिनेमा के माध्यम से आम जनता के बीच प्रस्तुत किया जाता है तो कम समय में भी पूरी रचना का रसास्वादन कर पाते है । ओर जब साहित्यिक कृतियों को पर्दे पर उतारनें में दर्शकों की अच्छी प्रतिक्रिया मिलती है तो निर्माता निर्देशक भी इस ओर ज्यादा आकर्षित होते है, क्योंकि साहित्यिक कृतियो पर फिल्म निर्माण करने का जबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उन्हें कहानी पर ज्यादा मेहनता नहीं करनी पड़ती इसलिए भी निर्माता निर्देशक यह रास्ता चुनते है । ओर फिर साहित्य जगत में कुछ ऐसी रचनाएँ उपलब्ध है जिनपर कई बार फिल्में निर्मित की गई ओर वे सभी सफल हुई है।

मगर ऐसी परिस्थितियों में मुख्य रूप से दो पक्ष सामने आतें है एक सकारात्मक ओर दूसरा नकारात्मक। सबसे पहले बात करे सकारात्मक पक्ष की तो कुछ निर्माता निर्देशक ऐसे है जिन्होंने मूल रचना को पर्दे पर ऐसे प्रस्तुत किया कि मूल रचना की अपेक्षा उस पर निर्मित फिल्म ज्यादा सार्थक लगती है। वह इसलिए क्योकि निर्देशक ने पूरी ईमानदारी से मूल रचना की आत्मा को कही नहीं छोडा है, ओर नहीं उसकी मूल संवेदना को चोट पहुचाई है । ऐसे निर्देशकों की संख्या कम ही है जिसमें - विमलाराय,श्याम बेनेगल , सत्यजीतराय,वासू चटर्जी गुरूदत्त का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है उदाहरण स्वरूप हम प्रेमचंद की कहानी शतरंज के खिलाड़ी को ही लेते है जिसे श्याम बेनेगल ने बडी उत्कृष्टता के साथ पर्दे पर प्रस्तुत किया है जिसके कारण इस फिल्म को देश विदेश में अपार सफलता मिली।

भारत में ही नहीं बल्कि शतरंज के खिलाडी के प्रदर्शन बर्लिन ,लंदन, सीऐटल,शिकागो, लॉसएंजीलीस,सेनडियागो, एंडमाटिन, मयामी तथा टोरंटो के अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह हो चुके है। 1

ऐसे ही उदाहरण सारा अकाश, रजनीगंधा, काबली वाला, आदि फिल्मों के साथ जुड़े है। जहाँ एक तरफ इतने गंभीर निर्देशक है वही कुछ ऐसे भी है जो मूल कृति के प्रति सजग नहीं होते है।

अब बात करे नकारात्मक पक्ष की इसमें कई निर्माता निर्देशक ऐसे ही जिन्होंने व्यवसायिक सफलता पाने के लिए मूलकथा में कई परिवर्तन किये जिसके कारण मूल कथा का पूरा स्वरूप ही नष्ट हो गया ओर नहीं वह फिल्म सफल हो पाई तथा निर्देशक को भी चारों तरफ से आलोचना का शिकार होना पड़ा। प्रेमचंद की कहानी मिल मजदूर पर बनी फिल्म को जब प्रेमचंद ने देखा तों उन्होंने रामवृक्ष बेनीपुरी से कहा-

यदि तुम मेंरी इज्जत करते हो, तो यह फिल्म कभी नहीं देखना। यह कहते हुए उनकी आंखे भी नम हो गई थी कर्ज से परेशान था, यहा चला आया। अब लौट रहॉ हूँ, फिर इस कूचे में कदम न रखूँगा, कसम खा ली हैं।2

जब ऐसी स्थिति निर्मित होगी तो शायद ही कोई लेखक अपनी रचना पर फिल्म बनाने की मंजूरी देगा क्योकि कोई लेखक नहीं चाहेगा कि उसके द्वारा रचित पात्रों व कक्षा की हत्या की जाये या उसके स्वरूप को बदलकर पर्दे पर प्रस्तुत किया जाये दोनों उदाहरणों से यह बात साबित होती है कि कुछ निर्माता निर्देशक व्यवसायिक सफलता को महत्व देते है जिसके लिए वे कुछ भी कर सकते है। मगर इतने अतिरिक्त ऐसे निर्माता निर्देशक भी है जिनके लिए व्यवसायिक सफलता कोई मायने नहीं रखती वे सिर्फ सार्थक सिनेमा के समर्थक है। जिसके लिए वे जी जान लगा देते है उनका उद्देश्य यही होता है कि मूलरचनाकार ने जिस मर्म को कहानी में व्यक्त किया गया है, वे उसे प्रस्तुत कर दें बस। जैसे कि देवदास में विमल राय ने किया तथा शतरंज के खिलाड़ी में श्याम बेनेगल ने किया अगर सभी निर्माता निर्देशक इस तरह से सोचे तो निश्चित रूप से सार्थक फिल्में हमें देखने को मिलेगी। अब बात करने उन फिल्मों की जो प्रसिद्ध कहानियों पर निर्मित है। इस संबंध में कुछ निर्देशकों का यह मानना है कि उपन्यास की अपेक्षा कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त होती है इसलिए इस पर फिल्म बनाना मुश्किल है।

साहित्य की एक प्रमुख विधा के रूप मे मूलत: कहानी ने भी सिनेमा और साहित्य के सम्बंधों को उत्तरोतर विकसित एवं पोषित किया है ।

एक उपन्यास की विविध घटनाओं को सिनेमा के माध्यम से सामने लाना सम्भवत: उतना मुश्किल न हो लेकिन कहानी के एक विशेष समय, घटना एवं विविध छोटे-छोटे प्रसंगों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना अपने आपमे काफी दुरूह कार्य हो जाता है । 3

इसके बाद भी हिन्दी कहानियों पर कई ऐसी फिल्में बनाई गई हैं जिन्हें न केवल अपने देश में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया एवं पुरस्कृत किया गया है ।

जैसे कि हमने पहले ही कहा कि कहानी की कथावस्तु बहुत संक्षिप्त होती है इसलिए जब इसे परदे पर उतारा जाता है तो इसके स्वरूप में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है, लेकिन परिवर्तन ऐसा हो जिससे मूल कथानक

* अतिथि विद्वान, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चौरई, जिला छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

की हत्या न हो। कई बार निर्देशक अपनी काल्पनिक दुनिया में इतना खो जाता है कि फिल्म में मूल कहानी के कुछ प्रसंग भर आ पाते हैं और उसकी मूलकथा को सिरे से नकार दिया जाता है। कुछ ऐसा ही किया है उसने कहा था के निर्देशक मौनी भट्टाचार्य जी ने। सभी जानते हैं कि उसने कहा था गुलेरी जी की एक उत्कृष्ट कहानी है जिसमें प्रेम का उदात्त स्वरूप व देश प्रेम की भावना का समन्वय है।

अगर जब यह कहानी फिल्म के रूप में परदे पर आई तो मूलकथा से फिल्म की कथा बिल्कुल विपरीत निकली। साथ ही पात्रों के चरित्र के साथ किये गये परिवर्तनों ने पूरी कथा के रूप को विकृत कर दिया है। ऐसी स्थिति को देखकर कई साहित्यकार नहीं चाहते कि उनकी कृति परदे पर इस रूप में आए कि उसके अर्थ ही बदल जाए। लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है अर्थात् एक पक्ष विकृत है तो दूसरा पक्ष उत्कृष्ट भी है। जहां कुछ निर्देशकों ने कहानी के स्वरूप को बिगाड़ा है, वहीं कुछ ऐसे निर्देशक भी हैं, जिन्होंने मूल कथा में बिना किसी परिवर्तन के अन्य सहायक कथाएं जोड़कर भी एक सार्थक फिल्म बनाने में सफल हुए हैं। जैसे – बासु चटर्जी, श्याम बेनेगल। इसमें सबसे आगे सत्यजीत राय हैं जिन्होंने साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाकर सबसे ज्यादा नाम कमाया है –

प्रेमचंद की प्रसिद्ध हिन्दी कहानी पर आधारित फिल्म शतरंज के खिलाड़ी को ही लें तो निर्देशक सत्यजीत राय ने मूल कहानी के कथ्य को सुरक्षित रखते हुए कहानी के शब्दों में झलकने वाले समय और स्थान विशेष को वैसा ही परदे पर उतार दिया है। प्रेमचंद की इस कहानी को और सशक्त एवं ऐतिहासिक बनाने के लिए उन्होंने कई सामान्तर प्रसंगों का निर्माण किया है। एक युग विशेष की झलक व तत्कालीन परिस्थितियां मूल कहानी में इतनी सामने नहीं आ पाती जितनी कि फिल्म में मुखरित हुई है। 4

इससे यह बात तो साबित होती है कि सभी निर्देशक अगर सत्यजीत राय जैसे फिल्म बनाये तो शायद कई साहित्यकार अपनी कृतियों को परदे पर देखने के लिए उत्सुक होंगे। कुछ निर्देशों का ऐसा मानना है कि उपन्यास की अपेक्षा कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त होती है इसलिए इस पर फिल्म बनाना मुश्किल है – उपन्यास की अपेक्षा कहानियों पर फिल्म बनाना थोड़ा मुश्किल जरूर है मगर नामुमकिन नहीं है। लेकिन कुछ निर्देशकों का मानना है कि उपन्यास की अपेक्षा कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त होती है इसलिए इस पर फिल्म बनाना मुश्किल है –

साहित्य की एक प्रमुख विधा के रूप मे मूलत: कहानी ने भी सिनेमा और साहित्य के सम्बंधों को उत्तरोतर विकसित एवं पोषित किया है। एक उपन्यास की विविध घटनाओं को सिनेमा के माध्यम से सामने लाना सम्भवत: उतना मुश्किल न हो लेकिन कहानी के एक विशेष समय, घटना एवं विविध छोटे–छोटे प्रसंगों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना अपने आपमे काफी दुरूह कार्य हो जाता है। 5

इसके बाद भी हिन्दी कहानियों पर कई ऐसी फिल्में बनाई गई हैं जिन्हें न केवल अपने देश में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया एवं पुरस्कृत किया गया है। हम भी यह मानते है कि कहानी कि कथावस्तु बहुत संक्षिप्त होती है इसलिए जब इसे परदे पर उतारा जाता है तो इसके स्वरूप में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है, लेकिन परिवर्तन ऐसा हो जिससे मूल कथानक की हत्या न हो।

सबसे पहले हम बात करे प्रेमचंद की कहानी दो बेलों की कथा की इस कहानी पर कृष्ण चोपड़ा ने 1959 में हीरा मोती नाम से फिल्म बनाई, जिसे देखकर लगता है कि मुख्य कथा को एक तरफ करके निर्देशक ने अन्य सहायक व काल्पनिक कथाएं जोड़कर फिल्म बना दी है। जबकि मूल कथा दो बैलों की है जो झुरी नामक किसान के पास हैं। एक बार झुरी इन बैलों को अपने साले के यहां भेज देता है लेकिन वे वहां से भागकर वापस आ जाते हैं। फिर से झुरी उन्हें वहीं भेज देता है जहां उनका बहुत अनादर किया जाता है। एक दिन वे वहां से कसाई को बेच दिये जाते हैं मगर वे कसाई से छूटकर अपने घर वापस आ जाते हैं। इस तरह प्रेमचंद ने कहानी को प्रस्तुत किया है।

मगर जब इस पर फिल्म बनाई गई तो इन दोनों बैलों को प्राथमिकता न देकर इसके समानांतर कहानियों को जोड़कर मुख्य कहानी को हासिए पर रख दिया।

निर्देशक ने फिल्म में बहुत परिवर्तन कर दिये हैं। मूल कथानक बैलों पर न जाकर आसपास के प्रसंगों पर बिखर गया है। कई बार तो हीरा–मोती की कथा गौण हो जाती है। झुरी की बहन चम्पा, उसका प्रेमी पशुपति, जमींदार के अत्याचार, मूल कहानी में नहीं है, बैलों की कथा पर उतना वर्णन नहीं है जितना इन नए प्रसंगों का है। 7

इसके कारण फिल्म मूल कथा से बहुत दूर हो गयी है। पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी उसने कहा था आज भी उतनी ही प्रसिद्ध है जितने उस समय थी। हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व कथा साहित्य में इसकी गिनती की जाती है। कहानी की मुख्य विशेषता इसमें निहित आदर्श प्रेम है, जो कथा का प्राण तत्व है, जिसमें पूरी कथा का मर्म छिपा हुआ है। प्रेम का उदात्त स्वरूप जो इस कहानी में गुलेरी जी ने प्रस्तुत किया है, वह अन्य किसी कहानी में अत्यंत ही दुलर्भ है। इस कहानी की अपेक्षा और अन्य कहानी में प्रेम का यह स्वरूप नहीं दिखाया गया है –

गुलेरी जी की इस कहानी में प्रेम कर्तव्य, युगबोध आदि जितनी मार्मिक व्यंजना यहां हुई है। वैसी अन्यत्र दुलर्भ है। इस कहानी में मांसल प्रेम की दुर्दमानीय लालसा नहीं है, कुछ कटाक्ष की वाणी नहीं है और न हिस्टीरिया के प्रेम जैसा उन्माद है। यहां बहुत ही पवित्र और निर्दोश प्रेम है, जहां वासना का नाम तक नहीं है। 8

इस कहानी पर सन् 1960 में मौनी भट्टाचार्जी ने इसी नाम से फिल्म बनाई। लेकिन फिल्म को देखकर लगता है कि वो कहानी को समझे ही नहीं है। उन्होंने पूरी कहानी का जिस तरह से फिल्मीकरण किया है उसे देखकर लगता ही नहीं कि यह हिन्दी की अमर कहानी उसने कहा था है। उन्होंने कहानी के मूल तत्व को ही इतने हल्के स्तर पर रखा है कि जिस प्रेम का आदर्श रूप हम कथा में देखते हैं वह कहीं नजर ही नहीं आता है। पात्रों के साथ हुए परिवर्तन ने पूरी कथा की आत्मा को नोच डाला है। ऐसी मार्मिक कहानी जिसमें प्रबल भावनाएं और प्रेम अपने उदात्त रूप में हमारे सामने आता है वह फिल्म में कहीं है ही नहीं। इस संदर्भ में उदाहरण स्वरूप यह लेख देखिये–

प्रस्तुत कहानी पर इसी नाम से सन् 1960 में विमलराय प्रोडेक्शन के अंतर्गत निर्देशक मौनी भट्टाचार्जी ने फिल्म का निर्माण किया। हिन्दी के सबसे सशक्त कहानी का यह फिल्मी रूपांतरण इतना विकृत हुआ है कि कहानी का मूल संदेश कहीं पार्श्व में चला गया है। 9

इस तरह निर्देशक ने पूरी कथा के रूप को बिगाड़ दिया है। कहानी के पात्रों के नाम बदलने से उनकी भूमिकाएं कृत्रिम लगती हैं। लहनासिंह को दर्शक नंदू के रूप में स्वीकार ही नहीं कर पाये हैं और न ही कमली को। और साथ में जोड़ी गई काल्पनिक कथाएं बिल्कुल परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि इस फिल्म में उसने कहा था कहानी का एक मात्र अंश भी नहीं है।

ऐसी ही एक प्रसिद्ध कहानी है काबुली वाला जो नोबल पुरस्कार विजेता गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित है। उनकी यह कहानी लगभग 18892 के लगभग रची गई है। जिसमें सन 1981 में हेमेन गुप्ता ने इसी नाम से फिल्म बनाई। जिसमें मुख्य किरदार के रोल में बलराज साहनी को लिया। वैसे तो मूल कहानी बहुत संक्षिप्त है जिसके कारण इसमें कुछ सहायक पात्र व कथाएं भी जोड़ी गई है लेकिन इन सहायक कथाओं व पात्रों के जोड़ने से कथा की मूल संवेदना को जरा भी फर्क नहीं पड़ता है। बल्कि इससे कई दृष्य स्पष्ट होकर सीधे दर्शक के मन में उतरते हैं।

एक तो हेमेन गुप्ता का निर्देशन और निर्माता के रूप में सहयोगी विमलराय जैसा सार्थक सिनेमा का रचयिता। इन दोनों ने मिलकर जब काबुलीवाला को परदे पर उतारा तो यह काबुलीवाला भारतीय सिनेमा पर हमेशा के लिए जीवंत होगा। इसके साथ-साथ बलराज साहनी का लाजबाव अभिनय व सलिल चौधरी का कर्णप्रिय संगीत भी फिल्म की सफलता का मुख्य आधार माने गए।

इसलिए फिल्म को सभी ने बहुत सराहा व इस फिल्म की ख्याति अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक फैल गई, जिसके कारण इसे कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

विमलराय ने टैगोर की विश्व विख्यात कहानी काबुलीवाला पर इसी शीर्षक से फिल्म बनाई। सलिल चौधरी इसके संगीत निर्देशक थे। कई अंतर्राष्ट्रीय फिल्मोत्सव में इसे पुरस्कृत किया गया।10

अगली कहानी के रूप में हम तीसरी कसम को लेगें जो फणीश्वर नाथ रेणु के द्वारा लिखी गई है।जब इस कहानी पर बासु भट्टाचार्य ने शैलेन्द्र के साथ मिलकर फिल्म बनाई तो फिल्म की शुरूआत से अंत तक कई ऐसी घटनाएं हुई जो फिल्म के लिए महत्वपूर्ण है। जैसे पहले तो फिल्म की नायिका का ना मिलना, क्योंकि निर्देशक चाहते थे कि,फिल्म के लिए उसे किसी लड़की की नहीं बल्कि बड़ी-बड़ी आंखों वाली किसी खूबसूरत औरत की तलाश थी। एक ऐसी परिपक्व औरत, जिसकी अनुभवी आंखे किसी पौढ़ व्यक्ति के कुमार-हृदय में पहली ही नजर में कशमाकश पैदा कर दे। उस औरत की तलाश में मेरे जैसे अपने साथियों के साथ वह गली-गली डोलता फिरा।11

इस तरह बाद में वहीदा रहमान पर आकर तलाश खत्म हुई। मगर फिर राजकपूर के पास समय न होने के कारण फिल्म सही समय पर प्रारंभ नहीं हो पाई लेकिन कुछ समय बाद फिल्म का निमार्ण प्रारंभ हुआ। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि मूलकथा में परिवर्तन जरूर किये जाते हैं। अत: इस बात पर भी रेणु बहुत चिंतित थे, मगर जब उन्हें पता चला कि पटकथा नवेन्दु घोष लिख रहे हैं तो उन्हें काफी राहत मिली।

रेणु के लिए अगर संतोष की कोई बात थी तो सिर्फ यह कि तीसरी कसम का पटकथा लेखक काफी गंभीर किस्म का आदमी था, नाम था नवेन्दु घोष। उम्र पचास के पार। पटकथा- लेखन ही नहीं, उपन्यास और कहानियों की दुनिया में भी मशहूर।12

इस तरह फिल्म की शुरूआत हुई। फिल्म में कई ऐसे दृष्य हैं जो मूल कहानी में बिल्कुल नहीं हैं लेकिन जब नये दृष्य व घटनाएं इसमें जोड़े गये तो वे भी कहानी के हिस्से बन गये। जैसे खासतौर पर जमींदार विक्रमसिंह की भूमिका कहानी में बिल्कुल नहीं है लेकिन इसे जोड़कर निर्देशक यह बताने का प्रयास करता है कि हीराबाई जमींदार से परेशान होकर ही यहां से जा रही हैं क्योंकि मूल कहानी में हीराबाई के वापस जाने का कोई सटीक कारण समझ में नहीं आता है। विक्रमसिंह की कथा जोड़कर निर्देशक ने एक कारण बताया कि हीराबाई क्यों जा रही है। इस तरह फिल्म को प्रस्तुत किया गया है जिससे मूलकथा का स्वरूप भी नहीं बिगड़ा है। इस तरह के परिवर्तन कर फिल्म बनाई गई मगर कथा की आत्मा को निर्देशक ने जरा भी चोट नहीं पहुचांई है। इसलिए यह एक उत्कृष्ट फिल्म बन पाई। लेकिन इसके साथ एक दु:खद घटना भी जुड़ी है -

शैलेन्द्र की असामयिक मौत की मुख्य जिम्मेदार इस फिल्म ने टिकट खिड़की पर पूरी असफल रहने के बावजूद जितना नाम कमाया, वह अब इतिहास की चीज बन चुका है - भले ही पैसा कमाने की दिशा में वह पूरी तरह नाकाम ही क्यों न सिद्ध हुई हो।13

परिणाम चाहे जैसे भी मगर फिर भी फिल्म देखकर नहीं लगता कि यह निर्देशक की पहली फिल्म है। निर्देशक पूरी गंभीरता के साथ कथा को उसके सार्थक रूप में प्रस्तुत किया है। निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने मूल कहानी को फिल्म में इतनी जीवंतता प्रदान की है कि व्यक्ति इतना आनंद कहानी को पढ़कर नहीं ले पाता, विशेष बात यह कि कहानी को तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है। उसके भावों और विचारों को और सार्थकता प्रदान की गई है।

ऐसे कम ही निर्देशक हैं जो किसी साहित्यिक कृति को फिल्म का रूप प्रदान करने में उतनी ही गंभीरता दिखाते हैं, जितनी कि मूल लेखक ने उस कृति के प्रति गंभीरता रखी है। ऐसे निर्देशक बहुत कम हैं जो साहित्यिक कृति को उसी रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम हैं, जिन्हें फिल्म की सफलता और उसके व्यापार से कोई लेना-देना नहीं है। वह तो सिर्फ यह देखते हैं कि जिस कृति को परदे पर उतारा जा रहा है वह मूल कृति के कितने करीब है। मूल कहानी की तरह फिल्म में वे भाव आए है या नहीं, जो कहानी के प्राणतत्व हैं अर्थात् मूल कथा के वास्तविक स्वरूप को परदे पर प्रस्तुत करना ही एक सच्चे निर्देशक का दायित्व होता है।

ऐसे ही निर्देशक हैं सत्यजीत राय। जिन्होंने भारतीय सिनेमा को विश्व पटल पर एक पहचान दिलाई है। जब इन्होंने प्रेमचंद की एक संक्षिप्त सी कहानी शतरंज के खिलाड़ी पर इसी नाम से फिल्म बनाई तो उन्होंने मूल कथा के साथ कुछ सहायक कथाएं जोड़कर मूलकथा को ज्यादा सशक्त व प्रमाणित बना दिया। इस संदर्भ में यह प्रसंग उल्लेखित किया जा सकता है -

युग साहित्यकार प्रेमचंद की तरह राय भी भारतीय सिनेमा के युग निर्देशक हैं और यह स्वाभाविक ही है कि एक युग साहित्यकार की साहित्यिक कृति को एक युग निर्देशक फिल्माने की बात सोचता है तो अवश्य ही उसमें वह बहुत सी चीजें देखता है जो एक सम्पूर्ण युग से जुड़ी है और जिनका प्रभाव भारतीय जनमानस पर व्यापक रूप से पड़ा है। अवश्य ही वे मूलभूत तत्व रहे होंगे जिन्होंने सत्यजीत राय को अपनी ओर आकर्षित किया। 14

सत्यजीत राय ने पूरी कहानी का सूक्ष्म अध्ययन कर उसमें जो सहायक घटनाएं जोड़ी हैं वे कथा का ही हिस्सा लगती है। जैसे प्रारंभ में ही उन्होंने जनरल औट्रंम की भूमिका को जोड़कर यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह अंग्रेज भारतीय राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाने का प्रयास कर रहे हैं। इस कथा के जुड़ने से पूरी कहानीकी एक पृष्ठभूमि तैयार कर उन्होंने फिल्म को आगे बढ़ाया है जिससे आगे की कथा वास्तविक लगती है। शायद इसी कारण यह फिल्म मूल कहानी से ज्यादा आकर्षक लगती है। सत्यजीत राय पूरी फिल्म को ही इसी तरह सूक्ष्मता के साथ देखते हैं। छोटे-छोटे दृष्यों पर भी उन्होंने खूब मेहनत की है। जिसका परिणाम यह हुआ कि फिल्म को अपने देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी खूब सराहा गया है -

सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की कहानी को फिल्म के माध्यम से ऐतिहासिक बना दिया है। दृष्य माध्यम का ईमानदारी से प्रयोग करते हुए उन्होनें साहित्यिक कृति को सैल्युलाईट साहित्य में परिवर्तन कर दिया है। भारत में

ही नहीं बल्कि शतरंज के खिलाड़ी के प्रदर्शन बर्लिन, नंदन, सीऐटल, शिकागो, लॉस एंजीलीस, सेनडियागो, एंडमाटेन, मयामी तथा टोरंटो के अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में हो चुके हैं।15

इस उदाहरण से फिल्म की गुणवत्ता का पता चलता है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि अगर मूल कथा के प्रति आप गंभीर चिंतन कर उसके मर्म को समझकर उसमें सहायक कथाएं जोड़ते हैं तो उससे मूल कृति को कोई हानि नहीं होती है। यही सत्यजीत राय ने किया है। उन्होंने आम फिल्मकारों की तरह कहानी के बाह्य स्वरूप को नहीं देखा बल्कि कहानी में छिपी कहानी को भी समझा है और उस छिपी कहानी को सहायक कथा के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इस कड़ी की अगली फिल्म रंजनी गंधा है जो यही सच है कहानी पर निर्मित हुई है कहानी की लेखिका मनु भंडारी है तथा इस फिल्म को वासू चटर्जी ने निर्देशित किया है यही सच है कहानी में मुख्य रूप से प्रेम की समस्या को बताया गया है कि कौन सा प्रेम सही है, वह प्रेम जो कि कच्ची आयु में भावावेश में किया जाता है या कि वह प्रेम जो व्यक्ति बालिग होने पर करता है। इसी द्वंद को लेकर ताना-बाना बुना गया है और एक बार दोनों को ही सच दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी बात को लेकर कथानक आगे बढ़ता है। अंततः बालिग होने पर किया गया प्रेम ही सच माना जाता है।

निर्देशक ने फिल्म को उसी शैली में बनाया है जिस शैली में कहानी लिखी गई। वैसे यह आम प्रेम कहानी से थोड़ी अलग है। ऐसी कथा पर फिल्म बनाना जरा मुश्किल होता है, क्योंकि ऐसे विषयों पर अभिनय उत्कृष्ट कोटि का होना चाहिये क्योंकि कई स्थानों पर संवादों के स्थान पर खामोशी बोलती है। ऐसे दृश्य इस फिल्म में कई स्थानों पर आते हैं जहां नायिका अपने विचारों में खोयी रहती है। ऐसी स्थिति में नायिका के चेहरे की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से ही उसके मन में चल रहे द्वंद को निर्देशक ने दिखाया है, जिसमें निर्देशक सफल भी हुआ है। जिस तरह दीपा का स्वभाव है, उसे निर्देशक ने खूब समझा है व उसके अनुसार ही परदे पर दिखाया कहना होगा कि निर्देशक ने बिना किसी परिवर्तन के कहानी को परदे पर उसी शैली में उतारा है, जिस डायरीनुमा अंदाज में कहानी लिखी गई। और खास बात यह है कि दीपा के मन में जिस तरह के द्वंद चलते हैं, निर्देशक उन्हें दिखाने में सफल हुआ है। इसके साथ ही संजय की भूमिका भी यथावत है। बस निशीथ के साथ कुछ काल्पनिक कथाएं जोड़ दी गई है लेकिन इससे कहानी की आत्मा को आघात नहीं लगता है। शायद इसलिए इस फिल्म को सफलता के साथ पुरस्कार भी मिले हैं -

रजनीगंधा को तत्काल सफलता मिली, उसे कई पुरस्कार मिले। उसे फिल्म फेयर का मुख्य फिल्म और पटकथा के लिए सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिले। यह एक पहली मुख्य फिल्म थीजो बंबई तथा अन्य शहरों में 25 सप्ताह से ज्यादा चली।16

निष्कर्ष - सम्पूर्ण फिल्मों के आंकलन के पश्चात् जो निष्कर्ष सामने आता है वह यह कि जहां एक तरफ कुछ निर्देशकों ने साहित्यिक कृतियों पर इतनी उत्कृष्ट फिल्मों का निर्माण किया है कि वे आज राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराही जा रही है और दूसरी तरफ कुछ ऐसे निर्देशक भी हैं जिन्होंने साहित्यिक कृति का नाम लेकर उस कथा के साथ इंसाफ नहीं कर पाए हैं तथा फिल्म को सफल बनाने के लिए कथानक को ही बदल दिया, जिससे उसकी मौलिकता नष्ट हो गई। ऐसे परिणामों को देखते हुए साहित्य जगत से आवाज उठती है कि साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने की इजाजत न दी जाए। लेकिनयह भी संभव नहीं है क्योंकि कुछ ऐसे निर्देशक हैं जो कि साहित्यिक कृतियों पर उत्कृष्ट फिल्में निर्मित करते रहे हैं जैसे श्याम बेनेगल, सत्यजीत राय, विमल राय, बासु भट्टाचार्य, बासु चटर्जी इन निर्देशकों के कारण ही भारतीय सिनेमा को विश्व सिनेमा में स्थान मिला है।

और इन्होंने जितनी भी साहित्यिक कृतियों पर फिल्में बनाई हैं वे सब सफल व उत्कृष्ट फिल्में हैं। जिन्होंने मूल कथानक व लेखक के भाव को मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। ऐसे निर्देशक सिर्फ अपना काम ईमानदारी से करना जानते हैं और पूर्णतः समर्पित भाव से सार्थक सिनेमा का सृजन करते हैं।

यह बात पूर्णतः सत्य है। इसका उदाहरण हम उनकी फिल्मों में साफ देख सकते हैं। इससे यह लगता है कि इस तरह अगर सभी निर्देशक सोचने लगे तो सार्थक फिल्में दर्शकों को देखने को मिलेगी। क्योंकि मूलकथाकार भी यही चाहता है कि निर्देशक जिस कहानी या उपन्यास को लेकर फिल्म बना रहा है उसमें सम्मिलित सभी घटनाओं का न दिखाकर सिर्फ कथा की आत्मा के मर्म को प्रस्तुत कर दे तो भी सही होगा। यही साहित्यकार चाहता है -

साहित्यिक कृति पर फिल्म बनाई जाए तो निर्देशक न केवल उसकी प्रमुख थीम को उभार दे वरन उसके मर्म पर भी उंगली रख दे। वरना साहित्यिक कृति को फिल्माने की क्या जरूरत है।

इस उदाहरण से यह तो पता चलता है कि जब निर्देशक को मूलकथा में परिवर्तन कर उसके स्वरूप को बिगाड़ना ही है तो साहित्यिक कृतियों को लेने की क्या जरूरत है। सम्पूर्ण शोध में यही अवलोकन किया गया है कि जितनी रचनाओं पर फिल्में निर्मित हुई हैं, वे मूल कथा के अनुरूप हैं या उसके विपरीत हैं ? और किस और किस निर्देशक ने मूल कथा को सजीवता प्रदान की है। इसके परिणाम सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही है जिनका उल्लेख हम पूर्व में कर चुके हैं, जिससे पता चलता है कि कुछ निर्देशकों ने इतनी सार्थक व कलात्मक फिल्मों सृजन किया है कि दर्शक उन्हें आज भी नहीं भूले हैं तथा ऐसी फिल्मों ने भारतीय सिनेमा को विश्व सिनेमा के रजत पट पर एक नई पहचान दिलाकर यह साबित कर दिया है कि भारत भी सार्थक सिनेमा व उच्चकोटि की फिल्में निर्मित कर सकता है। अगर इस तरह से ही साहित्यिक कृतियों को निष्ठापूर्वक परदे पर निर्देशक उतारते हैं तो निश्चित रूप से लेखक यह चाहेगा कि उसके लिखित पात्र परदे पर जीवित रूप में नजर आएं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ.क्र.122
2. सिनेमा के सौ बरस, रामवृक्ष बेनी के लेख से ,सं.मृत्यंजय शिल्पायन प्रकाशन,दिल्ली पृ.क्रं. 7
3. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ.क्र. 84-
4. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ.क्र. 85
5. सिनेमा ओर साहित्य, हरीषकुमार, संजय प्रकाशन , दिल्ली , पृष्ठ क्रमांक 84
6. सिनेमा ओर साहित्य, हरीषकुमार, संजय प्रकाशन , दिल्ली , पृष्ठ क्रमांक 85
7. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ.क्र. 108
8. सिनेमा और साहित्य, ले. - हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ.क्र. 110
9. वही पृ.क्र. 111

10. सिनेमा और साहित्य ,हरीषकुमार,संजयप्रकाशन, दिल्ली पृ. 74
11. फिल्म जगत में अर्धसती का रोमांच, रामकृष्ण, भारतीय ज्ञानपीठ नई-दिल्ली पृ. 72
12. फिल्म जगत में अर्धसती का रोमांच, रामकृष्ण, भारतीय ज्ञानपीठ नई-दिल्ली पृ. 72,73
13. सिनेमा ओर साहित्य हरीश कुमार , संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ.क्रमांक 114
14. सिनेमा और साहित्य लेखक, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ. 116
15. वही पृ. 112
16. सारा अकाश : पटकथा , राजेन्द्र यादव व वासु चटर्जी, राज कमल प्रकाशन दिल्ली पृ. क्रं. 9
17. फिल्म जगत में अर्धशती का रोमांच ,रामकृष्ण,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नईदिल्ली।
18. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन सोम बाजार दिल्ली।
19. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियां, प्रेमचंद, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
20. सिनेमा और साहित्य, राही मासूम रज़ा, वाणी प्रकाशन दिल्ली।
21. दो बैलों की कथ, प्रेमचंद, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा.लि. दिल्ली।
22. काबुलीवाला, रवीन्द्रनाथ टैगोर, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा.लि. दिल्ली।
23. तीसरी कसम, फणीश्वरनाथ रेणु मेघा बुक्स नवीन शाहदरा दिल्ली।
24. शतरंज के खिलाड़ी प्रेमचंद,लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
25. यही सच ह,मन्नू भंडारी,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली।
26. सिनेमा के सौ बरस, रामवृक्ष बेनीपुरी, सं.मृत्यंजय शिल्पायन प्रकाशन,दिल्ली।
27. सारा अकाश: राजेन्द्र यादव व वासु चटर्जी, राज कमल प्रकाशन दिल्ली।

****

सामाजिक चेतना के कारकों के निर्धारण में वैश्वीकरण का प्रभाव

डॉ. उमेद प्रसाद विश्वकर्मा *

शोध सारांश - परिवर्तित होते विश्व वैश्विक परिदृश्य में सामाजिक मूल्य और मान्यताऐ, परम्पराएं और संस्थाएं भी परिवर्तित हो रही हैं जिसका न्यूनाधिक अनुभव हम सभी को रहा है। वैश्वीकरण ने परिवर्तन कि प्रक्रिया को सुदृढ़नाया इसे मानवीय प्रगति के विभिन्न आयामों का बहुआंगी प्रस्तुतीकरण माना जा सकता है। वैश्वीकरण की बहुआयामी प्रक्रिया ने सीधे तौर पर तो आर्थिक गतिविधियों सहित अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया किन्तु समाज और राज्य और संस्कृति के अन्र्तसम्बन्धित पहलुओ को गहराई तक छुआ है। वैश्वीकरण के सामाजिक पहलू का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जीवन स्तर आय, रोजगार, संस्कृति एवं इन सबसे ऊपर राष्ट्र की स्वयं की पहचान से जुड़ा है। आज भारतीय समाज एक उपभोग समाज का रूप ले रहा है। बिजली, सड़को का जाल, संचार का साधन, खान-पान, पहनावा आदि सब बदल रहे है। साथ ही युवा वर्ग किसी नए विचार आदतों एवं व्यवहार को अपनाने और किसी भी पुराने विचार को त्यागने के लिए उत्सुक रहता है।

प्रस्तावना - आज हम वैश्वीकरण के युग में जी रहे हैं एक छोटे से ग्राम में बदलते विश्व की भौगोलिक दूरियां सिमट रहीं हैं। संचार क्रांति के कारण फलस्वरूप सम्प्रेषण बढ़ गया है। और तीव्रता से राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिएवं सामाजिक वैश्वीकरण हो रहा है। वैश्वीकरण द्धारा जहां विश्व बाजार आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं मल्टीमीडिया, प्रौद्योगिकी एवं संस्कृति आदि का एकीकरण अन्तर्वेशण हो रहा है। वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व में बढ़ी हुई सामाजिक, सांस्कृतिक अन्तर्सम्बन्धता का द्योतक है। सामाजिक, सांस्कृतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया एकपक्षीय नहीं है विभिन्न टीवी चैनल, इन्टरनेट, मोबाईल फोन, पेपर, फैक्स, कम्प्यूटर, दृश्य-श्रृव्य माध्यम सामाजिक, सांस्कृतिक वैश्वीकरण के सशक्त संवाहक हैं। विश्व संगीत, कला, खेलकूद, साहित्य धर्म सम्मेलनों, विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता सामाजिक, सांस्कृतिक वैश्वीकरण की तीव्रता प्रदान की है। वैश्वीकरण ने प्रत्येक देश में ज्ञान-विज्ञान के असंख्य द्धार खोल दिये है। नि:संदेह यह एक सुखद स्थिति है। परन्तु जब हम अपने समाज की ओर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है गांधी जी का कथन है वे अपनी घर की चारों तरफ की खिड़कियों को खुला रखना चाहेंगे ताकि हर ओर से नई हवायें और नए विचार उनके देश में निर्वाध प्रवेश पा सकें। भूमंडलीकरण के पश्चात भारतीय समाज में एक प्रकार से खुलापन आया है।

उद्देश्य - प्रस्तुत शोध-पत्र में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है वैश्वीकरण से मनुष्य ने चाहे जितनी भी भौतिक सम्पन्नता हासिल कर ली हो परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि उसके अस्तित्व, अस्मिता, जीवन मूल्य एवं मान्याताओं का क्षरण हो रहा है। व्यक्ति उत्पादन का यंत्र बन गया है। मानवीय रिश्ते संवेदनशील एवं सामाजिक सरोकार जैसे प्रश्न बेमानी हो गये हैं। भौतिक आयामें में व्यक्ति अपनी आस्था ढूंढ रहा है अधिकाधिक धनार्जन के लोभ में मनुष्य को कुछ भी करने के लिए विवश कर दिया है। जिसका परिणाम हमें हिंसा, पीडा, हताशा, आत्म हत्या, अपराध, भ्रष्टाचार, पशुता और बर्बरता के रूप में दिखाई पड़ रहा है। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य हो गया है मात्र पैसा। जिसकी शाश्वत पिपासा में वह निरन्तर भागता जा रहा है। उसके जीवन में कहीं विराम नहीं और विश्राम नहीं है। वैश्वीकरण के माध्यम से देशज समाज में किस प्रकार के परिवर्तन घटित हुए ? साथ ही सांस्कृतिक बहुलता, भाषा, बोली, भारतीय राष्ट्र राज्य, गरीब, पिछडे वंचित महिलाओं, मजदूर किसान, उद्योग, गांव, शहर, धर्म, व्यवहार, शिक्षा आदि के सम्बन्ध में या कोई उल्लेखनीय बदलाव प्रकट हुआ है।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध अध्ययन द्धितीयक समंको पर आधारित है। पुस्तकालय अध्ययन, इंटरनेट, समाचार पत्र-पत्रिकाओं के प्रयोग सहायता द्धारा शोध पत्र को तथ्य परक बनाया गया है।

सामाजिक चेतना के कारक एवं वैश्वीकरण - दुनिया में 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में वैश्वीकरण की संकल्पना सामने आयी। यह राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन के विश्वव्यापी समायोजन की एक प्रक्रिया है। इसने सामाजिक संरचना के समस्त अवयवों अर्थात परिवार, विवाह, नातेदारी, जाति, धर्म, दर्शन, मूल्य-नीति, परम्परा आदि को प्रभावित किया है।[1] वैश्वीकरण के सामाजिक कारकों के प्रभाव को हम इस तरह समझा जा सकता है कि यदि कोई बडी नदी अपने मार्ग में चलते हुए कई सहायक छोटी नदियों को अपने में समाहित करते हुए चलते समय उनको जस की तस स्वीकारती है इससे हो सकता है कि उन छोटी सहायक नदियों का प्रदुषित जल उस बडी नदी के बडे आयतन को भी प्रदुषित करता हो या उस बड़ी नदी का बड़ा प्रदुषित आयतन उस छोटी साफ सुथरी नदी के जल को प्रदूषित करता हो किन्तु एक बार मिल जाने पर वे इस तरीके से घुल मिल जाती हैं कि उन्हें अलग-अलग करके देखना सम्भव नहीं होता। ठीक इस प्रकार जब सूचना प्रौद्योगिकी और संचार के साधनों जैसे बृहद जन माध्यम उन्मुक्त आकाश के जरिए राष्ट्रो भौगोलिक सीमाओं को बिना किसी बाधा के लांघकर सम्पूर्ण सारभौम में विचरित होते हैं तो ऐसा सोचना बेमानी होगी कि केवल उसके सकरात्मक परिणामों का प्रभाव हो और नाकारात्मक परिणाम बिल्कुल न हो।

परिवार - वैश्वीकरण का सबसे अधिक प्रभाव जहां हुआ है वह है भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास इसने सामाजिक संरचना के प्रमुख अवयवों से संयुक्त परिवार, नातेदारी व्यवस्था, जाति व्यवस्था सभी को प्रभावित किया है[2]। वैश्वीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न औद्योगिकरण

* अतिथि विद्वान (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

ने मनुष्य को अर्थोपार्जन के लिए निवास स्थान से जिले प्रदेश और राष्ट्रों की सीमा लांघकर प्रवजन पलायन गतिशीलता हेतु प्रेरित बाध्य किया है। महानगरों के इर्द-गिर्द विकसित उद्योगों के कारण परिवार के साथ प्रवास करने के साथ में असमर्थ हुआ या संयुक्त परिवार से निकलकर अपने एकल परिवार के साथ जाने के लिए बाध्य हुआ। एलीन रॉस ने नगरीय हिन्दु परिवारों में संरचनात्मक स्वरूप के विखण्डन पैदा होने का विश्लेषण निम्न आधारों पर किया है[3]।

- परिवार का स्वरूप पारम्परिक संयुक्त परिवार से एकल इकाइयों की ओर प्रवृत्त हुआ है।
- लघु संयुक्त परिवार पारिवारिक जीवन का प्रारूपिक स्वरूप है।
- वर्तमान समय में बहुत बडी संख्या में लोग अपने जीवन का कम से कम एक हिस्सा एकल परिवारों में व्यतीत करता है।
- वर्तमान पीढ़ी के लिये दूर के रिश्तेदार कम महत्व के है अपेक्षाकृत उनके जो माता-पिता एवं दादा के लिये होते थे।
- शहर में रहने वाला पुत्र सभी रिश्तेदारों से दूरी की दृष्टि से अधिक पृथक हो गया है।

वहाँ की औद्योगिक संस्कृति महानगरीय शिक्षा और संस्कारों के तहत उनकी सन्तानों का समाजीकरण महानगरीय मूल्यों और मान्यताओं के आधार पर होने लगा वहां उनकी आर्थिक प्रगति, शैक्षणिक विकास, जीवन स्तर की गुणवत्ता में वृद्धि तो निश्चय हुई किन्तु उन्हें आपसी रक्त सम्बन्धों, भावात्मक लगाव और ग्रामीण जीवन की मौलिकता से अछूता रहना पड़ा फिर कामकाजी व्यस्तताओं की वजह से उनका लगातार अपने मूल-निवास पर आना जाना कम होने लगा।

यहाँ तक की शादी और मृत्यु संस्कारों में भी आ पाना नगण्य सा हो गया। इस बीच महानगरीय संस्कृति के पोषण के चलते उनकी जातीय और वर्गीय चेतना शिथिल पडकर उनमें अन्तर्जातीय विवाह प्रारंभ हो गये, विवाह संस्कार न रहकर एक उत्सव मात्र रह गया है। प्रेम विवाह की संख्या बढ़ रही है, अधिक आयु में विवाह का प्रचलन बढ़ रहा हैं। कैरियर की महत्वकाक्षाओं , आर्थिक प्रगति का जज्बा और कार्य आधिक्य से उन्हें थकान, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन उच्च रक्तचाप का शिकार होना पड़ा इस पर यदि उसके जीवन साथी भी कार्यशील महिला हो तो दोनों की कैरियर महत्वकांक्षाओं प्रबल हो तो तलाक के मामले में वृद्धि दिलाई देती है।

वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण परिवार के कार्यो (प्रकार्यो) में भी परिवर्तन आया है इसके अंतर्गत सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यो में भी परिवर्तन दृष्य है। क्योंकि आजकल परिवार के द्वारा अपने सदस्यों को सदियों से उतना लाभप्रद नही समझा जाता। पहले परिवार ही अपने सदस्यों का सामाजीकरण करने एवं प्रथाओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा अपनी संस्कृतियों से परिचित कराने का कार्य करते है किन्तु अब यह कार्य उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है। अब तो परम्परावदिता के स्थान पर आधुनिकता का प्रभाव और व्यवहार के नवीन प्रतिमानों का महत्व बढ़ता जा रहा है। [4]

निष्कर्षत: वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जहाँ एक ओर पारिवारिक बंधनों को ढीला किया संयुक्त परिवार प्रथा को एकांकी परिवार में तब्दील किया है भावनात्मक लगाव को शिथिल कर व्यवहारिक सोच प्रदान की है वही इसकी ओर शैक्षणिक विकास व्यक्तिगत उपलब्धियों को हासिल करने की प्रेरणा और आर्थिक सशक्तता प्रदान की है।

किसी भी समाज का युवा वर्ग किसी भी नवाचार और परिवर्तन को सहज अपनाने के लिए वह सदैव उत्सुक रहता है परिपक्वता के अभाव में हो सकता है कि वह लाभ-हानियों की गणना करने में असफल रहें किन्तु जुनून, जोश, ऊर्जा से भरपूर युवा उसे अपनाने का जोखिम उठाते है। आज निगमीय संस्कृति कार्यशैली और जीवन शैली को तेजी से अपनाती भारतीय युवा पीढ़ी कई तरह की समस्याओं से त्रस्त है। दुनिया की इस भाग-दौड़ में वह पिछड़ना नहीं चाहती है बल्कि अपने दोनों हाथों में सब कुछ समेट लेना चाहती है और इस चूहा दौड़ में पिछड़ जाने पर वह तमाम तरह के तनावों एवं अवसाद का भी शिकार हो रही है।[5]

भूमण्डलीकरण ने जहां एक ओर किसान, मजदूर और निम्न आय वर्ग को मुसीबत में डाला है वही दूसरी ओर उसकी चमक-दमक में खोया रहने वाला उच्च, और मध्यम वर्ग के लिए भी दूसरी तरह की समस्याऐं पैदा की है। यथा अवसाद, आत्महत्या, एकाकीपन संदेह तनाव आदि । इसी बारे में बोर्दियों विकसित मुल्को मे वैश्वीकरण के दुष्परिणाम को रेखांकित करते हुये कहते हैं कि- विकसित मुल्कों का अनुभव बताता है कि नवउदारवादी नीतियों को लागू करने के बाद आत्महत्या, अवसाद, नशीले पदार्थ का सेवन, एकाकीपन पीढ़ियों के संकट लिंग की जटिल समस्याऐं, नागरिकता का ह्रास, सांस्कृतिक पहचान का क्षय पराये किस्म के धर्मो का उदय इत्यादि क्षेत्रों में तेजी से इजाफा हुआ है।[६]

वैश्वीकरण ने किसी समाज की पुरातन मान्यताओं, रीति-रिवाजों प्रथाओं और परम्पराओं में आमूल चूल परिवर्तन करने का महौल और साहस प्रदान किया है। जिन समाजों ने बिना किसी प्रतिरोध के विवेक पूर्ण तरीके से इन्हें स्वीकारा है वे तुलनात्मक रूप से आधुनिक या प्रगतिशील समाज की राह में चल पड़े है दूसरी ओर जिन समाजों ने अपनी परम्पराओं प्रथाओं और मान्यता को अपनी विशिष्ठ सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान से संबद्ध रखने की पुरजोर कोशिश की वे बंद समाज या पिछड़े समाजों के रूप में बने हुए है। वैश्वीकरण ने वास्तव में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया है। आज भारत विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा होने का प्रयास कर रहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विश्व को एक गांव में बदल दिया है। नयी संचार क्रांति, सुचनाओं का अदान-प्रदान, नयी प्रौद्योगिकी एवं उदार नीतियों ने भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक संरचना के अनेक तत्वों एवं संघटनाअको व्यापक रूप में प्रभावित किया है।[7]

पूंजीवादी समाज व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं में उपभोक्तावाद एक महत्वपूर्ण अभिनलक्षण है। वैश्वीकरण ने जहां कृषि उद्योग व्यापार वाणिज्य एवं रोजगार के क्षेत्रों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है वही इसका सबसे अधिक प्रभाव सांस्कृतिक जीवन मूल्यों, विचारों मान्यताओं, तार्किकता के क्षेत्र में पड़ा है। उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास वैश्वीकरण के प्रयुक्त उत्पादों में से एक है।

जातिप्रथा – भारतीय सामाजिक संरचना का स्वरूप परम्परागत रहा है संरचना का मूल आधार तत्व संयुक्त परिवार व्यवस्था, नातेदारी व्यवस्था एवं जाति संरचना रही है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार नयी औद्योगिक व्यवस्था का विकास एवं बाजार व्यवस्था ने यदि किसी संस्था को सबसे अधिक प्रभावित किया है तो वह है जातीय संरचना एवं जाति गतिशीलता के आयाम। जाति के मूल आधारभूत टूटे है जातियों के बीच दूरियों कम हुई है अब जाति व्यवस्था की प्रक्रिया में बाधक नहीं रही है आज जातीय गतिशीलता का स्वरूप व्यापक हुआ है। एक ही उद्योग में विभिन्न जातियों के युवा एक साथ काम करते है। बहुत से संयुक्त उपक्रम में भागीदारी विभिन्न जातीय समूहके युवाओं की है।[९] वैश्वीकरण ने भारतीय संदर्भ में वर्णाश्रम व्यवस्था के सह उत्पाद जातिप्रथा, अस्पृश्यता और

सामाजिक ऊँच-नीच की मानसिकता में व्यापक परिवर्तन लाया है। वस्तुत: जब मनुष्यों की गतिशीलता में वृद्धि हुई तो कार्य स्थल पर उद्योगों में अपने हितां की प्रतिपूर्ति के लिए एक जुटता आवश्यक हुई तब जातिगत बंधन ढीले होकर अपनी हितवहदता हेतु मनुष्य एक जुट हुए औद्योगिक समाजों में घरेलू कामकाज और सेवा कार्यो के लिए जब सहायक कार्यशील बल की आवश्यकता महसूस हुई तो जाति वर्ण या वर्ग की पहचान से जयादा सस्ता मंहगा की फैक्टर ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। ऐसी स्थिति में यदि अस्पृश्यत कम पैसे में घरेलू कार्य करने के लिए तैयार है तो ज्यादा पैसे देकर सामान्य वर्ग से काम करवाने का कोई आर्थिक जोखिम नही उठाना चाहता। निष्कर्षत: वैश्वीकरण का जातिगत कारकों पर प्रभाव पड़ा कि जातिगत बंधन शिथिल हुए, शहरी और अर्द्धशहरी सामाजिक संरचनाओं में छुआछूत और ऊँच-नीच के बर्ताव को सामाजिक घृणा की दृष्टि से देख जाने लगा है।

जन्म और मृत्यु संस्कार – प्रत्येक समाज द्वारा पालन किये जाने वाले पंथ और उसके नियमों के अनुसार उस पंथ विशेष में जन्म के समय, विवाह के समय और मृत्यु संस्कार विशिष्ट मान्यताओं पर आधारित होते हैं यह संभव है कि अलग-अलग सम्प्रदायों और पंथो की संस्कार पद्धतियों में भिन्नता पाई जाती है।

कई बार प्रगतिशील और सुधारवादी तबका किसी समुदाय की बेहतर मान्यताओं से प्रभावित होकर उन्हें अपनाने का प्रयास करता है और उसके विपरीत यदि कोई मान्यता या रूढ़ि उसे अप्रसांगिक लगती है वो उसे छोड़ने संसोधित करने का वह प्रयास करता है। दार्शनिक दृष्टि पर विवेचन करने पर कहा जा सकता है कि खुशी की मात्रा दोनों ही समय में (पहले और आज) में बराबर ही होता है। किन्तु तत्समय भावात्मक अभिव्यक्ति पारिवारिक और कुटुम्बजनों के बीच की जाती है। आज खुशी से ज्यादा वैभव, धन का प्रदर्शन और दिखावो पर ध्यान दिया जाता है। और एक तरह से उसकी मात्रा प्रस्थिति का प्रतीक बन गये। इस तरह से बच्चे के जन्म दिन के 12 दिन पश्चात बारशा आयोजित यिका जाता था। अब निजी चिकित्सालयों के भारी भरकम बिल ऑपरेशन द्वारा बच्चे का जन्म और तुलनात्मक रूप से शारीरिक निर्बलता के चलते बारसे के स्थान पर जन्म दिन का प्रचलन बढ़ा है।

मृत्यु के समय पहले उस मोहल्ले या गांव में जब तक दाह संस्कार के लिए शव को नहीं उठा लिया जाता था तब तक घर में चूल्हे नहीं जला सकते थे। दाह संस्कार में लोग भावात्मक रूप से साशरीर उपस्थित होते थे किन्तु आज दाह संस्कार के समय ही सूचना घर से प्रस्थान होने की सूचना शवदाह गृह पंहुचने की सूचना लगातार मोबाईल के जरिए ली जाती है। और सांकेतिक रूप से अंतेष्टि स्थल पर पंहुचकर अपना कर्तव्यों की इतिश्री मानली जाती हैं। वर्तमान युग सूचनाओं का युग है। फलस्वरूप उसके पास समय भावनाओं का अभाव होता है। सूचना प्रौद्योगिकी और संचार क्रांति ने आस्थाओं और विश्वासों को तर्क की कसौटियों पर कसने के पश्चात खोखलापन उजागकिया उसके आचार व्यवहार में एक विचित्र किस्म की व्यवसायिक कृत्रिमता आ गई। इसलिए आज वैश्वीकरण के दौर में दिखावा ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है।

वर्गीय चेतना :– भारत के विभिन्न सामाजिक वर्गो में एक विशिष्ट सामाजिक वर्गीय चेतना परिलक्षित होती है। जैसे निम्न वर्ग, निम्न मध्यम वर्ग, मध्यम वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की विभेदीकरण आर्थिक आधार पर किया जा सकता है। भूमंडलीकरण में तेजी से भारत के मध्यम वर्ग की जीवनशैली तथा विचारशैली को बदला उतनी तीव्रता से आम ग्रामीण को नहीं।

1991 के बाद से भारत में अपनाये जाने वाली मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था और उदारीकरण की नीतियों के तहत व्यक्तिगत श्रम और व्यक्तिगत सम्पक्ति हेतु तीव्र चेतना विकसित हुई। इसके फलस्वरूप अमीर और अधिक अमीर हुआ जबकि गरीब और ज्यादा गरीब हुआ है। भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर समाज के भीतर आर्थिक विषमता बढ़ी है और साथ-साथ भारत जैसे देश में क्षेत्रीय असमानताओं में भारी इजाफा हुआ है। [10]

सामाजिक कुरीतियां – लगभग दो या तीन दशक पहले जब भारत संचार क्रांति के लाभों से परिचित नहीं था तब तक दहेज प्रथा, बाल-विवाह, घरेलू हिंसा जैसी सामाजिक कुरीतियों का भारतीय समाज में बोलबाला था। किन्तु प्रतिरोध लगभनगण्य था भूमंडलीकरण लोगों और अधिक लालची और भौतिकवादी बना रहा है। इसलिए आज समाज में दहेज की मांग तेजी से बढ़ रही है। आज दहेज सामाजिक सम्बन्धों के व्यवसायीकरण का प्रतिनिधित्व करता है जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्तावादी जीवनशैली के विस्तार से सम्बन्धित है। जो बाजार में ब्रांडो के नाम की उपलब्धता के साथ आता है। मुद्रा सिर्फ जीवनशैली बदलने की नहीं बल्कि दहेज की मांगो की परिणीति हिंसा में होती है। कभी-कभी कुछ अभिभावक लड़कियों की शिक्षा को बीच में रोक देते हैं कारण लडकी को जितना अधिक पढ़ाएगें उसके लिए वर भी उतना ही अधिक पढ़ा लिखा खोजना होगा। और लम्बा-चौड़ा दहेज भी देना होगा [11]। दहेज गरीब अभिभावकों को पहले से अधिक आर्थिक समस्या व अपमान जनक परिस्थिति में ढकेल रहा है [12]। वैश्वीकरण के चलते इन कुरीतियों प्रशासनिक कानूनी और सामाजिक प्रयासों को मजबूती प्राप्त हुई वहीं दूसरी ओर वधु पक्ष या नव विवाहिता ने अपनी मर्जी चलाने के लिए दहेज प्रताड़ना अधिनियम और घरेलू हिंसा अधिनियम के कडे दण्ड प्रावधानों का दुरूपयोग करना शुरू कर दिया है जिससे सौहार्द युक्त सामाजिक ताना बाना और विवाह जैसा पवित्र बंधन विखण्डित होने की कगार में है।

स्वास्थ्य – वैश्वीकरण के चलते अब विश्व के किसी भी कोने से विशेषज्ञ चिकित्सा से परामर्श और सूचना प्रौद्योगिकी के कारण इलाज संभव हो गया है। कुपोषण, महामारी और आसाध्य रोग अब क्षेत्रीय सीमाओं से उठकर अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सीय शोध के विषय बन गये हैं। इससे जहां एक ओर साध्य रोगों का इलाज संभव हो पाया है वहीं दूसरी ओर सस्ती दवाईयों की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है। चिकित्सा उपकरणों के शोध से अद्यतन चिकित्सा उपकरणों का फैलाव हुआ है। और संयुक्त राष्ट्र और मानवाधिकार समर्थकों की सक्रियता के चलते तृतीय विश्व और विकासशील समाजों की स्वास्थ्य समस्यायें अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता और चिन्तन के प्रमुख विषय हो गये हैं। छोटे परिवारों कधारणा के चलते प्रसवपूर्ण लिंग परिक्षण और कन्या भ्रूण हत्या ऐसे अमानवीय पक्ष हैं जिसने न केवल वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों को उजागर किया अपितु स्त्री-पुरूष लिंगानुपात में चिन्तनीय असामनता को बढ़ावा दिया है। इसी तरह पेशेवर चिकित्सकों की नकारात्म प्रवृति ने अमानक दवाई और कम्पनियों के आर्थिक प्रलोभन के चलते बढ़ावा दिया है। भारतीय जनमानस भी अपने स्वास्थ्य लक्षणों को बताकर सीधे दवा दुकानदारों से चिकित्सीय परामर्श और दवाईयां लेने से कोई गुरेज नहीं कर रहा है। वैश्वीकरण ने स्वास्थ्य सेवाओं चिकित्सीय उपकरणों और अनुसंधान प्रवृतियों को आशाजनक बढ़ावा दिया है। किन्तु व्यवसायीकरण और गलाकाट आर्थिक प्रतियोगिता के चलते इसके दुष्प्रभावों को ज्यादा बढ़ावा दिया है[13]।

शिक्षा – वैश्वीकरण के इस दौर में उदारीकरण, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था और योग्यता को प्राथमिकता प्रदान करने की वजह निजी क्षेत्र उपाधी से

ज्यादा व्यवहारिक ज्ञान को प्राथमिकता देने लगे इस कारण विशिष्ट महत्व के उच्च शिक्षा संस्थानों से विदेशों में जाकर शिक्षा ग्रहण की क्षमता या विशेष ख्यातिलब्ध विदेशी विश्वविद्यालयों का भारत में आगमन ने उच्च और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रतिस्पर्धा का वातावरण उत्पन्न किया है। इसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र की कई संस्थाओं ने आकर्षक और विस्तृत अधोसंरचना के तकनीकी प्रबंधन और चिकित्सा शिक्षा संस्थान खोले। 1991 के बाद ऐसे संस्थानों की भारत में बाढ़ सी आ गई शैक्षणिक डिग्री धारकों की संख्या में मात्रात्मक वृद्धि हुई है। किन्तु ज्ञान के गुणात्मक स्तर में निराशाजनक नकारात्मक वृद्धि हुई है। व्यक्ति ऐन केन प्रकारेण उपाधियां तो हासिल कर लेना चाहता है किन्तु उसे आपेक्षित स्तर का ज्ञान धारित न करने के कारण उसे रोजगार प्राप्त नहीं हो पाता। जिसके कारण बेरोजगारों की संख्या में बढ़ोत्तरी और राष्ट्रीय नैराश्य में वृद्धि हुई है।[15]

भूमंडलीकरण के कारण शिक्षा धनपतियों की दासी बन गई है। गरीबों को शिक्षा पाना दिवास्वप्न जैसा दिखाई पड़ रहा है। निजी तंत्र द्वारा स्थापित विद्यालयों में, महाविद्यालयों में बाढ़ आती जा रही है। ऐसे विद्यालय एवं महाविद्यालयों मे मानकानुरूप में योग्यताधारी शिक्षक नहीं है। उच्च शिक्षा की संस्थिति बेहद खराब होती जा रही है। गुणवत्ता एवं शिक्षा के मानकों का निरन्तर हास होता जा रहा है। शिक्षा में समानता के स्थान पर असामनता का साम्राज्य बढ़ता जा रहा हैं। शैक्षणिक वातावरण को चौपट करने में अध्यापक, विद्यार्थी, व्यवस्थापक एवं अभिभावक की सहभागिता बराबर है। शिक्षक पढ़ाते नहीं है, विद्यार्थी कक्षा में आते नहीं, व्यवस्था अलग राग अलापती है, अभिभावक या तो अनभिज्ञ हैं या संज्ञा सून किंकर्तव्य विमूढ़ावस्था में अपने पाल्य को अनुचित साधन उपलब्ध कराते हैं [16]।

धर्म – धर्मजनित आस्थाओं को वैश्वीकरण ने नया आयाम दिया है। वर्तमान संदर्भो में धर्म को सम्प्रदाय और पंथ के अर्थो में प्रस्तुत विहित किया जाने लगा हैं। वैश्विक प्रधान जीवन का प्रभाव सर्वाधिक धर्म में देखा जा सकता हैं। धार्मिक परम्परा विभिन्न संस्कृतियों का संगम है इसी के माध्यम से ही मनुष्य की मानसिकता आध्यात्मिक तथा शारीरिक शुद्ध होकर समस्त जीवन के उत्थान की अद्भुत परम्परा प्रस्तुत की है [17]। धर्म को व्यक्ति के अंत:करण में विश्वास, उपासना और आस्था के पालन की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से जोड़ा जाता है। आज धार्मिक पहचान समूहों का अस्तित्व के संरक्षण के लिए एक जुट होना एक दबाव समूह के रूप में कार्य करना आम प्रवृति हो गयी है। आज वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में सेकुलर भारत में धर्म का खेल चल रहा हैं [18]। आज के युग में धर्म की आड़ में धर्मान्धता का प्रचार हो रहा है। साम्प्रदायिकता का जाल विछता जा रहा है। धार्मिक संस्थाओं में आडम्बर, भोग, विलास तथा वाह्य प्रदर्शन बढते जा रहे हैं। मठ–मन्दिरों की जिन पवित्र सेवा,त्याग निस्वार्थ भावना के उच्च उद्देश्यो के लिए स्थापना की गई थी। वे समय की गति से विलुप्त हो गये हैं [19]। दूर संचार और जन संचार के माध्यमों ने धार्मिक एकजुटता चेतना नकारात्मकता और संकीर्णता को बढ़ावा दिया प्रतीत होता है। वैश्वीकरण ने विभिन्न धार्मिक आस्थाओं, विचारों और पद्धतियों को वैश्विक समाज को आपस में जानने और समझने का अवसर उपलब्ध कराया है, किन्तु धार्मिक पहचान अस्तित्व के प्रदर्शन के चलते अन्य धार्मिक आस्थाओं के प्रति संकुचित दृष्टिकोण को विकसित करने में भी सहायता पहुंचायी है।

महिलायें – वैश्वीकरण का महिलाओं पर प्रभाव भिन्न होता है जिसका कारण घर, समुदाय तथा समाज तीनों स्तर पर पहले से मौजूद विषमताएं है, समाज में शक्ति और नियंत्रण का ढांचा महिलाओं को और अधिक असुरक्षित बनाता है। राजनैतिक तथा आर्थिक सौदेबाजी का प्रभाव, संगठन, सूचना प्राप्ति की कमी के कारण बदलावों का सामना करने की उनकी क्षमता सीमित हो जाती है। भूमंडलीकरण ने समाज के उस वर्ग को ज्यादा प्रभावित किया है जो खामोशी के साथ दमन, शोषण व वचन को शताब्दियों से झेलता रहा है इनमें महिलाओं का नाम प्रमुखत: से लिया जा सकता है। उनकी स्थिति पर भूमंडलीकरण की नीतियों का बुरा असर पड़ रहा है। पितृसत्तात्मक समाज में सर्वत्र विद्यमान पुरूष प्रधानता एवं वातावरण ने स्त्रियों एवं पुरूषों के बीच असमान शक्ति सम्बन्ध स्थापित कियें है [20]। वास्तविकता यह है कि भूमण्डलीकरण हिन्दुत्व की छाया में महिलाओं पर सामन्ती मूल्य और पितृसत्तात्मक व्यवस्था पहले की तुलना में बढ़ी है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं का वस्तुकरण तेजी से बढ़ा ह[21]। हमारे देश में इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलू दिखाई पडते हैं। एक तरफ प्रौद्योगिकी संचार व्यवस्था सेटेलाइट, मीडिया, मोबाइल शिक्षा, रोजगार आदि क्षेत्रों में बेतहाशा बाढ़ की तरह बाजार व्यवस्था कि माध्यम से सभ्यतता प्रगति की सीढ़ियां चढ़ रही है। भारतीय नारियां भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं है। इस सुखद एवं सकारात्मक पक्ष है कि स्त्रीवाद विमर्श के वैश्वीकरण होने से स्त्रियों में विश्व–व्यापी जागरूकता पैदा हुई है। हजारो–लाखों स्त्रियां औद्योगिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करके आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर हो रही हैं उनके पारिवारिक अधिकारों एवं चेतना के स्तर में वृद्धि हुई है।

अब वे पर्दा प्रथा, सजातीय विवाह की अनिवार्यता एवं अनावश्यक लोक–लज्जा को निरर्थक समझते हुए घर की चार दीवारी के अन्दर खुली हवा में सांस ले रही है। उनके विचारों और दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है वे उच्च स्तरीय अध्ययन व्यवहार में खुलापन, अन्तार्जातीय प्रेम तथा विलम्ब विवाह अच्छा समझने लगे हैं। महिलाओं को सरकारी नौकरियों में एक तिहाई आरक्षण के साथ अपने विकास और सशक्तिकरण की प्रक्रिया सार्थक रहहैं।

निष्कर्ष:– कोई भी समाज अपने विभिन्न सामाजिक कारकों का वैश्वीकरण के प्रभावों से अछूता होने या रहने का दावा नहीं कर सकता और जब यह तय है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया को रोका जाना सम्भव नहीं है तो अवश्य है कि व्यवस्थतंत्र को कुछ इस तरह तैयार किया जाए कि सामाजिक संरचना और सामाजिक प्रक्रियायें वैश्वीकरण के लाभों को प्राप्त करने की अनुकूलता की स्थिति में हो यहां भूमण्डलीकरण की अवधारणा से निहितार्थ मनुष्य का केवल एक ऐसउपभोक्ता में परिवर्तित होना है जिसमें न कोई करूण हो, न कोई स्वप्न हो, न कोई संवेदना, न कोई विचार यहां तक मनुष्य है भी या नहीं इसे लेकर भूमंडलीकरण के पैरोकार घूमता है। इसलिए मनुष्य के बीच मनुष्य की तरह इस सुन्दर पृथ्वी में जीने के लिए वैश्वीकरण का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रतिरोध आवश्यक है [22]।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सिंह डॉ.आनंद प्रकाश – वैश्वीकरण का युवा जीवन पर प्रभाव, एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा (अर्द्धवार्षिक) समाज विज्ञान विकास संस्थान चांदपुर (बिजनौर) उ.प्र. जनवरी–जून 2010 वर्ष–12 अंक 01 पृष्ठ – 75
2. वही पृष्ठ – 77
3. किशोर, डॉ.कौशल – वैश्वीकरण युग में पारिवारिक सम्बन्धों के परिवर्तनशील स्वरूप, राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा

(अर्द्धवार्षिक) समाज विज्ञान विकास संस्थान चांदपुर (बिजनौर) उ.प्र.जुलाई–दिसम्बर 2008 वर्ष–10 अंक –02 पृष्ठ–207

4. कुमार, डॉ.अंचलेश – वैश्वीकरण बनाम उत्तराखण्ड, तराई के बंगाली समुदाय के परिवार व्यवस्था, राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा (अर्द्धवार्षिक) समाज विज्ञान विकास संस्थान चांदपुर (बिजनौर) उ.प्र.जुलाई–दिसम्बर 2007 वर्ष–09 अंक–02 पृष्ठ–45
5. श्रीवास्तव, डॉ.बलजीत कुमार–भूमण्डलीकरण का हिन्दी सिनेमा पर प्रभाव, शोधधारा (त्रैमासिक) शैक्षणि एवं अनुसंधान संस्थान उरई (जालौन) उ.प्र.वर्ष–2012 मार्च अंक पूर्णांक –204 पृष्ठ–180
६. वही पृष्ठ 189
7. सिंह, डॉ.आनंद प्रकाश– पूर्वाक्त पृष्ठ– 76
8. वही पृष्ठ –77
9. वही पृष्ठ–78
10. वही पृष्ठ–78
11. बुलबुल, डॉ.गार्गी – भूमण्डलीकरण और महिलाओं पर इसका प्रभाव (भारतीय महिलाओं के सन्दर्भ में) राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा (अर्द्धवार्षिक) समाज विज्ञान विकास संस्थान चांदपुर (बिजनौर) उ.प्र.जनवरी–जून वर्ष–2010 अंक–12 पृष्ठ–86
12. वही पृष्ठ– 90
13. वही पृष्ठ– 92
14. पाण्डेय, डॉ.वी.के.वैश्वीकरण के विविध आयाम, सम्पादक शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटरर्स 11 यूनिर्वसिटी रोड इलाहबाद संस्करण 2012 पृष्ठ 175
15. वही पृष्ठ – 175
१६. वही पृष्ठ –171
17. वही पृष्ठ – 193
18. श्रीवास्तव, डॉ.प्रभात, अमितकुमार, (वैश्वीकरण एवं धर्म) वैश्वीकरण के विभिन्न आयाम, सम्पादक शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटरर्स 11 यूनिर्वसिटी रोड इलाहबाद संस्करण 2012 पृष्ठ–193
19. सिंह,श्रीमती धात्री (भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में धर्म का निदर्शन) सम्पादक शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटरर्स 11 यूनिर्वसिटी रोड इलाहबाद संस्करण 2012 पृष्ठ–188
20. बुलबुल, डॉ़गार्गी, पूर्वोक्त पृष्ठ–86
21. वही पृष्ठ–90
22. दुबे, डॉ.मुक्ता, डॉ.वंदना तिवारी – वैश्वीकरण और विकासशील देशों पर उसका प्रभाव, रिसर्च डाइजेस्ट (त्रैमासिक) बिलासपुर, अप्रैल–जून 2007 अंक–01–04 पृष्ठ–52

****

छत्तीसगढ़ की औद्योगिक नीतियों का जनजातियों पर प्रभाव – एक अध्ययन

जैनेन्द्र कुमार पटेल*

शोध सारांश – एकीकृत मध्य प्रदेश एवं सन् 2000 में छत्तीसगढ़ के निर्माण के पश्चात् से ही राज्य सरकार राज्य का औद्योगिक विकास करने के साथ–साथ जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास हेतु भी प्रयत्नशील रही है। भारत के तेजी से बढ़ते उदीयमान राज्यों में सम्मिलित छत्तीसगढ़ प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध राज्य है। उद्योगों के साथ–साथ खनिज एवं वन सम्पदा राज्य के महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। जिनके योजनाबद्ध दोहन से राज्य के नागरिकों की आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय प्रगति दिखाई पड़ती है। छत्तीसगढ़ में कोयला, लाइमस्टोन, जैसे सामान्य खनिजों के साथ–साथ सर्वोत्कृष्ट आयरन और (लौह अयस्क), हीरा, एलेम्जेण्डराइट, बाक्साइट, ग्रेनाइट, कोरण्डम और देश में एकमात्र राज्य में पाया जाने वाला 'टिन' उपलब्ध है। राज्य से प्रवाहित होने वाली नदियाँ– महानदी, हसदेव, केलो इन्द्रवती, शिवनाथ अरपा आदि पेयजल, कृषि एवं औद्योगिक प्रयोजनों की जल आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हैं। इसी तरह छत्तीसगढ़ भारत के उन कुछ राज्यों में से एक है जिसमें विद्युत का आधिक्य एवं उत्तम विद्युत वितरण प्रणाली उपलब्ध है, इस तरह राज्य अरिरिक्त बिजली उत्पादन क्षमता वाला 'पावर हब' बनने की दिशा में अग्रसर है।

छत्तीसगढ़ राज्य में विद्युत उत्पादन के साथ साथ इस्पात संयन्त्र एवं एल्यूमिनियम उत्पादन के बडे़ कारखाने हैं वहीं वृहद पैमाने पर कोयला, लौह अयस्क, बाक्साइट, मैग्निज, अभ्रक इत्यादि का उत्खनन हो रहा है। इन वृहद कारखानों के अतिरिक्त अन्य औद्योगिक इकाईयां भी राज्य में संचालित हो रहीं हैं। स्पष्ट है कि इन उद्योगों का जनजातियों के जीवन पर प्रभाव अवश्य हुआ है। छत्तीसगढ़ राज्य की औद्योगिक नीतियों में जनजातियों के विकास हेतु भी आवश्यक प्रावधान किये गये हैं। इस शोध पत्र में छत्तीसगढ़ राज्य की औद्यागिक नीति का जनजातियों पर प्रभाव का अध्ययन करना है।

शब्द कुंजी – औद्यागिक, नीति, जनजाति, विकास, वृहद, कारखाना, उद्योग।

अध्ययन का उद्देश्य – इस शोध पत्र के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य छत्तीसगढ़ राज्य की औद्योगिक नीतियों का जनजातीय विकास योजनाओं तथा उनके मूलभूत अधिकारों के संरक्षण का अध्ययन करना है।

शोध प्रविधि – यह शोध पत्र सैद्धांतिक विधि पर (द्वितीयक ऑकड़ों) पर आधारित है। इस विधि में सर्वमान्य ग्रंथ, शासकीय प्रतिवेदन तथा आलेखों में व्यक्त विचारों का समावेश करते हुए विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

विवेचना – अनुसूचित जनजातियों के समग्र विकास के लिए छत्तीसगढ़ शासन द्वारा अपने औद्योगिक नीति में विशेष प्रावधान किया है। औद्योगिक विकास से प्राय: जनजातीय क्षेत्र ही प्रभावित होते हैं क्योंकि राज्य की अधिकांश खनिज एवं अयस्क जनजातीय क्षेत्रों में ही पाया जाता है। इन खनिज अयस्कों के विदोहन के लिए इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों का विस्थापन एक सतत प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है स्पष्ट है इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोग अपने मूल व्यवसाय से दूर हो जाते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य द्वारा अनुसूचित जनजातियों को उद्यमशील बनाने हेतु किये जा रहे प्रमुख शासकीय प्रावधान अग्रलिखित हैं–

1. **आदिवासी स्वरोजगार योजना –** इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जनजाति वर्ग के लोगों को लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना तथा छोटे-छोटे व्यवसाय (जैसे साइकिल मरम्मत, किराना दुकान, फर्निचर दुकान आदि) एवं व्यापार के लिए बैंकों के माध्यम से योजना की इकाई लागत के अनुसार ऋण प्रदान किया जाता है। इस योजना के लिए 18 से 45 आयु वर्ग के बेरोजगारों का चयन किया जाता है तथा स्वरोजगार का प्रशिक्षण भी कराया जाता है। शासन की इस योजना से जनजाति वर्ग के अनेक युवा लाभान्वित हुए हैं।

2. **राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम के सहयोग से संचालित योजनायें –** इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जनजाति वर्ग के आवेदक जिनकी पारिवारिक वार्षिक आय ग्रामीण क्षेत्र में 39,500 रू. तथा शहरी क्षेत्र में 54,500 रू. से अधिक न हो तथा आयु सीमा 18 से 45 वर्ष के बीच को ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसमें इकाई लागत का 90 प्रतिशत अंशदान राष्ट्रीय निगम द्वारा, 5 प्रतिशत राज्य द्वारा तथा 5 प्रतिशत हितग्राही द्वारा अंशदान शामिल होता है यदि हितग्राही वाहन सम्बंधी स्वरोजगार करना चाहता है तो उसके पास वैध कामर्शियल ड्राइविंग लाइसेंस होना आवश्यक है। इस योजना में यदि हितग्राही गरीबी रेखा से नीचे का है तो उसे योजना लागत का 50 प्रतिशत या अधिकतम राशि 10,000रू. अनुदान के रूप में प्रदान किया जाता है। इस तरह की योजना की अधिकतम लागत रू 10 लाख तक हो सकती है। इसके साथ ही यदि हितग्राही योजना हेतु बैंक से ऋण लेना चाहे तो उसके लिए बैंकों से रियायती ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

3. **आदिवासी महिला सशक्तिकरण योजना–** राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम में एकल आदिवासी महिलाओं के आर्थिक उत्थान के लिए विशेष रियायती योजना प्रारंभ की गई है जिसके मापदण्ड निम्नानुसार है–

1. **इकाई की लागत–** किसी भी योजना/प्रस्ताव के लिए रू. 50,000 तक

2. **सहयोग की मात्रा–** राष्ट्रीय निगम की मियादी ऋण 90 प्रतिशत,

* शोध छात्र (विधि) म. प्र. भो. मु. वि. वि. भोपाल (म.प्र.) भारत

राज्य का 5 प्रतिशत अंशदान तथा 5 प्रतिशत हितग्राही का अंशदान होता है।

3. **ब्याज दर-** इस योजना में महिलाओं को अत्यन्त कम ब्याज दर 4 प्रतिशत पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। ऐसे हितग्राहीयों को ऋण अदायगी के लिए 10 वर्ष की लम्बी अवधि स्वीकृत की जाती है ताकि वे ऋण वापसी के तनाव से मुक्त रहकर, स्वरोजगार पर ध्यान केन्द्रीत कर सकें।

4. **प्रशिक्षण सह उत्पादन केन्द्र-** अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए प्रशिक्षण-सह-उत्पादन केन्द्रो में कम पढे लिखें युवाओं को एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण बढ़ई, टेलरिंग, कुम्हार, चर्म शिल्प, हथकरघा, टाटपट्टी निर्माण, बांस उद्योग एवं टोकनी-चटाई उद्योग में दिया जाता है। इस प्रशिक्षण अवधि में प्रशिक्षणार्थी पुरूषों को 250 रू. प्रतिमाह तथा महिलाओं को 260 रू. प्रतिमाह शिष्य वृत्ति और प्रशिक्षण के बाद औजार एवं अन्य सुविधायें अनुदान के रूप में प्रदान की जाती है। इन केन्द्रों में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे पुरूष-महिलाओं को प्रशिक्षण अवधि में छात्रावास में रहने एवं भोजन की नि:शुल्क सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।

5. **अन्त्यावसायी उद्यमी प्रशिक्षण योजना-** स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण के महत्व को स्वीकार करते हुए राज्य सरकार द्वारा वित्त विकास निगम की योजना के साथ उद्यमी विकास संस्थान तथा प्रशिक्षण केन्द्रों का विलय किया गया है। अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति के युवाओं को व्यवसायिक प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, ऋण तथा अनुदान उपलब्ध कराया जाता है। स्वरोजगार में सफलता प्राप्त करने हेतु व्यवसायिक मानसिकता आवश्यक है। अत: इन प्रशिक्षण केन्द्रों में व्यवसायिक मानसिकता विकसित करने में भी प्रशिक्षार्थियों को सहयोग प्रदान किया जाता है।

6. **रोजगार मूलक वित्तीय सहायता योजना-** इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय के एवं विकलांग युवक-युवतियों का स्वयं का रोजगार स्थापित करने हेतु वित्तीय सहायता राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा जिला अन्त्यावसायी सहकारी विकास समिति के माध्यम से दी जाती है। इस योजना में वित्तीय समर्थन के साथ-साथ रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जाती है तथा बैंकों से लिये गये ऋण पर सब्सीडी एवं अनुदान भी प्रोत्साहन स्वरूप प्रदान किया जाता है।

7. **कृषि विकास योजना-** अनुसूचित जनजातियाँ मुख्य रूप से कृषि व्यवसाय में संलग्न होती हैं। इन लोगों को कृषि कार्य हेतु सिंचाई की पर्याप्त सुविधा तथा अच्छे उपकरण बीज एवं खाद न मिलने से, ये पर्याप्त मात्रा में उपज नहीं प्राप्त कर पाते हैं। अत: इन्हें कृषि कार्य से पर्याप्त आय अर्जित करने के उद्देश्य से सिंचाई हेतु पंप की खरीदी, ट्यूबेल एवं कुआँ के निर्माण हेतु कृषि के उपकरण ट्रैक्टर, थ्रेसर आदि क्रय करने हेतु तथा पौष्टिक एवं प्रमाणित बीज-खाद एवं कीटनाशक खरीदने हेतु राज्य अन्त्यावसायी सहकारी वित्त एवं विकास निगम के द्वारा वित्तीय सहायता, अनुदान एवं सब्सीडी प्रदान की जाती है।

इन योजनाओं को सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में क्रियावित किया जा रहा है। योजनाओं का लाभ लेने वाले अभ्यार्थियों का चयन जिला स्तर पर ही अन्त्यावसायी सहकारी वित्त एवं विकास निगम के मुख्य कार्य पालन अधिकारी एवं जिला कलेक्टर द्वारा किया जाता है। इस प्रकार जहाँ देश और प्रदेश की औद्योगिक नीति बड़े उद्योगों को छोड़कर लघु एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से इन वर्गों को स्वलंबी बनाने हेतु प्रयास किया जा रहा है परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि बड़े सार्वजनिक या निजी ईकाइयों में जनजातियों का विस्थापन प्रमुख समस्या रही है आवश्यक है कि इन बड़े उद्योगों में इन वर्गों को नौकरीयों में पर्याप्त आरक्षण देकर इनकी बेराजगारी और उत्पन्न भूखमरी को रोकने की नीति का पालन सुनिश्चित करना चाहिए।

उपसंहार - राज्य के औद्योगिक नीति में जनजातियों एवं समाज के कमजोर वर्गों के लोगों के लिए रियायती दर पर ऋण, बिजली और जमीन उपलब्ध कराने का संकल्प व्यक्त किया गया है साथ ही कृषि कार्य एवं औद्योगिक इकाईयों की स्थापना में अनेक तरह के छूट एवं सब्सिडी की व्यवस्था की गई है किन्तु जनजातीय वर्ग तक अभी शासन के नीतियों का लाभ नहीं पहुँच सका है, इसके अनेक कारण हो सकते हैं यथा-

1. शिक्षा, विशेष रूप से तकनीकी शिक्षा का अभाव।
2. शासकीय योजनाओं और नीतियों की जानकारी न होना।
3. उत्पादनोपरान्त विपणन की व्यवस्था का अभाव जो इन वर्गों को किसी तरह का रोजगार प्रारंभ करने से रोकती है।

वस्तुत: जनजातियों को वनोपज संग्रह एवं प्रसंस्करण, खाद्य पदार्थों का उत्पादन एवं प्रसंस्करण, पशुधन से संबंधित लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना, दोना-पत्तल, चटाई, टोकनी निर्माण हेतु कुटीर उद्योगों की स्थापना हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जिसके लिए नही उच्च तकनीकी जानकारी की आवश्यकता होती है और नही बडे ब़जट की। छत्तीसगढ के अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हरी सब्जियों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता है। किन्तु ये पदार्थ लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रखे जा सकते फलत: किसान इन्हें औने-पौने दाम पर बेचने मजबूर हो जाते हैं। उन्हें अपनी लागत भी वापस नहीं मिलती। ऐसे क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की प्रचुर संभावना है। जनजातियों को इस तरह के उद्योगों की स्थापना हेतु तकनीकी ज्ञान एवं आर्थिक सहायता उपलब्ध कराया जाना चाहिए साथ ही उत्पादों के बिक्री की व्यवस्था भी किया जाना चाहिए।

राज्य में बडे उ़द्योगों की स्थापना, कोयला एवं अन्य खनिज पदार्थों के खनन् हेतु खदान प्रारंभ किए जाने से तथा नदियों पर बडे ब़ांध बनाए जाने से ग्रामीण एवं जंगली क्षेत्रों में निवास करने वाले बहुत बड़ी जनसंख्या को अपने मूल स्थानों से विस्थापित होना पड़ा है। इन परियोजनाओं में विस्थापितों के पुनर्वास एवं रोजगार की नीतियों को सशक्त बनाया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मार्ग दर्शिका छत्तीसगढ़ राज्य अव्यावसायी सहकारी वित्त एवं विकास निगम रायपुर- 2008
2. प्रतिवेदन 'छत्तीसगढ़ राज्य की विकास योजनाएँ', आदिम जाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग- 2004-05
3. वार्षिक प्रतिवेदन, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम- 2008
4. वार्षिक प्रतिवेदन, आदिम जाति तथा अनुसूचित जाति विकास विभाग, रायपुर छ.ग.- 2008
5. विभिन्न वेबसाइट्स।

****

Agonies of the times author lived in and the subsequent manifestation of violence in the novels of Ernest Hemingway

Haroon Bashir Kar*

Abstract - When we talk of American Literature, the name of Ernest Hemingway comes to our mind. Born on the Chicago Suburbs, Ernest Hemingway was a child of violent twentieth century who responded to its every pressure and recorded its progress and ageing. The circumstances a man lives in lay deep impact both physical and mental, he lived during two world wars and experienced much violence in his own life, the family matters, death in war, suicide of his father, plane crash, unfaithful love affair, bull fighting etc. that reflects in his novels. Ernest Hemingway was rather a prolific writer; infact he had so shaped himself as to loose no opportunity to render his impressions and experiences into an articulate form. It is difficult to separate Hemingway 'the man'from Hemingway 'the writer' because most of his writings in one way or another relate directly to his personal life.
Key words - Violence, World Wars, Bull-Fighting, Experiences.

Introduction - Ernest Hemingway is remembered both as a writer and legend, for, in his case two are nearly inseparable from each other. His career as a journalist, spread over a large span of time that took him to various important places in America and Europe, his defiant and persistent participation in wars and revolution, his close association with the Paris Literary Circle, his anti-fascist stance: his first-hand experience of human suffering and of the loss of traditional values in a world ravaged by wars, and his penchant for recording his impressions and experiences in the form of fictional narrative, all this drove Hemingway into adopting a course that helped him in shaping himself as a writer of fiction.

After going through the various novels of Ernest Hemingway, we come to know that Hemingway was the writer whose major themes were violence, destruction and death.

Ernest Hemingway has reflected the world, the contemporary problems by the outbreak of the war, the despair and the defeatism of the age, the disintegration of the old values and the economic injustice. His age provided the subject matter which was further modified by his own individual experiences, his initiation into the world of violence and brutality, his physical and psychological wounds received on the Italian front, his interest in the bullfight, boxing, fishing, and his participation in the wars. His chief preoccupation has been the portrayal of the hardships of external world and his heroes in capacity for endurance and fortified.

Hemingway's interest in the delineation of death is great. It is not the death in the decease or any other death which attracts him. He has depicted violent death which he saw in the wars and the bullfights. In Death in the Afternoon, he has mentioned that after the end of War, he sow violent death only in Bullfights.

Violent man is the recurring sample in the world of Hemingway. This man of violence is also the sleepless man. In fact, the violent man and the sleepless man are the two aspects of the same coin. Both have same hunger for meaning in the world. The sleepless man is the person who broods upon 'nada' or upon chaos. The violent man is one who takes appropriate steps to realise the facts of 'nada'. In other sense, he is engaged in the effort to discover human values in a naturalistic world. Hemingway is considered a master of terrifying vision and the portrait of the external world.

Hemingway's novels have delineated the problems and the life of post War period. Hemingway had felt the deep agonising experience of War as s soldier, and had also received the severe wound which felt its mark on his psyche. His violent experiences of life, his initiation into the world of brutality and violence in the Indian camp, his mortal injury received at Fossalta in Italy. his admiration of the Bullfight and his knowledge of the harsh external life, time and again, have found their place in his life.

In the post War period, the violent deaths caused the great imbalance in the lives of men. The degrees of violence and their categories are also different. The violence in the present age has been caused not only by the strong emotions, but also by the modern technological means. The modern age also has increased the anguish and futility of men. The modern sense of injury has brought one of the

*Ph.D Scholar (English) Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore (M.P.) INDIA

most radical changes in the modern literary sensibility and it can he describes as the symbolic injury. The circumstances of such injuries are almost invariably violent. And the violence while not entirely unexpected comes as a surprise and shock to the persons injured.

The circumstances of the modern injury are violent and shocking to the persons. Ernest Hemingway had received physical wounds while distributing chocolates to the Italian soldiers in the trench. He suffered from a mortar shell along with other Italian soldiers. Three of them died, and two hundred and thirty seven steel fragments were taken out of his leg alone. This physical injury caused sleeplessness and hallucinations in him.

The traumatic shock has appeared again and again in his works. The impact of that wound was deep. It shook his confidence in the past and he was completely a changed man. He began to destruct and suspect the society; he was alienated from it and had a sense of despair and disillusion.

Hemingway had the knowledge of death as a boy in the Indian camp in the company of his father. He had seen death in the World Wars and in the Bullfights, which he has portrayed well in his novels. In Death in the Afternoon, he has depicted the matador and torero who deliberately court danger. Hemingway had also come to learn that death is the ultimate reality and it is only in the phase of death that man realises his potentialities. He found in the Bullfighter a modern hero who could give meaning to his existence by the manner of his facing danger constantly. In this novel we see lot of violence and bloodshed in the bullring.

In the novel The Sun Also Rises, Hemingway has put in front of us the life of a few American expatriates who were living in Paris after the War. They were all wounded either physically or psychologically by the War. The old pre-war values can not give them the direction that they were looking for and in this lost world they are all lost souls. This novel has shown the result of violence in the War.

The Sun Also Rises is full of sufferings, violence, emasculation and despair. In this novel we have seen the terrific outcome of the War. The War and violence has affected the lives of many people and has given them the physical and mental wounds.

Between 1924 and 1932, Hemingway was preoccupied with the problems of the wound and death. In his novels physically injured men experience an inner terror and feel the shock and find it difficult to adjust with the reality. In the post War period the old value and ideals underwent scrutiny and change. The old trends of morality were exploded.

In To Have and Have Not, Hemingway has experimented with a new technique and has delineated economic problems. This novel is also a portrait of violence, wound, death, suffering and surrender. The hero of this novel is ruined financially, therefore he indulges in unlawful activities like murder and smuggling. The novel has plainly portrayed the death and wound.

In 1930, Hemingway‘s interest centred around the Spanish War, its slaughter, death and violence, which he has depicted in ‘For Whom the Bell Tolls’. He became imbued with the idealism of the international Brigade and sided with the Loyalists, fighting in War with the Falangists. Robert Jordan, the hero of this novel is motivated by the idealism of Hemingway, and wishes to defeat enemies on behalf of the Republicans. In this conflict, there are acts of savagery and barbarism. The novel is replete with the accounts of death, slaughter, bombardment, war, violence and brutality.

In A Farewell to Arms, the hero is Hemingway himself in another guise with his sense of suffering. Frederic Henry, the main character and hero, portrays the life of Hemingway. He has borne the wounds of battle as Hemingway himself did. Henry has seen the ghastly savages of War. The hero has participated in the War and violence and has experienced despair, cruelty, disillusionment and barbarity.

Going through the novels of Hemingway, the wound, the violent death and violence are the theme of Hemingway’s works. Hemingway has grappled with this predicament of the man in modern age. The love of violence and the wound is his special predilection which manifested itself in his various manly pursuits, his career as a soldier, his love of boxing and hunting, and love for bullfighting. His art is mostly autobiographical and bears the impression of his own personality, his experiences of mortal injury and his problem of adjustment with the world.

References :-

1. Ernest Hemingway. *Death in the Afternoon*, Arrow books, The Random House Group Limited London, 2004.
2. Ernest Hemingway, *To Have or Have Not*, Arrow books, The Random House Group Limited London, 2004.
3. Ernest Hemingway, *The Old Man and The Sea*, Arrow books. The Random House Group Limited London. 2004.
4. Ernest Hemingway. *For Whom the Bell Tolls*, Arrow books. The Random House Group Limited London, 2004.
5. ErnestHemingway, *A Farewell to Arms*, Arrow books, The Random House Group Limited London, 2004.
6. Ernest Hemingway, *The Sun Also Rises*, Arrow books, The Random House Group Limited London, 2004.
7. Baker, Carlos, *Ernest Hemingway: A Life Story,* NewYork: Charles Scribner’s Sons,1969
8. Mandel, Miriam. *Reading Hemingway: the Facts in the Fictions.* Scarecrow Press: Metuchen, NJ and London, 1995.

****

Human Resource Information System : An Innovative Strategy for Human Resource Management

Dr. Aalok Kumar Yadav *

Abstract - In order to deal with the fast moving world, organizations have started using information systems. These systems, not only helps the firm to gain a competitive advantage, but also leads to enhancement of quality, increase in efficiency as well as more effectiveness in work. With the similar objective in mind, Human Resource Departments adapt an Information System which is popularly known as Human Resource Information System (HRIS). For any organization, these systems have arisen as a very crucial instrument for achievement of Human Resource goals. Human Resource Information Systems are used for various tasks like collection of information, record and store them as well as generating results by analyzing the data. It not only helps in retrieving the information at a faster pace, but also helps in reducing the administrative tasks.With the help of HRIS, communication among the HR Department improves, leading to reduction in the costs and consumption of time which helps the department to play a more strategic role in the organization.The idea has been that HRISwould allow for the HR function to become more efficient and to provide better information fordecision-making.There has been a considerable increase inthe number of organizations use HRIS. HRIS has become a critical factor in makingbusiness competitive and effective. This paper focuses on the importance of HRIS towards business competitiveness &different modules of HRIS.The aim of this paper is to highlight the importance of HRIS andto give a comprehensive insight of the subject.
Key words - Human Resources, Human Resource Information System, HRIS.

Introduction - Evolution of Human Resource Management Systems - Human Resource Information System is a collection of processes, applications, systems and modules covering the aspects of both Human Resource and Information Technology. It is also known as Human Resource Management System. This system mainly covers the modules like

1. Managing Employee Data
2. Recruitment
3. Training and Development of Employees
4. Salary and Compensation of employees
5. Resignation/Termination of Employees
6. Managing Retirement of Employees

Years ago, IT departments used to run the Human Resource Information System applications which had main focus on retaining employee data and running payrolls. With the passage of time, these systems evolved with the advancement of technology and the Human Resource Department started taking care of the system. Following diagram shows the development of Human Resource and Information Technology over the years

Deptt./Year	1970-1980	1990-2000	2000-2010
IT	Mainframes	Personal Computers and Internet	Cloud Computing and Mobile Applications
HR	Customized Human Resource Management Systems	ERP:SAP, PeopleSoft	HR Metrics, Social Networking

The development of Human Resource Information System can be characterized in five different eras namely

1. Pre-World War II (20th Century)
2. Post-World War II (1945-1960)
3. Social Issues (1963-1980)
4. Cost Effectiveness (1980-Early 1990)
5. Technological Advancement (1990 to Present)

Pre-World War II (20th Century) - During this era, there were very few influences in employment relations from Government. Owners of the firm used to decide on the terms of employment. The main focus of HR departments was just limited to recordkeeping. Personnel management played a role of caretaker during this era. This was the period of time when the central thrust of HR Department was to maximize the productivity of employees. Money was always considered as the main source of motivation.

Post-World War II (1945-1960) - This was the era when managers realized that employee productivity and motivation had a significant impact on profitability of firm and they came to know that employees were not just motivated by money but also by social and psychological factors.Employers

* Principal, Govt. Polytechnic College, Hoshangabad (M.P.) INDIA

started Classification of workers and job descriptionswere formed which helped in designing compensation system. Due to abusive trade practices that prevailed prior world war, employees started forming **trade unions.** Personnel departments had to report to government agencies and hence they were supposed to keep records. During this period, c**omputer technology** began to emerge for storing and retrieving employee information. Payroll was the only function which got automated at this time. As the newly invented computer technology was too expensive, only the large firms stared harvesting the benefits of it.

Social Issues (1963-1980) - At this time, there was an increase in the amount of labor legislation that governed various parts of employment relationship like occupational health and safety, retirement benefits, etc. Hence, personnel department was burdened with additional responsibility that required collection, analysis and reporting of huge volume of data to statutory authorities. This was the era when Human Resource Management was born. There was an increase in the demand for HR Departments to adopt computer technology for processing employee information more effectively and efficiently. Personnel function transformed from caretaker to protector. Technology was evolving and delivering better productivity at lower cost during this period. Development of comprehensive Management Information System (MIS) took place too. Decreasing computer technology cost and Increasing Employee Cost made acquisition of HRIS a necessity.

Cost Effectiveness (1980-Early 1990) - With increasing competition and to gain competitive advantage, companies started focusing on cost reduction through automation and other productivity improvement measures. Overall functional focus of an organization shifted from employee administration to employee development and involvement in taking decisions. To improve effectiveness and efficiency in service delivery, through cost reduction and value-added services, the HR departments had to adopt technology that was becoming cheaper and more powerful.

Technological Advancement (1990 to Present) - The economic landscape underwent drastic changes throughout the 1990s with increasing globalization, technological breakthroughs (particularly Internet-enabled Web services), and hyper competition.Today firms realize that innovative and creative employees hold the key to organizational knowledge provide a sustainable competitive advantage.The increased use of technology and the changed focus of theHRM function led to the emergence of the HR department as a startegic partner. With the growing importance and recognition of people strategic HRM (SHRM) has become critically important in management thinking and practiceEmphasis on "Best-practice" approach is made instead of resource based or system based model. Using the information recorded and analyzed in the HRIS, HRP can provide estimates of whether or not there are enough people available in the external labor market of the new location to staff the new facility. Thus, the availability of potential employees in the labor market may be critical to the strategic decision to build the new facility, and this, of course, could involve millions or billons of dollars.Therefore, in determining the strategic fit between technology and HR, it is not the strategy that leads to competitive advantage but rather how well it is "implemented".

Concept Of Human Resource Information System - An HRIS, which is also known as a human resource information system or human resource management system (HRMS), is nothing but juncture of human resources and information technology through HR software. With the help of this HR processes as well as activities begins to take place electronically.

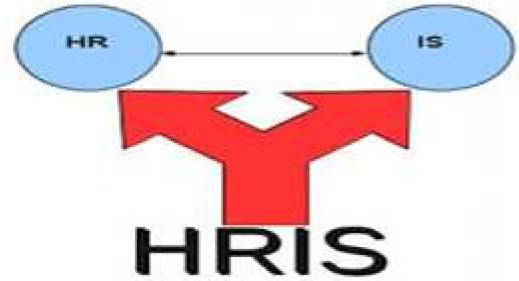

HRIS is called system as it integrates all the scattered and fragmented data into a proper format and makes it useful for people all over the organization. This data in turn leads to proper decision making. Various definitions of HRIS is given by different authors. There are different definitions of HRIS. Kavanagh et al. (1990) defines HRIS as a system used to acquire, store, manipulate, analyze, retrieve and distribute information regarding an organization's human resources. An HRIS is not simply computer hardware and associated HR-related software. Although an HRIS includes hardware and software, it also includes people, forms, policies and procedures, and data.

John Reh (1997) says that Human Resource Information System is a system that lets you keep track of all your employees and information about them.

According to Kovach et al.(1999), HRIS is a systematic procedure for collecting, storing, maintaining, retrieving, and validating data needed by organization about its human resources, personnel activities, and organization unit characteristics.

The main concern for introducing HRIS is to render accurate and timely information not only to the employees and employers, but also to the clients of the organization. Information derived from an HR system helps in making all types of strategic, tactical and operational decisions. It also helps in evaluating policies and procedures, identify biasness if any, helps in monitoring attendance and other operations. Hence, there is a compulsory requirement of thistypes of system in a firm.

Importance Of Human Resouce Information System - Any organization, whether big or small, has lots of information related to the firm, its employees as well as the clients. It is necessary to secure and protect this information in a proper

manner. The main reasons for protecting this data can be any of the following:

1. Threat of getting the information stolen
2. Reduction in the paper usage
3. Proper organization of data
4. Streaming the database

A properly maintained Human Resource Information System helps the firm in many ways like

1. Proper organization of data collected.
2. Storing and processing huge amount of data.
3. Work environment of the organization becomes project based.
4. Helps in keeping the track of employee attendance.
5. It becomes easy to identify the training needs.
6. Payroll of employees can be done quickly with ease
7. Reduction in the amount and cost of stored human resource data
8. Employee empowerment
9. Allows employees to exchange information with greater ease and without the need for paper
10. Provides comprehensive information picture as a single, comprehensive database
11. Job Matching
12. Job Description

Below table depicts the major function and activities of Human Resource Information System

Major Functions	**Major Activities**
Strategic Integration	Helpfulfor top management in making long term Manpower Planning
Personnel Development	Helps in enhancing the skills and abilities of employees. Quality of work life also gets boosted.
Communication and Integration	Useful in Inter-organizational communicationsupport and coordination
Records and Compliance	Used to manage organizational information and ensure compliance in governmental activities
Human Resource Analysis	Acts as regular mean of gathering and diagnosing human resource needs.
Knowledge Management	Facilitates development and information retention of beneficial human resource practices
Forecasting and Planning	Useful for long term planning related to the needs of organization
Organizational Vision	Drives and integrates the HRIS factors for generating positive outcomes

Conclusion - HRIS is a tool which keeps the record of organizational information and provides with a huge data related to employees, payroll, absenteeism, manpower planning, recruitment, grievance handling, discrepancy management, training and development needs and many more. The systems not only provide valuable outputs to the HR Department but also help the Top managers in the process of decision making. The HR manager can play to role of strategic partner only by implementation of such system in the firm. It is an essential tool for managers.

References :-

1. Lawler. E. E. Mohr man S.A. (2001).,"HR as a strategic partner": what does it taketo make it happen? **Journal of Human Resource Planning** Vol.26 (3), pp 15-29.
2. Gerardine De Sanctis, (1986)., "Human resource information systems A currentassessment" **Journal of** MIS **Quarterly,** Vol 10, (1), pp 15-27.
3. Kavanagh.D (1990).,**British Politics Today,** Manchester: Manchester University Press, pp 11-13
4. Tannenbaum.S.I (1990.,) "HRIS information: user group implications " **Journal ofSystems Management,** Vol. 41 No.l pp.27-32,36.
5. John Reh,(2006)., "Key Performance Indicators (KPI), How an organizationdefines and measures progress toward its goals ".<http://management.about.com/cs/general management/a/keyperfindic 2.htm>.
6. Kovach, Kenneth.A. andCathcart, Charles.E. Jr.(1999)., "Human resourceinformation systems (HRIS): Providing business with rapid data access,information exchange and strategic advantage **"Public Personnel Management**28, (2), pp 275-282.
7. Haines, Victor.Y.,and Petit, Andre. (1997).,Conditions for Successful HumanResource Information Systems. **Journal of Human Resource Management.**Vol 36 (2),pp 261-275.
8. W.O. Hagood and L. Friedman, Using the balanced scorecard to measure the performance of your HRinformation system, Public Personnel Management 31(4) (2002) 543–57.
9. V.Y. Haines and A. Petit, Conditions for successful human resource information systems, HumanResource Management 36(2) (1997) 261–75.
10. K.A. Hawick, H.A. James, C.J. Patten and F.A. Vaughan, DISCWorld: a distributed highperformance computing environment. In: P.M.A. Slot et al. (eds), Proceedings of High Performance
11. Computing and Networking, International Conference and Exhibition (HPCN) Europe 1998,Amsterdam, April 21–23 1998 (Springer, Amsterdam, 1998) 598–606.
12. S.I. Tannenbaum, Human resource information systems: user group implications, Journal of Systems
13. Management 41(1) (1990) 27–32.
14. Satish M. Badgi, Practical Guide to Human Resource Management

****

महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा का समालोचनात्मक परिप्रेक्ष्य

डॉ. बी. के. गुप्ता*

प्रस्तावना – राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का व्यक्तित्व और कृतित्व आदर्शवादी रहा है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओतप्रोत था। संसार के अधिकांश लोग उन्हें महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रूप में जानते हैं। पर उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति हेतु शिक्षा का एक मत्वपूर्ण योगदान होता है। गांधीजी का शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष योगदान रहा है। उनका मूलमंत्र था 'शोषण–विहीन समाज की स्थापना करना'। उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। अत: गांधीजी ने जो शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की व्याख्या की तथा प्रारंभिक शिक्षा योजना उनके शिक्षादर्शन का मूर्त रूप है। अतएव उनका शिक्षादर्शन उनको एक शिक्षाशास्त्री के रूप में भी समाज के सामने प्रस्तुत करता है। उनका शिक्षा के प्रति जो योगदान था वह अद्धितीय था। उनका मानना था कि मेरे प्रिय भारत राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का व्यक्तित्व और कृतित्व आदर्शवादी रहा है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओतप्रोत था। संसार के अधिकांश लोग उन्हें महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रूप में जानते हैं। पर उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति हेतु शिक्षा का एक मत्वपूर्ण योगदान होता है।

द ब्यूटीफुल ट्री – स्व. डॉ0 धर्मपाल प्रसिद्ध गाँधीवादी चिन्तक रहे हैं। उन्होंने भारतीय ज्ञान, विज्ञान, समाज, राजनीति और शिक्षा को लेकर बहुत ही महत्वपूर्ण शोध किया है। गाँधी के वाक्य 'द ब्यूटीफुल ट्री' को जस का तस लेकर डॉ0 धर्मपाल ने अपना शोध शुरू किया और अँगरेजों और उससे पूर्व के समस्त दस्तावेज खंगाले। जो कुछ भारत में मिला उन्हें संग्रहालयों और ग्रंथालयों से लिया और जो जानकारी भारत से बाहर ईस्ट इंडिया कंपनी और यहाँ तक कि सर टामस रो से लेकर अँगरेजों के भारत छोड़ने तक की, इंग्लैंड में उपलब्ध थी, उसे वहाँ जाकर खोजा। धर्मपालजी ने अँगरेजकालीन घटनाओं का जो ऐतिहासिक अन्वेषण कर यह साबित किया कि जिस प्रकार उन लोगों ने न केवल हमारे अर्थशास्त्र और कुटीर उद्योग को समाप्त कर हमारे पूरे अर्थतंत्र को डस लिया, बल्कि भारत का सांस्कृतिक, साहित्यिक, नैतिक और आध्यात्मिक विखंडन भी किया जिससे भारत अपना भारतपन ही भूल गया और अँगरेजी शिक्षा से आच्छन्न यहाँ के कुछ बड़े घरानों के लोग भारत भाग्य विधाता बन गए।

बुनियादी शिक्षा – भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के समय गांधीजी ने सबसे पहले बुनियादी शिक्षा की कल्पना की थी। आज जिसे विश्वविद्यालय स्तर पर 'फाउंडेशन कोर्स' कहा जाता है, उसकी पृष्ठभूमि में गांधी की बुनियादी यानी बेसिक शिक्षा ही तो थी। इस बुनियादी प्रशिक्षण और प्राथमिक स्तर की शिक्षा के दो स्तर थे– स्कूली बच्चे कक्षा–एक से ही तकली से सूत कातते थेय रूई से पौनी बनाते थे और सूत की गुड़िया बनाकर या तो खादी भंडारों को देते थे या बैठने के आसन, रुमाल, चादर आदि बनाते थे। शिक्षा के बारे में गांधीजी का दृष्टिकोण वस्तुतरू व्यावसायपरक था। उनका मत था कि भारत जैसे गरीब देश में शिक्षार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के साथ–साथ कुछ धनोपार्जन भी कर लेना चाहिए जिससे वे आत्मनिर्भर बन सकें। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने 'वर्धा शिक्षा योजना' बनायी थी। शिक्षा को लाभदायक एवं अल्पव्ययी करने की दृष्टि से सन् 1936 ई. में उन्होंने 'भारतीय तालीम संघ' की स्थापना की।

हरिपुर अधिवेशन – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हरिपुर अधिवेशन में बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा योजना की स्वीकृति के बाद सन् 1938 से ही बुनियादी शिक्षा में अनेक प्रयोग आरंभ हो गए थे किंतु वे अलग अलग और सीमित स्तर पर किए गए। सन् 1939 ई. में द्वितीय महायुद्ध के छिड़ जाने से एक और कठिनाई उपस्थित हो गई। कांग्रेस मंत्रिमंडल को राजनीतिक कारणों से इस्तीफा देना पड़ा। उनसे यह आशा की जाती थी कि वे बुनियादी शिक्षा के विकास में सहायक होंगे। किंतु उनके इस्तीफे के परिणामस्वरूप, कुछ प्रांतों में प्रयोग बिलकुल बंद कर दिए गए और अन्य प्रांतों में प्रयोग के प्रति उदासीनता दिखाई देने लगी। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद ही बुनियादी शिक्षा को शिक्षा की राष्ट्रीय पद्धति के रूप में गंभीरतापूर्वक स्वीकार किया गया।

बुनियादी शिक्षा का प्रसार – बुनियादी शिक्षा निरंतर प्रगति करती रही है क्योंकि बेसिक स्कूलों की संख्या बराबर बढ़ती रही है। किंतु साधारण प्रारंभिक और मिडिल स्कूलों की अपेक्षा बेसिक स्कूलों की संख्या की वृद्धि की गति में कमी रही है। बेसिक स्कूलों में प्रवेश का जहाँ तक संबंध है स्थिति संतोषजनक नहीं रही है। लक्ष्य तो यह था कि बेसिक शिक्षा में 6 से 14 वर्ष के वर्गवाले सभी लड़कों एवं लड़कियों के लिये बुनियादी शिक्षा का प्रबंध किया जाए। किंतु प्रथम दो योजनाओं में कोई महत्वपूर्ण प्रगति इस शिक्षा में नहीं हुई। इस काल में बुनियादी शिक्षा के प्रसार की प्रगति उतनी भी नहीं हुई जितनी साधारण प्रारंभिक शिक्षा के प्रसार की, यद्यपि साधारण प्रारंभिक शिक्षा की प्रगति भी संतोषजनक नहीं है।

बुनियादी शिक्षा की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है जिससे लोग साधारणतया सहमत हों। बुनियादी शिक्षा के वास्तविक मूल तत्व एवं निश्चित लक्ष्य के संबंध में बहुत ही गड़बड़ी दिखाई देती है। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों को प्रतिपादित करते समय एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की थी। वह उत्पादक कार्य को शिक्षा का केंद्र मानते थे

* शिक्षा विभाग, जे. एन. एम. पी. जी. कॉलेज, बाराबंकी (उ.प्र.) भारत

किंतु वास्तविक प्रयोग में उत्पादक कार्य द्धारा शिक्षा के सिद्धांत के भिन्न भिन्न अर्थ हो गए हैं। कुछ शिक्षाविद्, जो गांधी जी के अनुयायी होने का दावा करते हैं, विद्यालयों में प्रयोग योग्य वस्तुओं के वास्तविक उत्पादन पर जोर देते हैं। कुछ लोगों का मत है कि इसका अर्थ खेल विधि द्धारा शिक्षा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

आत्मनिर्भरता – बुनियादी शिक्षा में आत्मनिर्भरता का प्रश्न और भी विवादपूर्ण है। गांधी जी आत्मनिर्भरता को शिक्षा का वास्तविक मापदंड समझते थे। आत्मनिर्भरता से उनका तात्पर्य यह था कि बेसिक स्कूल इस सीमा तक स्वावलंबी हो जाएँ कि अध्यापकों का वेतन विद्यालयों में बच्चों द्धारा उत्पादित वस्तुओं को बेचकर दिया जा सके। इसलिए आरंभ में बुनियादी शिक्षा के समर्थकों का बहुत बड़ा वर्ग इस बात की आशा करने लगा कि यदि बुनियादी शिक्षा के लिए समुचित वातावरण पैदा किया जाए तो इसका अधिक मात्रा में खर्च निकल जाएगा और अवशेष खर्च सरकार दे देगी जिससे बेसिक स्कूल दक्षतापूर्वक चल सकेंगे। किंतु अनुभव से यह अनुमान गलत सिद्ध हुआ। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्धारा नियुक्त पिरेस–लाखानी समिति ने इस समस्या का अध्ययन किया और बताया कि 1950–1951 में बिहार में, जो बुनियादी शिक्षा का प्रमुख प्रदेश समझा जाता था, कोई भी विद्यालय 41.09 प्रतिशत से अधिक स्वावलंबी नहीं था। सेवाग्राम (वर्धा) का बेसिक स्कूल, जो हिंदुस्तानी तालीमी संघ के पथप्रदर्शन एवं निरीक्षण में चल रहा था, 63 प्रतिशत तक स्वावलंबी था। इस दिशा में बेसिक विद्यालयों की सूची में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने का गौरव प्राप्त किया था। सन् 1949–1950 में बिहार प्रदेश के 100 बेसिक स्कूल, जिनमें 18 सीनियर बेसिक स्कूल भी थे, केवल 15 प्रतिशत ही स्वावलंबी हो सके। तब से साधारण तौर से, परिस्थिति में अच्छाई की ओर कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। भारत सरकार द्धारा बुनियादी शिक्षा के लिये प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में जो मूल्यांकन समिति नियुक्त हुई थी वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची।

विनोबा भावे का समर्थन – भारत सरकार ने 'बुनियादी शिक्षा की संकल्पना' शीर्षक पुस्तिका में स्वावलंबन का उल्लेख तक नहीं किया। यहाँ तक कि गांधीवाद के आदर्शों के महान पोषक विनोबा भावे का भी अब यह विचार हो गया है कि बच्चों द्धारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय का लाभ शिक्षा पर होनेवाले उचित खर्च के कम करने पर प्रयोग न किया जाए बल्कि वह अभिभावकों (माता पिता) को मिलना चाहिए जिससे वे अपने काम में अपने बच्चों की सहायता से लाभ न उठा सकने के कारण हुई क्षति को पूरा कर सकें। ऐसा लगता है, सरकार भी सिद्धांत रूप से यह स्वीकार करती है कि बच्चों के उत्पादक कार्य से प्राप्त लाभ उन्हीं के हित में खर्च किया जाए, जैसे विद्यालय के परिधान (यूनीफार्म) या मध्यान्ह के भोजन के प्रबंध पर।

अधिक लागत – अब यदि बुनियादी शिक्षा सभी बच्चों को दी जाए तो सार्वभौम शिक्षा के स्तर तक पहुँचने में बहुत अधिक समय लगेगा। बुनियादी शिक्षा उच्च कोटि की होने के कारण अधिक महंगी है। बुनियादी शिक्षा की राष्ट्रीय समिति द्धारा नियुक्त सहायक समिति (1963) की सिफारिशों से स्पष्ट है कि एक साधारण प्रारंभिक विद्यालय को बेसिक स्कूल में परिवर्तित करने में कम से कम जितने साधनों की आवश्यकता है उन्हें ध्यान में रखते हुए प्रारंभिक शिक्षा के साथ साथ ही बुनियादी शिक्षा का विकास होना आवश्यक प्रतीत होता है। आवश्यकता इस बात की है कि एक दूरदर्शी योजना बनाई जाए जिसके अनुसार बुनियादी शिक्षा का विस्तार बराबर होता रहे ताकि अंत में यह राष्ट्रीय स्तर पर प्रारंभिक शिक्षा की सुधरी हुई पद्धति के रूप में विकसित हो जाए। परंपरागत सिद्धांतों पर ही काम कर रहे बेसिक स्कूलों को कम से कम अनिवार्य शर्तों की पूर्ति करते हुए सच्चे बेसिक स्कूल बनाना चाहिए। जिन विद्यालयों का पूर्ण विकास नहीं हो सका है उनको अधिक से अधिक सहायता देनी चाहिए ताकि वे आदर्श बेसिक स्कूल बन सकें और दूसरे उनका अनुकरण करें। बुनियादी शिक्षा के विस्तार को लगातार बढ़ाते रहें। साधारण विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में बदलें और नए बेसिक स्कूल खोलें। अधिकांश प्रदेश बेसिक स्कूलों की संख्या को प्रतिवर्ष कम से कम 5 प्रतिशत तो बढ़ा हो सकते हैं।

उद्योगों का चयन – बेसिक स्कूलों के लिए उद्योग चुनते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उद्योग शिक्षा की दृष्टि से समृद्ध हों तथा सामाजिक वातावरण और बच्चों की अवस्था के अनुकूल हों। कच्चे माल की बरबादी को रोकने के लिए बेसिक स्कूलों की निम्न श्रेणियों में उद्योग संबंधी कार्य उस समय तक न कराया जाए जब तक बच्चे इतने परिपक्व न हो जाएँ कि वे इसका प्रयोग लाभपूर्वक कर सकें। मिट्टी का काम, प्रारंभिक बागवानी या कुछ कम खर्चवाले हाथ के काम नीचे की कक्षाओं में कराए जा सकते हैं। बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में इस आधार पर परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

उत्तार बुनियादी विद्यालय – सभी प्रारंभिक विद्यालयों में बुनियादी शिक्षा के कुछ तत्व सरलतापूर्वक अपनाए जा सकते हैं, जैसे स्वास्थ्य संबंधी क्रियाएँ, सामाजिक सेवा के कार्यक्रम, सांस्कृतिक कार्यकलाप इत्यादि। ऐसा विद्यालय, जिसके पास पर्याप्त मात्रा में भूमि हो और सिंचाई की सुविधाएँ पर्याप्त हों, फल और तरकारियों के उत्पादन का कार्य कर सकता है। यह आवश्यक है कि जिन विद्यालयों में ये क्रियाएँ आरंभ की जाएँ, उनका भली भाँति नियोजन किया जाए और साथ ही, उनसे पूरा पूरा शैक्षिक लाभ उठाया जाए। उत्तर बुनियादी विद्यालय को बहुद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की एक शाखा समझना चाहिए जहाँ उस उद्योग में योग्यता प्राप्त करने पर बल दिया जाए जिसे एक छात्र बेसिक स्कूल से करता चला आया है। 1957 में सेंट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑव एजुकेशन की राय से केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्धारा इस मामले में सविस्तार अध्ययन के लिए नियुक्त की गई समिति ने उत्तर बुनियादी शिक्षा के देश की प्रचलित माध्यमिक शिक्षा पद्धति का एक अंग बने रहने पर जोर दिया है।

निष्कर्ष – बेसिक स्कूल की शैक्षिक योजना को सुचारु रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापकों की शैक्षिक पृष्ठभूमि उच्च कोटि की हो और वे अपने कार्य में प्रवीण हों। प्रारंभिक विद्यालयों के लिए अध्यापक तैयार करनेवाली सभी प्रशिक्षण संस्थाएँ बेसिक ढंग की होनी चाहिए। प्रत्येक प्रदेश के प्रत्येक जिले में एक आदर्श प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किया जाए। इस प्रशिक्षण विद्यालय के साथ चार पाँच बेसिक स्कूल संलग्न होने चाहिए। इस केंद्र में पर्याप्त रूप से अध्यापक एवं उपकरण हों और बुनियादी शिक्षा का संपूर्ण कार्यक्रम इसी के द्धारा पूरा किया जाए। यह एक प्रशिक्षण के बहुग्राही महाविद्यालय (कांप्रीहेंसिव कालेज ऑव एजुकेशन) का अभिन्न अंग हो जिसमें कई प्रशिक्षण संस्थाएँ हों जो शिक्षा के सभी स्तरों एवं विद्यालय के कार्यक्रम की भिन्न भिन्न शाखाओं के लिए अध्यापक तैयार करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. लाला रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
2. पचौरी डॉ0 गिरीश, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, लायल बुक डिपो, मेरठ।
3. पाण्डेय डॉ0 रामशकल, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मन्दिर।

गैरतगंज ब्लाक में कृषि का निदानात्मक अध्ययन

रत्नेश नारायण श्रीवास्तव*

शोध सारांश – प्रस्तुत अध्ययन मध्यप्रदेश के रायसेन जिले के एक कृषि प्रधान ब्लाक, गैरतगंज में किया गया। गैरतगंज, म.प्र. की राजधानी भोपाल से मात्र 100 कि.मि की दूरी पर स्थित है। प्रकृतिक संसाधनों से भरपूर व मेहनती किसान होने के बाबजूद यह कृषि में पिछड़ रहा है व किसान की लागत अधिक हो जाने के कारण उसका लाभ कम हो रहा है। इस समस्या को लेकर ब्लाक के 78 गांवो में अध्ययन किया गया इन गाांवो का भ्रमण कर वहाॅ के लगभग 4000 कृषको से सीधा संवाद किया और कृषि के विभिन्न आयामो पर प्रश्नोत्तर के माध्यम से जानकारी हासिल की। ठलाक में खरीफ में सोयाबीन उड़द एवं तुवर ली जाती है व रबी में चना गेंहू लिया जाता है। किसानो में चना पर चना व सोयाबीन लेने कि प्रवृत्ति 80 प्रतिशत किसानों में पायी गई। जो कि कम उपज व बीमारियों का बड़ा कारण है। इसके उपचार के लिए किसानों को फसलो का हेर – फेर व समन्वित कृषि के बारे में बताया। सिंचाई कृषि का प्राण है, इस इिंदु पर जब चर्चा हुई तो पता चला कि 90 प्रतिशत कृषक खुल्ला पानी बहाव पद्धिति से दे रहे है। 10 प्रतिशत में सब्जी उत्पादक व कुछ प्रगतीशील कृषक है जो कूॅड, क्यारी व स्प्रिंकलर और ड्रिप का उपयोग करते है। किसानो को सिंचाई विधियाम्‌ अपनाने के लिये सहमत किया। खाद, जो आधुनिक कृषि का महत्वपूर्ण आदान है उसके बारे में चर्चा करने पर यह ज्ञात हुआ की 70 प्रतिशत किसान यूरिया व डीएपी की निर्धारित से अधिक मात्रा डाल रहे है। 12 प्रतिशत किसान ही निर्धारित से अधिक मात्रा डालते है 18 प्रतिशत अनुपलठधता के कारण कम मात्रा डाल पाते है। कीटनाशन व अन्य इसी तरह के आदान किसान बाजार की सिफारिश के आधार उपर खरीदता है न कि किसी मान्य स्त्रोत जैसे कृ. वि. के / कृषि महाविद्यालय / कृषि विभाग। यह बात 95 प्रतिशत किसानो पर लागू होती है। बीजोपचार चने में 80 प्रतिशत किसान करते है किन्तु जैविक खाद या हरी खाद का उपयोग बिलकुल नहीं होना पाया गया। बीज दर के मामले में तो यह पाया गया कि शत प्रतिशत किसान दो से ढाई गुना बीज बोते है। गेंहू में 80 – 100 कि. व चना 60 – 70 कि. व सोयाबीन 60 से 80 प्रति हेक्टेयर बोया जाता है। यहाॅ शत प्रतिशत खेती ट्रेक्टर से हो रही है। एम.बी प्लाउ व सीड ड्रिल तो पर्याप्त उपयोग हो रहे है किन्तु अन्य कृषि यंत्रो का अभाव है। कटाई 40 प्रतिशत हॅसिये से व 60 प्रतिशत हावेस्टर से होती है। टोल फ्री नं. व किसान काल सेंटर के बारे में कोई नहीं जानता। उपयुक्त सभी कमियों को दूर करने के लिए किसानों को प्रभावी ढंग से सुझाव दिये गये और उन्हे समझाया कि कैसे उनकी लागत कम होगी और उपज बढ़ेगी तो लाभ अपने आप बढ़ेगा।

अध्ययन क्षेत्र एवं अध्ययन विधि – गैरतगंज, रायसेन जिले का एक कृषि प्रधान ब्लाक है। जो कि 918.76 किमी. के मोगोलिक क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाॅ की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 1,25,018 है। जिसका लगभग 85 प्रतिशत भाग गावो में रहता है। उस ब्लाक में 52 ग्राम पॅचायतों के अतंर्गत 172 गांव है जिसमें से 78 मुख्य गांवो में यह अध्ययन किया। सभी 78 गांवो के लगभग 4000 स्त्री पुरूषो से सीधा संवाद किया व प्रश्नावली के माध्यम से व निराक्षण से जानकारी प्राप्त की। पूरे ब्लाक में मुख्य रूप से काली मिट्टी पाई जाती है। वर्षा भी अच्छी होती है।(औसत वार्षिक वर्षा 1207 मिमी.) खरीफ व रबी दोनो मौसम में फसले ली जाती है। जिसमें से प्राप्त जानकारी का विश्लेषण करने पर निम्न लिखित जानकारी प्राप्त हुई।

परिणाम :

फसलें – ब्लाक में खरीफ मौसम में सोयाबीन धान, उड़द, अरहर लगाने का चलन है किन्तु पिछले दो वर्ष में सोयाबीन का क्षेत्र कम होकर धान का क्षेत्र बढ़ रहा है ब्लाक के पश्चिमी व उत्तरी क्षेत्र मे धान मुख्य रूप से बोई जाती है । पूर्वी भाग पथरीला व कम मिट्टी वाला होने से यहा उडद, अरहर, सोयाबीन, मक्का आदि बोया जाता है। रथ यात्रा के दौरान जब किसानों को समझाया कि वे फसल चक्र अपनाये व फसलो को हेर–फेर कर ले किन्तु इन दोनों बातों पर वे आसानी से सहमत नही हो रहे थे । फिर उन्हे विस्तार से इसके लाभ बताये और होने वाली आमदनी से जोड़कर इस बात को समझाया कि कैसे इनकी फसल बीमारियों से बचेगी उपज ज्यादा होगी तब किसान इस बात से सहमत हुए एक आदर्श विकल्प के रूप में उन्हें बताया कि कुल रकबे के 20 प्रतिशत भाग में उद्यानिकी की फसले ओर बाकी में जल उपलब्धता भूमि लागत क्षमता के आधार पर बदल–बदल कर फसल लें।

सिंचाई – पूरे ब्लाक में लगभग 53 प्रतिशत भाग में कृषि क्षेत्र सिंचित है सिंचाई मुख्य जल से नलकूप, कुए, नालों/तालाबों व नहर से होती है। इसमें सर्वाधिक 64 प्रतिशत भू–जल से, 9 प्रतिशत नहर से व 27 प्रतिशत नालों पर डीजल पंप सेट रखकर की जाती है । जुझारपुर व पडरियागंज में माइनर इरिगेशन का टेंक है जिसकी नहर से सिंचाई होती है। पूरे ब्लाक के भ्रमण में एक बात यह स्पष्ट हुई कि सिंचाई का स्त्रोत चाहे जो हो पानी खुल्ला (बहाव पद्धति) ही लगाया जाता है सिर्फ सब्जी उत्पादक किसान ही क्यारियॅा व कूॅण बनाते है। स्प्रिंकलर व ड्रिप चलते हुए कहीं नही मिले अलबत्ता कई जगह ड्रिप के पाईप खूटियो पर टंगे व स्प्रिकलर के पाईप दहलान पर रखे हुए है। सर्वाधिक जोर इस बात पर दिया गया कि किसान ड्रिप और स्प्रिंकलर की ही उपयोग करें। इस बात को उन्हें यू समझाया गया कि सिंचाई का तरीका बदलने मात्र से उनके लाभ में वृद्धि होगी क्योंकि वे उतने ही पानी से ज्यादा रकबा सींच लेंगे ओर सिंचाई अवधि कम हो जाएगी जिससे उतने दिनों का डीजल का खर्च बचेगा जो लागत में कमी करेगा। नहरी क्षेत्र के किसानो को बार्डरपट्टी पद्धति के लिए तैयार किया गया और इस पूरे सिंचाई व्यवस्था बदलने से 90 प्रतिशत किसान सहमत हुए।

* सह – प्राध्यापक (मृदा एवं जल अभियांत्रिकी विभाग) कृषि महा विद्यालय, गंज बासौदा, जिला विदिशा (म.प्र) भारत

खाद – पूरे ब्लाक मे यूरिया डीएपी का ही उपयोग होता है जबकि पोटाश, सल्फर, जिंक और अन्य सूक्ष्म तत्वों की कमी भी किसानों के द्वारा बताई समस्याओं के कारण रूप में समझ में आई इस संदर्भ में किसानों को खाद क्यों दिया जाता है, मिट्टी में पोषक तत्वों की उपस्थिति व कमी को बताया ओर यह बताया कि मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही खाद की मात्रा निर्धारित की जा सकती है। अत: सबसे पहले आप मिट्टी का परीक्षण करायें। इस बात का किसानों पर असर हुआ और सभी गावों से मिट्टी के नमूने परीक्षण हेतु आयें किसानों को समझाया कि खेती की लागत में खाद सबसे खर्च वाला मद है यदि उसकी लागत आधी हो जाए तो हमारा लाभ बढ़ जाएगा। अत: हमें आधा रासायनिक एवं आधा जैविक खाद उपयोग करना चाहिए तब किसानो ने पूछा कि जैविक खाद कहाॅ से मिलेगी तब उन्हे जैविक खाद बनाने की विधिया व उसके लाभ विस्तार से समझाए गए।

रोग व कीट प्रबंधन – जब किसानों से पूछा कि खाद के बाद खर्चे का सबसे बड़ा मद क्या है तो सभी ने समवेत स्वर में कहां कि दवाईयॉ तो उन्हें यह समझाया कि कैसे दवाईयों की लागत कम हो जाएगी और उनका लाभ बढ़ जाएगा। इस क्षेत्र में एक खास चलन यह देखा गया कि किसान विक्रेता के पास जाता है और कहता है पांच एकड में धान लगी है उसका डोज बना दो। दवा विक्रेता 5 –6 दवाओं का डोज देता है जबकि जरूरत एक दवाई की होती है। अत: सबसे पहले किसान उपयुक्त एजेंसी जैसे कृषि महाविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विभाग, उद्यानिकी विभाग आदि से संम्पर्क करें, समस्या बतायें। यहां से आपको सही दवाई बताई जाएगी और किसान लुटने से बचेगें। इस संबंध में उन्हें भारत सरकार के टोल फ्री न. 180–1800–1551 के बारे में भी बताया कि किसानों ने यह न. नोट करते हुए कहां कि उन्हें अभी तक यह पता नहीं था।

किसानों को यह बताया कि फसल में बीमारी मिट्टी से या बीज से ही आयेगी और यदि दोनो का पहले ही उपचार कर लिया, जाए तो दवा का खर्चा बचेगा और उपज भी प्रभावित नही होगी। अत: भूमि उपचार, बीज उपचार, गहरी जुताई , जैविक कीटनाशकों का उपयोग ओर फसलों के हेर–फेर पर बल दिया गया। पूरे क्षेत्र में लगभग 80 प्रतिशत किसानों ने इस बात पर सहमती व्यक्त की।

बीज व बीजदार – बीज दर के मामले में इस भ्रमण के आश्चर्यजनक अनुभव हुआ कि किसान निर्धारित दर से दो ढाई गुना बीज बोते हे उनके दिमाग में यह भ्रांति बैठी है कि धना बोने से ज्यादा उपज होगी। गेहूं में 80 से 100 प्रति हे. चना में 60 से 80 कि. और सोयाबीन में 60 से 80 कि. तक बोते है। इस बात पर किसानों से विस्तार मे चर्चा की गई व उन्हें उदा: से समझाया कि पौधे विस्तार के लिए पर्याप्त जगह, हवा, पानी, धूप चाहिए तभी सही उपज मिलेगी। बीज के मामले में ब्लाक में पर्याप्त जागरूकता है और किसान नई फसलों के बारे में जानकारी लेते रहे ओर बीज बदलना यहां चलन में है। चने की उकरा रोधि जातियों के बारे में किसानों को विस्तार पूर्वक समझाया गया और उसकी उपलब्धता विश्वविद्यालय के कृषि विज्ञान केन्द्र, आर.ए.आर.एस, जेड.ए.आर.एस आदि पर सहज सरल ढंग से होना चाहिए।

कृषि मशीने व यंत्र – पूरे ब्लाक में खेती ट्रेक्टर से ही होती है। रिवर्सीवल एम.बी.प्लाउ, सीड ड्रिल, और कल्टीवेटर आम तौर परकिसान उपयोग करता है किन्तु सीड कम फर्टीलाइजर डिल, रोटावेटर व निंदाई गुड़ाई के यंत्र चलन में नहीं हैं। किसानों को इन यंत्रों के बारे में विस्तार से बताया उनके लाभ समझाये और कहां मिलेगे यह बताया।सभी किसानों ने इनको अपनाने से सकमति व्यक्त की। रिजफरों प्लांटर के बारेमें विस्तार से बताते हुए किसानों को इसके उपयोग के लिए उत्साहित किया।

निष्कर्ष – हमें कृषि को लाभ का व्यवसाय बनाना है तो कृषि के प्रति हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन होना चाहिए अभी तक हम खेती को एक पारम्परिक कार्य मानकर करते चले आ रहे है न कि एक व्यवसाय। अब समय आ गया है कि खेती को व्यवसाय माना जाए तभी लाभ–हानि की बात होगी, तभी उसकी पूरी कार्ययोजना बनाकर काम करेगें खेत की तैयारी से लेकर उत्पाद की विक्रय तक। दूसरी जो महत्वपूर्ण बात है कि अब पारम्परिक खेती की जगह स्मार्ट खेती व समन्वित खेती का समय आ गया है स्मार्ट खेती का तात्पर्य पूरी तकनीक, मशीनों, यत्रो, सूचना प्रौद्योगिकी, मूल्य संवर्धन तकनीकों व बाजार अवसरों का उपयोग करते हुए खेती करना समन्वित खेती का मतलब है कि हमें लगातार आय प्राप्त हो और किसी प्राकृतिक आपदा के कारण यदि फसल प्रभावित हो जाए तो भी किसान का कम चलता रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. व्यक्तिगत शोध के आधार पर।

Stress Management

Dr. Anita Dani *

Abstract - Stress is a forceon person's psychological structure which ascends out of difficulty or strength of one'sforce life. Stress is the emotional, psychological effects caused by an internal or external mental pressure. Stress is the concept in which the mental and physical pressure effects on health. Anunambiguous quantity of stress is well, useful and smoothfavourable. This worth can be translated not only to performance but also to one's health and well-being. Stress is a hostilepsychosomaticprocedure that arises in reply to conservationalpressures. Stress is feeling of emotional or physical tension when faced with difficult situation, different, different people consider different situations as stressful. Stress is the wear and tear body experiences as adjust to changing environment. Stress is indeed a proxy killer as most of the time it goes unnoticed. Stress is a dynamic form in which an individual is defied with an opportunity. An adaptive rejoinder to aperipheralcondition that consequences in physical, intellectual and/or interactivedeviances for structural participants. This paper focus on effects of stress on body, effects of stress on thoughts, effects of stress on Behaviour and find out techniques to control the stress.
Keywords - Chronic stress, clenched jaws, Mood swings, Drug abuse, angry outbursts, crying spells.

Introduction - Stress is too much pressure for too long leads. Stress is a person's experience of emotions that are painful. Stress is a downward spiral that can seriously damage physical and mental well-being. Stress change life. Stress is the word that many people use whey they describing the demands of life seems to be becoming too great form them to cope with.

Kinds Of Stress:

- **Acute Stress:** Acute Stress is usually quite intense, and then disappears quickly. Imagine being out for a leisurely evening walk, a monkey jumps.
- **Chronic Stress:** Chronic Stress is long- term stress resulting from those nagging problems that just don't seem to go away. This is the grinding stress that can wear down day after day, year after year. Chronic stress can result from long-term health problems, emotionally draining relationships.
- **Good Stress:** A stressor is any event or situation that is perceived by an individual as a threat causing one to either adapt or initiate the stress response. When stress is positive desirable stress that keeps life interesting and helps to motivate and inspire. Ex. Going to tour, starting a new job.
- **Bad Stress:** When stress is negative desirable stress that keeps life painful and not motivate and inspire. Ex. Visit to Hospital.

Effects Of Stress:

Physical Stress:

- The Positive Effects:

1. Inspires others
2. Health benefits
3. Provides certain values
4. Success comes through

- The Negative Effects:

1. Life span reduced
2. Reduction in Efficiency
3. Leads to mental stress
4. Bodily Exhaustion

Mental Stress:

- The Positive Effects:

1. Avoids future mistakes
2. Creative methods of finding solutions
3. Enables to understand the problems.
4. Helps to find correct solutions.

- The Negative Effects:

1. Not analyse correctly
2. Wrong solutions
3. Mistakes prove in future
4. Ability gets reduced.

Psychological Stress:

- The Positive Effects:

1. Makes alert
2. Motivate
3. Makes sensitive e
4. Makes joyful
5. Makes life interesting

- The Negative Effects:

1. Mental illness
2. Frustration
3. Loneliness
4. Disappointments

* **H.O.D. &Assistant Professor (Home Economics) Samarth Mahavidyalaya, Lakhani, Distt. Bhandara (Maharashtra) INDIA**

5. Demotivate

Effects Of Stress On Body:

1. Headache
2. High Blood pressure
3. Chest pain
4. Heart attack
5. Muscle aches
6. Back pain
7. Tooth grinding
8. Clenched jaws
9. Tiredness
10. Sleep problems
11. Skin problems
12. Weight gain or loss
13. Shortness of breath

Effects Of Stress On Thoughts:

1. Restlessness
2. Anxiety
3. Irritability
4. Worrying
5. Sadness
6. Depression
7. Mood swings
8. Job dissatisfaction
9. Confusion
10. Burnout
11. Guilt
12. Inability
13. Negative feelings
14. Anger

Effects Of Stress On Behaviour:

1. Underrating
2. Overrating
3. Drug abuse
4. Angry outbursts
5. Crying spells
6. Relationship conflicts
7. Blaming others
8. Social withdrawal
9. Decreased Productivity
10. Excessive drinking
11. Increased smoking.

Techniques To Manage Stress:

- **Time Management:** Time management has gained momentum with industrial growth and the economy. It has become important to find ways of performing managerial functions efficiently within the limited time that is available. Time management function is enough time for each function depending upon their importance. More time spent for important work and less time for routine and unimportant work.
- **Work life Balance:** Work life balance is balancing the priorities of career goals and family goals. Career goals include ambitions, promotions, employment status, monetary earnings and the like. Family goals include spending more time with family members for spiritual activities, pleasure leisure, health, education and careers of family members.
- **Work home transition:** This is comparatively a new concept that advocates love and consider affection of family life as best medicine for stress. It is very relaxing to spend time with spouse and children after a day's long hectic work.

Stress Management Tips:

1. Breathe easily
2. Say cheese
3. Try a tonic
4. Visualize calm
5. Make time for massage
6. Stop gritting teeth
7. Compose a Mantra
8. Be fighter
9. Count to
10. Avoid Tea/Coffee
11. Just say no
12. Take a whiff
13. Warm up
14. Shake it up
15. Say yes to pressure
16. Schedule time
17. Listen music
18. Talk with friend
19. Take walk
20. Admit it
21. Munch snacks
22. Make plans
23. Goof off

Conclusion - A positive stress gives the energy to throw into something where we want to make some contribution. Approaching and increase capabilities. Positive stress is essential for bringing zest to the life. Whereas negative stress distress the energy to throw into something we want to make some contribution. Stress can be control by applying some techniques like Breathe easily, Just say no, Warm up, Say yes to pressure, Schedule time, Listen music, Talk with friend, Take walk, Munch snack,Make plans. Stress can be controlled and it is better for everyone to control stress. Positive stress helps to live life better but negative stress destroys life and it affects the mental and physical health.

References :-

1. Organisational Behaviour, P. Subba Rao, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. Organisational Behaviour, Stephen P. Robbins, Pearsons Publishing house.
3. Soft skills, Dr.K.Alex, S.Chand, New Delhi.
4. Stress and Organisational effectiveness, T.A.Beehr and J.E. Newman.
5. www.stressmanagement.co.in
6. www.stresstechniques.co.in
7. www.organisationalbehaviour.co.in
8. www.stresstips.co.in

****

भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी एवं सहयोग की भूमिका

डॉ. आराधना शुक्ला* निधि श्री**

शोध सारांश – भारत में निवेश के लिए विदेशी व्यक्तियों अथवा कंपनियों के द्वारा उपलब्ध कराये गये पूंजी को विदेशी पूंजी कहते है, विदेशी पूंजी शब्द एक व्यापक शब्द हैं, जिसके अंतर्गत , 1. विदेशी सहायता , 2. व्यापारिक ऋण , 3. विदेशी निवेश को सम्मिलित किया जाता है। किसी देश की उत्पादक क्रियाओं में विदेशी सरकार, विदेशी निजी व्यक्ति व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा किए गए पूँजी निवेश (विनियोग) को विदेशी पूँजी कहते हैं। किसी भी विकासशील देश के विकासात्मक परियोजनाओं की सफलता विदेशों से प्राप्त अनुदान एवं प्राप्त रियायती ऋणों पर निर्भर करता है क्योंकि इन योजनाओं के लिए विशाल मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है, जिसे आसानी से विदेशी सहायता के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, विदेशों से प्राप्त अनुदान को वापस नहीं करना होता है , तथा रियायती ऋणों पर ब्याज की दर काफी कम होती है, और इसे वापस करने की अवधि बहुत लम्बी होती है। इस शोध पत्र में यह अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि विदेशी पूँजी का भारत के आर्थिक विकास में किस प्रकार अहम् भूमिका रही।
शब्द कुंजी – विदेशी सहायता, आर्थिक सहायता।

प्रस्तावना – भारत एक विकासशील देश है, जिसके आर्थिक विकास हेतु आधारभूत संरचना योजनागत व्ययों के लिए वृहत निवेश की आवश्यकता है, जिसे भारतीय निजी एवं सरकारी निवेश के द्वारा पूर्ति नही किया जा सकता, इस हेतु विदेशी सहायता की आवश्यकता होती है, विदेशी पूंजी के द्वारा भारत के आर्थिक विकास हेतु आवश्यक विशाल पूंजी की व्यवस्था की जा सकती है, सामान्यतया विदेशी व्यक्तियों एवं कंपनियों के द्वारा आवश्यक पूंजी को उपलब्ध कराना ही विदेशी पूंजी कहलाता है, जो विदेशी सहायता, विदेशी निवेश या व्यापारी के रूप में हो सकती है।

विदेशी सहायता – विदेशी पूंजी का वह रूप है, जो विकसित देशों की सरकारों, और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा, विकासशील देशों के आर्थिक विकास की दर को तीव्र गति प्रदान करने के लिए उपलब्ध करायी जाती है।

व्यापारिक ऋण – जब विदेशी सहायता से प्राप्त राशि किसी देश के विकासात्मक योजनाओं को गति प्रदान करनें में अपूर्ण होती है तो ,विदेशी बैंको से बाजार में प्रचलित ब्याज दर पर ऋण लिए जातें है, साथ ही साथ भारत के बैंको में अनिवासी भारतीयों के जमा राशि को विकासात्मक योजनाओं में प्रयोग किया जाता है, जिसे व्यापारिक ऋण कहतें हैं। उक्त दोनों विदेशी पूंजी योजनागत परियोजनाओं हेतु वांछित व्यय की राशि को पूर्ण नही कर पाते हो तो, प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग जिसके अंतर्गत विदेशी नागरिक अथवा संगठन दूसरे देश में अपनी पूंजी द्वारा उत्पादन इकाई स्थापित करता है या फिर विदेशी कंपनीयां , पोर्ट फोलियों निवेश के द्वारा भारतीय कंपनियों के अंश खरीदकर विनियोग करती है, इस प्रकार ये दोनों ही रास्ते **विदेशी विनियोग** माने जाते है, भारत जैसे विकासशील देशों में जहां आर्थिक विकास हेतु आवश्यक पूंजी एवं आधुनिक तकनीकी का अभाव है, वहां पर तकनीकी पूंजी संजीवनी का कार्य करती है। भारत मे नयें आर्थिक सुधारों के लिए विदेशी पूंजी कारगार सिद्ध हुई है, 1991 में आर्थिक सुधारों के पश्चात् भारत में विदेशी तकनीकी सहयोग तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में निरंतर वृद्धि हुई है। जुलाई-अगस्त, 1991 में घोषित उदार विदेशी नीति के परिणमस्वरूप, विदेशी सहयोग के समझौतों में तथा विदेशी निवेश में तेज वृद्धि हुई है। **क्षेत्रानुसार में विदेशी तकनीकी स्थानांतर सहयोग अनुमोदित**, 1991 से अगस्त, 2011 के बीच सर्वाधिक तकनीकी सहयोग का अनुमोदित बिजली उपकरण (कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर सहित) को 15 प्रतिशत हुआ था, उसके बाद क्रमश: रसायन (11.20%), औद्योगिक मशीनरी (10.79%), परिवहन उद्योग (9.36%), विविध इंजीनियरिंग उद्योग 5.50% किया था। भारत सरकार ने विदेशी सहयोगों को बढावा देने के लियें कई प्रयास किये हैं। इसके लिये कुछ क्षेत्रों में 100 प्रतिशत विदेशी क्षमता निवेश की सहमती दे दी गयी , तथा विदेशी पूँजी के फलस्वरूप हमारा राष्ट्रीय आय का 5 प्रतिशत थी जो बढकर 1989-90 में 22 प्रतिशत और 2007-08 में 33 प्रतिशत हो गयी। 1970 के दशक से ही देश को विदेशी मुद्रा के संकट का सामना करना पडता है, इस संकट को दुर करने और आर्थिक विकास को गति प्रदान करने मे विदेशी सहायता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विदेशी पूँजी व सहयोग ने देश मे भारी व आधारभूत उद्योगो की स्थापना, परिवहन, संचार व विद्युत उत्पादन का विस्तार करके जहाँ एक ओर देश में औद्योगीकरण के लिए आधारभूत संरचना का विकास किया हैं, वहीं दूसरी ओर देश के महत्वपूर्ण उद्योगों में विदेशी पूँजी विनियोग के द्वारा औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका हैं। देश को विदेशी पूँजी के अन्तर्गत विदेशी विशेषज्ञों की सेवाएँ, भारतीयों को प्रशिक्षण की व्यवस्था और तकनीकी परामर्श के साथ साथ अनुसंधान कार्यो को प्रोत्साहन मिला है।

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) गुरूकूल महिला महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारत
** शोधार्थी, पं. रवि शंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारत

परिवहन व संचार के साधनों के विकास में विदेशी पूँजी का सहयोग होता है। कुल विदेशी पूँजी का 14 प्रतिशत भाग परिवहन व संचार के विकास पर व्यय किया गया है। इनमें से 12 प्रतिशत व्यय रेल परिवहन के विकास पर हुआ । किसी भी देश के आर्थिक विकास में लोहा व इस्पात उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के समय भारत में यह उद्योग अविकसित अवस्था में था, किंतु आज हम लोहे का निर्यात कर रहें हैं। निर्माण उद्योगों के लिए किया गया है पश्चिमी जर्मनी , रूस तथा ब्रिटेन ने इस उद्योग को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

विश्लेषण – भारत में विगत वर्षो में विदेशी निवेश की प्रवृत्ति निम्न है :

	2010 –11	2011 –12	2012 –13	2013 –14	2014 –15
विदेशी निवेश :	42,127	39,231	46,710	26,386	38,385
(क) एफ.डी. आई:	11,834	22,061	19,819	21,564	16,183
(ख) पोर्ट फोलिया निवेश :	30,293	17,170	26,891	4,822	22,202

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि बढ़ता हुआ विदेशी निवेश भारत के चहुमुखी आर्थिक विकास हेतु संजीवनी का कार्य कर रहा है। भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी निवेश ने भारी उद्योगों की स्थापना की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है तथा खाद्य संकट हल करने, सिंचाई एवं बिजली क्षमता का विस्तार करने, रेलवे का विकास करने, तकनीकी विकास एवं प्रशिक्षण सुविधा प्राप्त करने में काफी सहयोग दिया है। अत: इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी एवं सहयोग की भूमिका निभा रही है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. एस.के.सिंह , व्यावसायिक पर्यावरण , साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
2. डॉ. मिश्र एवं शुक्ल, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
3. डॉ. वी.सी. सिन्हा, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
4. प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकांक अर्थशास्त्र
5. रमेश सिंह, भारतीय अर्थव्यवस्था, मेक ग्रीव हील एजुकेशन

****

भारत में बचत और विनियोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. स्वाति शर्मा *

शोध सारांश – किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए दो पहिए आवश्यक होते है जिसे हम विनियोग एवं बचत कहे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि विनियोग के द्धारा अर्थव्यवस्था में रोजगार, उत्पादन एवं आय का सृजन करके विकास की चरम सीमा को प्राप्त किया जा सकता है किंतु बचत के बिना विनियोग को प्रोत्साहित करना संभव नहीं है प्रस्तुत शोध पत्र में बचत एवं विनियोग की वर्तमान स्थिति व योगदान के अध्ययन का प्रयास किया गया है।

शब्द कुंजी – बचत, विनियोग।

प्रस्तावना – किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए दो महत्त्वपूर्ण घटक होते है जिसमें प्रथम अनिवार्य घटक है घरेलु बचत एवं दूसरा अनिवार्य घरेलु निवेश होता है। इस बात से नकारा नही जा सकता कि जिस देश की बचत दर अधिक होती है वहाँ का पूंजी निर्माण का स्तर भी ऊँचा होगा और आर्थिक विकास का दर भी तीव्र होगी इस प्रकार पूंजी निर्माण का अर्थ उस बचत से है जिसमें वर्तमान उत्पाद का पूर्ण उपयोग ना करके भविष्य के लिए आय सृजन हेतु प्रयुक्त किया जाता है यद्यपि इससे वर्तमान में लाभ व उपयोग कम होता है पर भविष्य पर भविष्य में उसकी पूर्ति आसानी से हो जाती है। और वह देश आत्म निर्भरता, और चहुमुखी विकास की ओर अग्रसित होता है।

बचत एवं निवेश की दरें (जीडीपी के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	निवेश दर	बचत दर	बचत-निवेश अन्तर
2011-12	39.00	34.6	(4.3)
2012-13	38.70	33.9	(4.8)
2013-14	33.8	32.1	(1.7)
2014-15	34.4	33.1	(1.3)

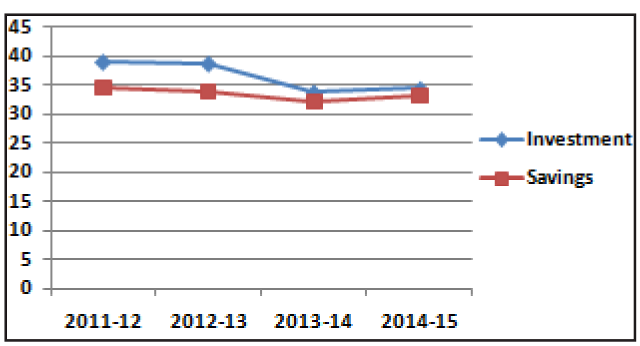

निष्कर्ष – उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत की सकल घरेलु बचत की दर निवेश दर की अपेक्षा में तुलनात्मक रूप से कम है यदि भारत की अर्थव्यवस्था में वृद्धि करने हेतु बचत दर को बढाकर निवेश दर को प्रोत्साहित करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दत्तसुंदरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था
2. मिश्र एवं पूरी, भारतीय अर्थव्यवस्था
3. डॉ. वी.सी. सिन्हा, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
4. प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकांक अर्थशास्त्र
5. रमेश सिंह, भारतीय अर्थव्यवस्था, मेक ग्रीव हील एजुकेशन
6. अतिराम, भारतीय अर्थव्यवस्था प्रतियोगिता दर्पण

* सहा. प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) डॉ. राधाबाई शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारत

आजादी की हठ ठा. प्रतापसिंह बारहठ

डॉ. मनोज दाधीच *

प्रस्तावना – मेवाड़ की वीर प्रसूता भूमि ने स्वाधीनता संग्राम के लिए भी महाराणा प्रताप के समान बुलंद इरादों के धनी स्वातन्त्रय प्रिय विचारों और अपनी गौरवपूर्ण वंश परम्परा को बनाये रखने के संकल्पों से युक्त चारण योद्धा प्रताप सिंह बारहठ को उत्पन्न किया। क्रान्तिकारी केसरीसिंह बारहठ के पुत्र प्रतापसिंह बारहठ ने पिता के रहते शहीद हो जाने वाले पुत्र की अद्‌भुत गाथा रचि है। उसने अल्पआयु में भारत माता की पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने का स्वप्न देखा और उसे पूरा करने के लिए समर रचने का संकल्प लिया।

'मैरी माँ को रोने दो, जिससे अन्य किसी की माँ न रोये' – प्रतापसिंह बारहठ (बरेली जेल में)

जन्म, बाल्यकाल एवं शिक्षा – कुंवर प्रतापसिंह बारहठ का जन्म विक्रम संवत् 1950 ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को उदयपुर में ठाकुर केसरीसिंह के घर कवि राजा श्यामलदास की हवेली में हुआ। उस समय उनके पिता केसरीसिंह महाराणा उदयपुर के सलाहकार थे। उनकी माता का नाम माणिक्य कुंवर था। 1900 ई. में कोटा महाराव उम्मेद सिंह ने केसरीसिंह की प्रशंसा सुनकर उन्हें कोटा बुला लिया। अत: बालक प्रतापसिंह की शैशव अवस्था कोटा में व्यतीत हुई। उनकी शिक्षा–दीक्षा कोटा में आरम्भ हुई। कुछ समय पश्चात् वे डी.ए.वी. स्कूल अजमेर में विद्याध्ययन के लिए प्रविष्ट हुए।[1]

विद्याध्ययन के समय प्रतापसिंह को अपने पिता श्री केसरीसिंह के कहे हुए शब्द बार–बार याद आते थे : 'अंग्रेजों के द्वारा चलाये गये विश्वविद्यालय गुलामों को उत्पन्न करने वाले सांचे है जहाँ भारत के युवकों को गुलामी में ही प्रसन्न रहने का पाठ पढ़ाया जाता है।'

क्रान्तिकारी प्रशिक्षण की तैयारी – यह वह समय था जब देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन जोरो पर था। भारतवासी दासता की पीड़ा से त्रस्त थे। देश का एक युवा वर्ग अंग्रेजी दासता के चौले को उतार फैंकने के लिए प्रयत्नशील था। भारतीय सैनिकों को देश की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध विप्लव करने को उकसाते। छिपकर क्रान्ति और विद्रोह का संदेश सैनिक छावनियों, स्कूलों, कॉलेजों में पहुँचाते और देशभक्त युवकों को अपने दल का सदस्य बनाते थे।[2] उपर्युक्त क्रान्तिकारी कार्यो को व्यवहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए अनेक छात्रावासों और विद्यालयों में प्रशिक्षण कार्य प्रारम्भ किया गया। एक प्रशिक्षण केन्द्र जयपुर में **'जैन वर्धमान विद्यालय'** अर्जुनलाल सेठी के द्वारा स्थापित किया गया। 15 वर्ष की आयु में 1908 ई. में प्रतापसिंह भी स्वतंत्र शिक्षण हेतु इसमें प्रविष्ट हो गये।[3] यह विद्यालय क्रान्तिकारियों के प्रशिक्षण का केन्द्र था। यहाँ देश की स्वाधीनता हेतु सशस्त्र क्रान्ति का प्रशिक्षण दिया जाता था।

रासबिहारी बोस से सम्पर्क – सुप्रसिद्ध देशभक्त क्रान्तिकारी अर्जुन लाल सेठी विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देकर गुप्त स्थानों पर क्रान्तिकारी योजनाओं को साकार करने के लिए भेजा करते थे। प्रतापसिंह, ईश्वरदानसिंह, जोरावर सिंह को केसरीसिंह ने मास्टर अमीचंद के पास क्रान्तिकारी प्रशिक्षण प्राप्त करने भेजा।

महाविप्लवी नायक रासबिहारी बोस सम्पूर्ण देश में सशस्त्र क्रान्ति का आयोजन कर रहे थे। 1911 ई. में रासबिहारी बोस राजस्थान में क्रान्तिकारी कार्यो के लिए किसी साहसी और वीर युवक की खोज में थे। उनके मित्र और दल के वरिष्ठ मान्य सदस्य दिल्ली में एक युवक को उनके पास लाये जो प्रतापसिंह बारहठ थे। अमीचंद ने रासबिहारी बोस को विश्वास दिलाया कि युवक प्रताप की कार्यकुशलता योग्यता और विश्वसनीयता पर पूर्ण भरोसा किया जा सकता है। इस पर बोस ने प्रताप को दल का सदस्य बना लिया। कुछ ही समय में प्रतापसिंह ने रासबिहारी बोस का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया।[4]

कुशल संगठन कर्ता – जब प्रतापसिंह की आयु मात्र 20 वर्ष थी तब ही वे क्रान्तिकारियों के सर्वमान्य नेता बन गये। वे राजपूताने के सैनिकों और युवकों को आजादी की लड़ाई के लिए तैयार करने लगे। उनके नेतृत्व में राजपूताने में क्रान्तिकारी संगठन काफी सशक्त बन गया।[5]

रास बिहारी बोस अंग्रेजी सरकार की धाक और प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाना और उनके आतंक को समाप्त करना चाहते थे। ताकि भारतीयों में अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़े होने का विश्वास जागृत हो जावे। यह शुभ अवसर उन्हें शीघ्र ही प्राप्त हो गया। वायसराय लार्ड हार्डिंग्ज बड़ी शानशौकत और ठाठबाट से दिल्ली प्रवेश करने वाले थे। समस्त देश का ध्यान इस भव्य समारोह की ओर था।

रासबिहारी बोस ने लार्ड हार्डिंग्ज पर बम चलाने की योजना बनाई। रास बिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल, अमीरचन्द, बालमुकन्द, अवधबिहारी और बंसत विश्वास तो दिल्ली मे ही थे। प्रतापसिंह और उनके चाचा जोरावर सिंह को रासबिहारी बोस द्वारा इस अवसर पर बुलाया गया।[6]

हार्डिग बम काण्ड – दिल्ली के स्टेशन को उस दिन खूब सजाया गया। वायसराय को एक बहुत ऊँचे हाथी पर, जिस पर सोने–चांदी का होदा रखा था और बहुमूल्य कारचोनी के फूलों से सज्जित था, बिठाया गया। जब यह जूलूस चाँदनी चौक पहुंचा और पंजाब नेशनल बैंक की इमारत के सामने आया तो एक भंयकर धमाका हुआ। एक बम हार्डिग के होदे की पीठ पर लगा। बलरामपुर राज्य का जमींदार महावीर सिंह जो हार्डिग पर छत्र लगाये बैठा था मारा गया हार्डिग की पीठ दाहिने कन्धे, गर्दन और दाहिने कूल्हे पर जोरदार

* सहायक आचार्य, पेसिफिक सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय, पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

चोटे आई।[7]

वायसराय पर बम फेंकने के बाद प्रतापसिंह और उनके चाचा चांदनी चौक से सुरक्षित भाग निकले। दोनों यमुना नदी के किनारे पहुँचे। नदी पूरे बहाव पर थी। सात घंटे तक प्रतापसिंह कभी तैरते, कभी गोता लगाते और कभी पुल की जंजीर को पकड़कर लटकते रहें। अंधेरा होने पर उन्होंने तैर कर नदी पार की। प्रतापसिंह काफी थक चुके थे किनारे पहुँचे तो दो सिपाहियों को उन पर संदेह हो गया। जोरावर सिंह ने दोनो को तलवार से धराशयी कर प्रताप को अपनी पीठ पर उठा लिया।[8]

इसके बाद प्रतापसिंह बारहठ राजपूताना के सैनिकों को छिपे-छिपे विप्लव के लिए तैयार करने लगे। वे कभी पंजाब कभी राजपूताने में और कभी हैदराबाद जाकर क्रान्ति के कार्य को प्रगति के पथ पर बढ़ाते।

नवद्वीप की यात्रा – रासबिहारी बोस बमकाण्ड के पश्चात् दिल्ली से काशी और वहाँ से नवद्वीप चले गये थे। क्रान्ति के काम को आगे बढ़ाने के लिए परामर्श और आदेश प्राप्त करने हेतु प्रतापसिंह भी नवद्वीप पहुँचे। अपने नेता से परामर्श और आदेश प्राप्तकर वे नवद्वीप से राजस्थान लौट आये और उनके आदेश को क्रियान्वित करने लगे। इस समय तक प्रतापसिंह के नाम गिरफ्तारी वारंट निकल गया था। यद्यपि पुलिस उनके पीछे थी किन्तु वे क्रान्ति का कार्य करते रहे।

उनके पिता केसरीसिंह को आजन्म कारावास होने पर प्रतापसिंह ने जेल में उन्हें संदेश भेजा-**'आप तनिक भी चिन्ता न करें। प्रतापसिंह अभी जिन्दा है।'** प्रतापसिंह पुलिस की आँख बचाकर बराबर राजस्थान में क्रान्तिकारी संगठन को दृढ़ करने में लगे रहे।[9]

आशानाड़ा रेल्वे स्टेशन पर गिरफ्तारी – जब प्रतापसिंह हैदराबाद से बीकानेर जा रहे थे, जोधपुर के निकट 'आशानाड़ा' स्टेशन मास्टर से मिलने के लिए (जो पहले क्रान्तिकारी दल का सदस्य था) वे उस स्टेशन पर उतर गये। उन्हें क्या मालूम था कि वह विश्वासघाती के चंगुल में जा रहे हैं। स्टेशन मास्टर इस समय तक पुलिस का मुखबिर बन चुका था। प्रताप ने कहाँ – 'निद्रा सता रही है सोऊंगा।' विश्वासघाती ने कहाँ 'नि:शंक सो जाओ ताला लगा देता हूँ ताकि किसी को शक न हो।' निद्रा में होने पर स्टेशन मास्टर ने कोठरी में से प्रताप के शस्त्र और अन्य सभी वस्तुएं बाहर निकाल ली, ताकि मुकाबले हेतु प्रताप के पास कुछ न रहे फिर उसने जोधपुर पुलिस को फोन किया। पुलिस ने फौजी दल बल के साथ आशानाड़ा क्षेत्र को घेर लिया। कोठरी के द्वार और खिड़कियों पर बर्छे और संगीने अड़ा दी गई। चुपके से ताला खोलकर सोते हुए प्रताप को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।[10]

बरेली जेल की यातनाएँ और प्रलोभन – प्रतापसिंह सन् 1917 में बनारस षडयन्त्र अभियोग में पकड़ा गया। उन्हें 5 वर्ष की सजा हुई। उन्हें बरेली जेल में बंदी बनाकर रखा गया। क्रान्तिकारियों का भेद जानने के लिए प्रताप को कई प्रलोभन और यातनाएँ दी गई किन्तु ये सब साधन भी 22 वर्षीय नवयुवक का मुँह नहीं खुलवा सके।[11]

भारत सरकार का गुप्तचर विभाग भली प्रकार से जानता था कि प्रतापसिंह बारहठ सम्पूर्ण क्रान्तिकारी दल के सर्वोच्च नेता रासबिहारी बोस का विश्वासपात्र है। विभाग की मान्यता थी कि 22 वर्षीय प्रतापसिंह बारहठ से यह जान लेना कठिन नहीं होगा कि क्रान्तिकारी दल में प्रमुख व्यक्ति कौन-कौन है? वह कहाँ है? हार्डिग पर बम किसने फैंका? क्रान्तिकारी दल का भावी कार्यक्रम क्या है?

प्रतापसिंह बारहठ जैसे ही बरेली जेल पहुँचे **भारत सरकार के सी.आई.डी. के निदेशक सर चार्ल्स क्लीवलैण्ड** जो अपराधियों से भेद उगलवाने के विशेषज्ञ माने जाते थे। बरेली जेल जा पहुँचे और प्रतापसिंह को अनेक प्रकार के प्रलोभन देने लगे। तुम्हें बहुत ऊँचा पद मिलेगा। लाखों रुपयों का पारितोषिक दिया जायेगा। तुम्हारे पिता जो आजन्म कारावास का दण्ड भुगत रहे है, छोड़ दिया जायेगा, तुम्हारे चाचा जोरावरसिंह का वारंट रद्द कर दिया जायेगा। तुम्हारे पिता और चाचा की लाखों की जब्त की गई सम्पत्ति वापिस कर दी जायेगी।[12]

प्रलोभन निश्चित रुप से प्रभावशाली थे परन्तु देने वाला अधिकारी चार्ल्स क्लीवलेण्ड इस तथ्य से अनभिज्ञ था कि प्रतापसिंह बारहठ ऐसे परिवार का रत्न है जिसके सदस्य प्राण देकर भी विश्वासघात नहीं करते।

ममता की कसौटी – जब चार्ल्स क्लीवलैण्ड द्वारा दिये गये प्रलोभन क्रान्तिवीर प्रतापसिंह को विचलित न कर सके तो प्रतापसिंह के हृदय की कोमल भावनाओं को स्पर्श करने का प्रयास किया गया।**'तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए दिन रात रोती रहती है और बहुत दु:खी है।'** परन्तु वीर प्रतापसिंह विचलित नहीं हुए उन्होंने क्लीवलैण्ड को जो उत्तर दिया वह क्रान्तिकारियों के इतिहास में अत्यन्त गौरवशाली और अभूतपूर्व है। उन्होंने कहाँ **'तुम कहते हो कि मेरी मां मेरे लिए दिन रात रोती है और मेरे लिए अत्यन्त दु:खी है। मेरी माँ को रोने दो मगर मैं सैंकड़ों माताओं के रोने का कारण बनना अस्वीकार करता हूं। यदि ऐसा हुआ तो वह मेरी मृत्यु होगी और मेरी माँ के लिए यह महान कलंक होगा।'**[13]

जब प्रतापसिंह ने न तो किसी का नाम बताया, न किसी भेद का संकेत ही दिया तो जेल अधिकारियों द्वारा प्रतापसिंह बारहठ को अनेक प्रकार की भीषण यातनाएं दी गयी। वह वीर इन यातनाओं के बावजूद विचलित नहीं हुआ। बरेली जेल की सजा भोगते-भोगते प्रतापसिंह का नश्वर शरीर 7 मई 1918 को दिव्य आत्मा का साथ न निभा सका।[14]

पिता-केसरीसिंह बारहठ ने अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर कहाँ प्रताप ने स्वतंत्रता संग्राम रूपी यज्ञ में एक समीधा के रुप में अपने प्राणों की आहूति दी है।

प्रतापसिंह की वीरता और बुद्धिमता की प्रशंसा चार्ल्स क्लीव लैण्ड ने इन शब्दों में की है, 'मैने आज तक प्रतापसिंह जैसा वीर और विलक्षण बुद्धि का युवक नहीं देखा, उसे तरह-तरह से सताए जाने में कमी नहीं रखी गई। किन्तु वाह रे वीर टस से मस नहीं हुआ। गजब का कष्ट सहने वाला था। हमारी सब चालें बेकार हुई। हम सब हार बैठे, उसी की बात अटल रही। वह विजयी हुआ।'[15]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सक्सेना : प्रतापसिंह बारहठ (कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति, 2 अक्टुबर, 1985) राजस्थान जयपुर, पृ. 3.
2. जोशी, सुमनेश : राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सैनानी, पृ. 43. जयपुर 1973
3. कोठारी, देव : स्वतन्त्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान, पृ. 276. राजस्थान साहित्य अकादमी 1985
4. जैन, फुलचंद (लेखक), मस्तराम कपूर (सम्पादक) : स्वतन्त्रता सेनानी ग्रंथमाला-4 शहीदनामा (इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सांइसिस नई दिल्ली-1998), पृ. 107.
5. जोशी, सुमनेश : राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 45. जयपुर 1973
6. पानगड़िया, बी.एल. : राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम, पृ. 18. जयपुर

1885
7. जोशी, सुमनेश : राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सैनानी, पृ. 46. जयपुर 1973
8. सक्सेना : प्रतापसिंह बारहठ (कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति राजस्थान जयपुर, 2 अक्टूबर,1985) पृ. 11.
9. 'राकेश', शान्ति भारद्धाज : हाड़ौती का स्वतन्त्रता आन्दोलन, पृ. 70.
10. सक्सेना : राजस्थान पत्रिका जयपुर के 15 अगस्त 1972 को प्रकाशित लेख से उर्द्धत।
11. पालीवाल, जावलिया व मानव : क्रान्तिकारी बारहठ केसरीसिंह व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रथम खण्ड भूमिका, पृ. 31. साहित्य अकादमी से प्रकाशित
12. जनसम्पर्क विभाग : राजस्थान स्वाधीनता संग्राम की कहानी लेख से उर्द्धत जयपुर 1985
13. सक्सेना : क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ. 370. बीकानेर 1957
14. जैन, फुलचंद (लेखक), मस्तराम कपूर (सम्पादक) : स्वतन्त्रता सेनानी ग्रंथमाला-4 शहीदनामा (इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सांइसिस नई दिल्ली-1998), पृ. 107.
15. घोष, काली चरण : शहीद पुराण, पृ. 248.

****

Women Empowerment

Sudha Jain *

Abstract - Women's empowerment is a new phrase in the vocabulary of gender literature. The phrase is used in two broad senses i.e. general and specific. In a general sense, it refers to empowering women to be self-dependent by providing them access to all the freedoms and opportunities, which they were denied in the past only because of their being women. With reference to women the power relation that has to be involved includes their lives at multiple levels, family, community, market and the state. Importantly it involves at the psychological level women's ability to assert them and this is constructed by the 'gender roles' assigned to her especially in a cultural which resists change like India. Empowerment cannot be defined in terms of specific activities or end results because it involves a process whereby women can freely analyze, develop and voice their needs and interests, without them being pre-defined, or imposed from above.

The present paper is an attempt to develop conceptual clarity of the term empowerment delineating it with several other overlapping concepts of gender equality, social inclusion, powerful etc. and suggest and advocate an inclusive approach of policy measures whereby the planners working towards an empowerment approach develop ways enabling women themselves to critically review their own situation and participate in creating and shaping the society as agents of change themselves.

"To call woman the weaker sex is a libel; it is man's injustice to woman. If by strength is meant brute strength, then, indeed, woman is less brute than man. If by strength is meant moral power, then woman is immeasurably man's superior: Has she not greater intuition, is she not more self-sacrificing, has she not greater powers of endurance, has she not greater courage? Without her man could not be. If non-violence is the law of our being, the future is with woman. Who can make a more effective appeal to the heart than woman?" **- Mahatma Gandhi**

Introduction - The status and role of women and related issues, have attracted the attention of the academicians, political thinkers and social scientists both in developing as well as developed countries, partially due to the observance of the International Decade of Women (1975-85) and partially because of the widely accepted truth that a society built on the inequality of men and women involves wastage of human resources which no country can afford.

The present paper tries to focus on the measurement of empowerment of women through enhancement in autonomous participation of women in decision making.

There are a variety of understandings of the term 'empowerment' due to its widespread usage. Yet this widely used term is rarely defined.

Policy Prescriptions - Women Empowerment refers to increasing the spiritual, political, social or economic strength of Women. It often involves the empowered developing confidence in their own capacities. Empowerment is probably the totality of the following or similar capabilities:

1. Having decision-making power of their own
2. Having access to information and resources for taking proper decision
3. Having a range of options from which you can make choices.
4. Ability to exercise assertiveness in collective decision making
5. Having positive thinking on the ability to make change
6. Ability to learn skills for improving one's personal or group power.
7. Ability to change others' perceptions by democratic means.
8. Involving in the growth process and changes.
9. Increasing one's positive self-image and overcoming stigma

Objectives - The objectives of this study are to s to bring about the advancement, development and empowerment of women in India. It includes:

(i) Creating an environment through positive economic and social policies for full development of women to enable them to realize their full potential
(ii) Enjoyment of all human rights and fundamental freedom by women on equal basis with men in all spheres – political, economic, social, cultural and civil
(iii) Equal access to participation and decision making of women in social, political and economic life of the nation
(iv) Equal access to women to healthcare, quality education

*Lecturer, Department of ABST, Government Meera Girls College, Udaipur (Raj.) INDIA

at all levels, career and vocational guidance, employment, equal remuneration, occupational health and safety, social security and public office etc.

(v) Strengthening legal systems aimed at elimination of all forms of discrimination against women

(vi) Changing societal attitudes and community practices by active participation and involvement of both men and women.

(vii) Mainstreaming a gender perspective in the development process.

(viii) Elimination of discrimination and all forms of violence against women and the girl child; and

(ix) Building and strengthening partnerships with civil society, particularly women's organizations.

Methodology - A focus is made on the Implications and Approaches of Women Empowerment in India. An analysis and deduction is done in the study undertaken with the help of data collection and updated information through various sources like books, journals, articles, internet sources etc.

Gender Equality and Women's Empowerment - Gender equality indicates the degree of equivalence in life outcomes for women and men, recognizing their different needs and interests and requiring a redistribution of power and resources. Policies, programs and systems will be established to ensure mainstreaming of women's perspectives in all developmental processes, as catalysts, participants and recipients.

Wherever there are gaps in policies and programs, women specific interventions would be undertaken to bridge these**.** Coordinating and monitoring mechanisms will also be devised to assess from time to time the progress of such mainstreaming mechanisms. Women's issues and concerns as a result will specially be addressed and reflected in all concerned laws, policies, plans and programs of action.

Power and Empowerment - One way of thinking about power is in terms of the *ability to make choices*: to be disempowered, therefore, implies to be denied the choice.

Understanding empowerment in this way means that development agencies cannot claim to empower women rather they can provide appropriate external support and choices, which can however be important to foster and support the process of empowerment i.e., act as facilitators.

Six Domains of Empowerment

Domain	**Expressions**
1. Sense of Self & vision of a future	Assertiveness, plans for the future, future-oriented actions, relative freedom from threat of physical violence, awareness of own problems and options, actions indicating sense of security.
2. Mobility & visibility	Activities outside of the home, relative freedom from harassment in public spaces, interaction with men.
3. Economic Security	Property ownership, new skills and knowledge and increased income, engaged in new/non-traditional types of work
4. Status & decision-making power within the household	Self-confidence, controlling spending money, enhanced status in the family, has/controls/spends money, participation in/makes decisions on allocation of resources, not dominated by others
5. Ability to interact effectively in the public sphere	Awareness of legal status and services available, ability to get access to social services, political awareness, participation in credit program, provider of service in community.
6. Participation on non-family groups	Identified as a person outside of the family, forum for creating sense of solidarity with other women, self-expression and articulation of problems, participating in a group with autonomous structure.

These define empowerment in a behavioral sense as the ability to take effective action encompassing inner state (sense of self, of one's autonomy, self-confidence, openness to new ideas, and belief in one's own potential to act effectively) and a person's status and efficacy in social interactions. In particular, it is the ability to make and carry out significant decisions affecting one's own life and the lives of others.

This study has tried to review a comprehensive model of empowerment based on certain concrete micro indicators of empowerment.

Observations - It was found that there was a patriarchal dominance i.e. most of the time; a compromise was made at the end of females and not males. Thus, indicating that in a country like India we have a long way to go in order to bring the females at an equal pedestal like males.

Table: Magnitude of Autonomy in Decision Making

Type of Issues	Autonomy in Decision Making	
	Worker	**Non-Worker**
Trivial Issues(TI)		
1. In making in what items to cook	VH	H
2. Answering Freely to Questions asked	VH	VH
Issues Related to Children(IRC)		
1. Purchasing requirements for Children	VH	M
2. Education of Children	H	M
Issues Related to Own Self(IROS)		
1. Obtaining Health Care for Own Health	M	L
2. Going for Outings	H	M
3. Purchasing Requirements for	M	L

Own Self		
4. Visiting and staying with friends, parents & relatives	M	M
Critical Issues (CI)		
1. Expenditure on Marriages.	VL	VL
2. Borrowing Money for Household Demands	L	VL
3. Borrowing Money to Start Business.	L	VL
4. Paying Back Debts	L	VL
5. Control over Using Money earned/saved	L	VL

Note: Very High (VH) =above 80%, High (H) =60-80%, Moderate (M) =40-60%, Low (L) =20-40%, Very Low (VL) = Below 20%

Participation was higher for the working women as compared to the non-working women in all aspects of household decision making. Higher the participation in decision making higher is the degree of autonomy. Still one needs to look into the nature of this participation of women.

Conclusion - Participation Rates does not ensure women's empowered status, rather the quality of work involved is also an important determinant.

The order of domain suggests a process of empowerment that begins at the level of a woman's individual consciousness and becomes externalized through greater physical mobility, raised awareness levels, increased autonomy in decision making i.e., a strong role in the household, greater self esteem and, eventually, meaningful participation in the larger community. The empowerment process is not as linear as the description suggests, but more similar to a loop or spiral. The change in development policies from the focus on women's active role in production as a means to more efficient development, to the approach of women's empowerment through women organizing for greater self-reliance, has also meant a change in policies for the enhancement of women's economic role. The role of agency in assessing empowerment of women is because of the many examples in the literature of cases in which giving women access to resources does not lead to their greater control over resources, where changes in legal statutes have little influence on practice where political leaders do not necessarily work to promote women's interests. Thus, while resources – economic, social and political- are often critical in ensuring that women are empowered, they are not always sufficient. Without women's individual or collective ability to recognize and utilize resources in their own interests, resources cannot bring about empowerment.

Government can ensure that their programs work to support women's individual empowerment by encouraging women's participation, acquisition of skills, decision-making capacity, and control over resources. Therefore, an inclusive approach whereby the planners working towards an empowerment approach must develop ways enabling women themselves to critically review their own situation and participate in creating and shaping the society is suggested.

"The women's movement at its deepest is not an effort to with the competitive, aggressive spirit of the dominant system. It is rather, an attempt to convert men and the system to the sense of responsibility, openness, and rejection of hierarchy that are part of our vision."

References :-

1. Bennett, Lynn, (2002), "Using Empowerment and Social Inclusion for Pro-poor Growth: A Theory of Social Change", Working Draft of Background Paper for the Social Development Strategy Paper, Washington, DC, World Bank.
2. Hashemi, Syed M., Sidney Ruth Schuler, and Ann P. Riley, (1996), "Rural Credit Programs and Women's Empowerment in Bangladesh." *World Development* 24(4), pp. 635-653.
3. Kabeer, Naila, (2001), "Reflections on the Measurement of Women's Empowerment", in Discussing Women's Empowerment-Theory and Practice, Sida Studies No. 3. Novum Grafiska AB, Stockholm.
4. Kumar, Prahlad and Paul, Tinku, (2004), "Informalization and Need for Gender Sensitive Statistics", paper presented in a National Conference by Indian Political Economy Association on 'Globalization, State and the Weaker Sections' held at G.B Pant Social Science Institute on 11-12 June, 2004.
5. Malhotra, Anju and Mark Mather, (1997), "Do Schooling and Work Empower Women in Developing Countries? Gender and domestic decisions in Sri Lanka." *Sociological Forum* 12(4), pp. 599-630.
6. Mayoux, Linda, (2000), 'Micro-Finance and the Empowerment of Women: A Review of the Key Issues',Geneva, International Labor Organization, available on-line at Ilo_data/public/english/employment,/finance/
7. Paul, Tinku (2004), 'Gender Dimensions of Development', in "Human Development: Concept and Issues in the Context of Globalization" Edt. by S.K. Pant, Rawat Publications.

****

नशा और पारिवारिक जीवन

डॉ. पुनीता चोर्डिया*

प्रस्तावना – सामान्यतया आम लोगों की मान्यता है कि शराब पीना व्यक्तिगत आदत है लेकिन ऐसा नहीं है शराब का सम्बन्ध परिवार नातेदारी, गांव और जाति से भी है। वास्तव में अगर समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो मद्यपान एक समाजीकरण का हिस्सा है। ब्राह्मण जाति में समाजीकरण इस प्रकार का है कि कोई भी शराब पीने की बात नहीं करता यह अवश्य है कि अब आजकल ब्राह्मणों और द्विज जातियों में भी चोरी–छिपे या गुप्त रूप से शराब पी जाती है। वास्तव में देखा जाये तो शराब पीना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन यह व्यक्तिगत विषय होकर भी समाज और परिवार को प्रभावित करता है।

भारतीय गांवों में किसानी होती है और ये किसान दिनभर काम करने के बाद रात को शराब पीते हैं यह सामान्य परम्परा है। इसका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर भी पडता है। गांवों में जातियों के बीच में जो झगड़े होते हैं। उसके कारणों में एक बडा कारण शराब पीने की आदत है कभी–कभी तो जातिय पंचायतों में लोग शराब पीकर दंगा करते हैं। लेकिन शराब का बहुत बडा प्रभाव परिवार पर पडता है। होता यह है कि एक बार जब गांव में परिवार का मुखिया शराब पीना प्रारम्भ कर देता है तब इसका प्रभाव परिवार के अन्य सदस्यों पर भी पडता है। कभी–कभी तो राजपूतों में समाजीकरण की प्रक्रिया के तहत बच्चों को शराब पीना सीखाया जाता है और यह इसलिए किया जाता है कि परिवार में शराब पीने की जो परम्परा है वह समाप्त न हो जायेग़

राजपूत परिवारों में तो इस परम्परा को व्यवस्थित रूप से निरन्तर रूप से बनाये रखा जाता है। शादी और ऐसे ही जन्म आदि के अवसर पर राजपूतों में शराब पीने की परम्परा है लेकिन इधर कुछ परिवर्तन आ रहा है। राजपूतों में शराब पीने वालों को समूह से पृथक बैठाया जाता है। अब ऐसा समझा जाने लगा है कि शराब पीना एक दुर्गुण है और समाज को इसे प्रचलित नहीं करना चाहिए । राजपूतों के अतिरिक्त और भी कई जातियां हैं जैसे कि कायस्थ आदि उनमें भी शराब पीने का प्रचलन है यहां हमें यह कहना चाहिए कि सरकार की नीति और गांधीजी के आन्दोलन के कारण अब शराब को निम्न दर्जा दिया जाता है। अब तो आदिवासियों और गैर आदिवासी समाजों में स्त्रियां सबके सामने शराब नहीं पीतीं इधर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने एक नई परम्परा चलायी है इस परम्परा के अनुसार पढी–लिखी स्त्रियां क्लब में जाकर खुलेआम शराब पीती हैं। उनकी शराब पीने की आदत को पाश्चात्यकरण और आधुनिकीकरण के साथ जोड दिया जाता है लेकिन भारतीय गांवों में खुलेआम शराब पीने की स्त्रियों में परम्परा नहीं है।

हमने अपने क्षेत्रीय कार्य में कहीं पर भी शराब पीते नहीं देखा है। हमारा क्षेत्रीय कार्य गांवों तक ही निर्भर था ऐसी अवस्था में शहर के बारे में हमारी जानकारी नहीं है। इधर हम मराठी, गुजरात और हिन्दी के साहित्य को देखते हैं तब इनमें हमें शराब के प्रभाव को परिवार पर देखने का अवसर मिलता है। पिछले दिनों में यानि कोई 10–20 दशक पहले परिवार में शराब के प्रभाव देखने मिलता था। सामान्यतया एक व्यक्ति शराब पीकर सारे परिवार को तवाह कर देता था। वह ऊँची आवाज में बोलता था और सामान्यतया अपनी स्त्री को पीटता था उसका वह पीटना परिवार को भी प्रभावित करता था वह आस–पडौस के लोगों को भी प्रभावित करता था। जय शंकर प्रसाद, प्रेमचन्द या गुजराती लेखक कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी ने यह विविध प्रकार से बताया है कि शराबी किस भांति परिवार को परेशान करता है।

वास्तविकता तो यह है कि परिवार पर शराब का बहुत बडा प्रभाव आर्थिक होता है। ऐसे परिवारों में स्त्रियां ही परिवार की देखभाल करती हैं, पुरूष तो देर–रात शराब पीकर सोता है और दूसरे दिन देर सवेर उठता है इससे परिवार की जो सामाजिक औपचारिकतायें होती हैं उन्हें स्त्रियां ही करती हैं। अगर हम व्यवस्थित रूप से शराब के प्रभाव को देखने का प्रयास करें तो ज्ञात होगा कि परिवार को शराब से बहुत बडी हानि होती है।

शराब परिवार को आर्थिक दृष्टि से तहतस–नहस कर देती है। इसी तरह से आदमी के हाथ में जब धन आ जाता है तब वह उसे शराब पर ही खर्च कर देता है। ऐसे परिवारों का आर्थिक उत्तारदायित्व स्त्रियों पर ही आ पडता है। वे ही फसल को पैदा करती हैं और वे ही बाजार में इसे विपणन करती हैं। ऐसी अवस्था में परिवार को बहुत बडी हानि यह होती है कि गांव के लोग समझते हैं परिवार का मुखिया तो शराब ही पीता है और सारी व्यवस्था स्त्रियां ही देखती हैं। ऐसे परिवारों की प्रतिष्ठा परिवार के मुखिया पर निर्भर न रह करके परिवार की स्त्रियों पर निर्भर हो जाता है। परिणाम इसका परिवार के सदस्यों को भुगतना पडता है। दक्षिण राजस्थान के एक गांव का अनुभव हमें है इस गांव में वेलिया का परिवार है। वेलिया को खेत से उत्पादन भी बहुत अच्छा होता है लेकिन वह सारे धन को शराब पर लगा देता है। इसका परिणाम यह निकला है कि वेलिया की दो लडकियां विवाह योग्य हैं, पर कोई भी उन्हें विवाह में लेने के लिए तैयार नहीं है। वेलिया का एक लडका भी है वह भी विवाह योग्य है लेकिन गांव के लोग उसे अपनी लडकी देने तैयार नहीं हैं।

नतीजा यह निकला कि शराबी के परिवार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। इसी गांव के पास में एक दूसरा गांव है उसमें एक किसान है। हुरजी उसका नाम है। इस किसान के पास जमीन बहुत ज्यादा है ऐसी स्थिति में गांव में हर कोई लोग उसे अपनी लडकी देने को तैयार है। मतलब यह निकला कि पैसे वाला जब नशा करता है तो उसकी प्रतिष्ठा बढती ही है। लेकिन यदि गरीब किसान या आदिवासी गरीब है तो उसका परिवार कहीं

* व्याख्याता (गृह विज्ञान) हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय, बांसवाडा (राज.) भारत

का नहीं रहता। हम कहना यह चाहते हैं कि शराब का नशा व्यक्तिगत न होकर भी आर्थिक नशा है। जिसके पास धन है, वह यदि नशा करता है तब सब कुछ चलता है हमने यह देखा है कि ऊँची जातियों के लोग आर्थिक अवस्था अच्छी होने पर शराब पीते हैं। लेकिन शराब का यह नशा उनके लिए हानिकारक सिद्ध नहीं होता। हानिकारक इसलिए नहीं होता कि उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है। इनका भोजन भी अच्छा होता है ये स्वास्थ्य को भी बनाये रखते हैं और इस भांति उनका परिवार बना रहता है।

मद्यपान का बहुत बडा सम्बन्ध परिवार से होता है। सामान्यतया मद्यपान दो तरह से किया जाता है एक मद्यपान तो परिवार में बैठकर ही किया जाता है इसका सबसे बडा प्रभाव परिवार के सदस्यों पर पडता है। यह एक प्रकार की समाजीकरण की प्रक्रिया है और बाद में चलकर परिवार के अन्य सदस्य भी मद्यपान प्रारम्भ कर देते हैं। परिवार पर प्रभाव और भी पडता है। जब व्यक्ति घर से बाहर जाकर शराब पीकर आता है वह परिवार को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। पहला प्रभाव तो परिवार पर यह होता है कि वह गाली गलौंच करता है इससे परिवार ही प्रभावित नहीं होता, आस-पास के लोग भी प्रभावित होते हैं। परिणाम यह होता है कि आस-पास के लोग परिवार का बहिष्कार कर देते हैं और इसका प्रभाव अंत में चलकर सम्पूर्ण गांव पर भी पडता है। गांव के लोग भी परिवार का बहिष्कार कर देते हैं लेकिन परिवार के साथ मद्यपान का रिवाज स्वीकृति का रिवाज भी है। आदिवासियों में तो आये दिन आदमी मेहमान बनने कद्द नाते अपने नातेदारों के यहां जाकर शराब पीता है। इसका नतीजा यह होता है कि घर का सारा काम स्त्रियों पर पड जाता है। आदिवासी स्त्रियों पर बहुत थोडा लिखा गया है। देखा जाये तो आदिवासी परिवार को चलाने का काम स्त्रियां ही करती है। आदमी तो केवल खेत में बुवाई मात्र करता है क्योंकि वह हल चला लेता है बाद में खरपतवार को हटाने का काम फसल की देखरेख रखने का काम सब स्त्रियां ही करती हैं। देखा जाये तो शाम ढले आदिवासी कोई जिम्मेवारी का काम नहीं कर पाता। वह तो नशे में रहता है। यहां पर एक तथ्यपूर्ण बात जो हमें क्षेत्र में देखने को मिली वह यह है कि अभी हाल में युवाओं का जो नया नेतृत्व उभमरकर आ रहा है। वह या तो पढ-लिख कर नौकरी करता है या वह पंचायती राज में अपनी पकड करता है। इसी नयी भूमिका के कारण वह शराब नहीं पीता जिसे आधुनिक समझा जाता और इस कारण जो उचित नहीं समझा जाता और इस कारण जो नयी संस्कृति आ रही है वह मद्यपान को हीन दृष्टि से देखती है।

हमने इस तथ्य का उल्लेख तो कई बार किया है कि भगत आन्दोलन ने मदपान को हतोत्साहित किया है लेकिन हम इस बात को नहीं समझते है कि अब आदिवासी बहुत बडी तादाद में पढने-लिखने लग गये हैं इस पढाई लिखाई के कारण वे समझने लगे हैं कि शराब पीने से सम्पूर्ण आदिवासी समुदाय की प्रतिष्ठा खराब हो जाती है और आदिवासियों में यह मान्यता है कि आदिवासी आये दिन शराब पीते रहते हैं इस मान्यता को अब यह पढी-लिखी पीढी समाप्त करना चाहती है। इस पीढ़ी में अब सुधार आने लग गया है और अब नई पीढ़ी शराब को कहीं भी अपवाद रूप में भी पीना नहीं चाहती है।

यह तो सब नई पीढी की बात है लेकिन आदिवासियों में जहां परिवार का सम्बन्ध मद्यपान से है वहीं नातेदारी भी मद्यपान से जुडी हुई है। नातेदारी दो प्रकार की होती है एक तो नातेदार जैसा कि हमने प्रारम्भ में कहा है रक्त नातेदार होते हैं। भाई-बहिन, दादा-दादी आंदि रक्त सम्बन्धी नातेदार हैं। दूसरे नातेदार विवाह सम्बन्धी होते हैं। यहां हम मद्यपान में विवाह सम्बन्धी नातेदारों का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे। वैसे रक्त सम्बन्धी नातेदारों के साथ उम्र को देखकर मद्यपान किया जाता है लेकिन विवाह सम्बन्धियों में उम्र का कोई उल्लेख नहीं होता जब किसी को लडकी दी जाती है या जब किसी से लडकी ली जाती है ऐसी स्थिति में जब कोई ऐसा ही अतिथि आता है तब उसे मद्यपान करवाना आवश्यक हो जाता है। रक्त सम्बन्धी के लिए ऐसा कोई आवश्यकता नहीं होती लेकिन विवाह सम्बन्धी इसे अपना अपमान समझता है ऐसी स्थिति में जब कोई भी विवाह सम्बन्धी आता है तब उसकी आव-भगत मद्यपान से ही की जाती है। यहां एक बात और उठती है और वह यह है कि विवाह सम्बन्धी का दर्जा जितना ऊँचा होता है उतनी ही अधिक महंगी शराब उसे पिलाई जाती है। उदाहरण के लिए जब लडकी वाला आता है तब उसे ऊँची शराब पिलाई जाती है हम कहना चाहते हैं कि नातेदारी में सभी को एक जैसी शराब नहीं पिलाई जाती। विवाह सम्बन्धी के दर्जे के आधार पर ही शराब का स्तर भी होता है। कभी-कभी तो जब शराब पिलाने के लिए धन नहीं होता तब विवाह सम्बन्धी नातेदार को उधार लेकर भी शराब पिलाई जाती है। यहां हम यह कहेंगे कि जब युवा लोग विवाह सम्बन्धी होते हैं तब उनकी आव-भगत शराब के साथ बहुत अधिक की जाती है। क्षेत्र में हमने कई बार ऐसा देखा है कि युवा अतिथि शराब पीने में कोई भी कमी नहीं रखते है। आधी रात तक शराब पीते हैं और सुबह जगने पर फिर शुरू कर देते हैं।

अब युवाओं में परिवर्तन आ रहा है। नई पीढी के युवा शराब पर इतना जोर नहीं देते और कुछ तो ऐसे हैं कि वे शराब को हाथ भी नहीं लगाते यहां हमने इस भ्रम को दूर करना होगा कि आदिवासी आदतन शराब पीते हैं नई पीढी के लोग जो शहरों के प्रभाव में हैं उनमें शराब पीने की आदत नहीं है। अब एक और परिवर्तन देखने मिल रहा है। महुए की शराब गरीब आदमी की शराब है और इसे दूर-दराज के गांव में ही पीने का रिवाज है। सामान्यतया गरीब आदमी इस शराब को पीता है। इसके साथ में बदबू और लगी हुई है और इसलिए इसे सार्वजनिक रूप से नहीं पिया जाता। एक बात और कहनी है कि आज से कोई दो तीन दशक पहले आदिवासी ठेके की दुकान पर बैठकर शराब पी लेते थे। लेकिन अब वे इसे गोपनीय बनाना चाहते हैं और इस कारण वे सार्वजनिक रूप से ठेके की दुकान पर शराब नहीं पीना चाहते हैं। यहां यह भी कहना चाहिए कि अब शराब के विकल्प भी आ गये हैं। दीपावली और होली पर गांवों के आदिवासी (पूरा की पूरा गांव) अपने साहूकार के यहाँ नाचने केलिए आता है परम्परा है आदिवासी कहते है की साहूकार उन्हें उधार देता है और जीविकोपार्जन के अवसर देता है। इस अहसान की अभिव्यक्ति वे त्यौहारों पर साहूकार के यहां जाकर करते है। सामान्यतया एक गांव का साहूकार एक ही होता है। यह एक ही साहूकार सारे गांव के लोगों को उधार देता है। आवश्यकता पडने पर वह नकद धन भी उधार दे देता है। ऐसी स्थिति में गांव का गांव एक ही साहूकार के साथ बंधा रहता है और इसलिए दीपावली या होली पर साहूकार के यहां नाचने या गैर खेलने के लिए सारा का सारा गांव आता है ये लोग ढोल लेकर आते हैं और सम्भव हुआ तो लडकियां और स्त्रियां भी इसी समूह के साथ जुड जाती हैं। स्त्रियां गाती हैं और आदमी नाचते हैं। इस नाचने को उनकी भाषा में ठेकना कहते हैं। इस ठेकने के मध्य में ढोल पूरी ताकत के साथ बजाया जाता है और इस ठेकने के एवज में साहूकार भेंट स्वरूप कुछ नकद रूपया देता है यह रूपया दस से बीस रूपये तक होता है। कभी-कभी पूरा का पूरा गांव दूसरे साहूकार के यहां भी जाता है। वह भी नकद रूपया देता है। इस सारी रकम को एकत्र करके गांव के लोग पहले शराब खरीद लिया करते थे और शहर छोडने के बाद किसी पेड के नीचे बैठकर शराब पी लिया करते थे। अब गांव के लोग शराब नहीं खरीदते रूपये के इस कोश से वे कुछ मिठाई और नमकीन ले लेते

हैं। मिठाई में उनकी पसन्द गुड की होती है। इस मिठाई और नमकीन को गांव के लोगों के बीच में बांट दिया जाता है और इस तरह अब शराब का स्थान मिठाई और नमकीन ने ले लिया है। हमको अपने क्षेत्रीय कार्य में कहीं पर भी शराब देखने को नहीं मिली। अब हम यह कहना चाहते हैं कि एक समय था जब शराब पीना आदिवासियों की परम्परा थी लेकिन आज इस परम्परा का विकल्प आ गया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अब युवाओं में शराब पीने की आदत नहीं रही है। कम से कम वे सार्वजनिक रूप से तो मद्यपान नहीं करते, मद्यपान करना आदिवासियों की आदत में है पर जहां तक सम्भव हो वे इसे गोपनीय ढंग से ही करते हैं।

यहां पर एक बात और कहनी चाहिए और वह यह है कि आज के युवा महुए के फूलों की शराब को हाथ नहीं लगाते वे कहते हैं कि इससे उनका स्तर गिर जाता है। वे भारत में बनी विदेशी शराब को पीते हैं इससे उनका स्तर भी बना रहता है लेकिन हाल में जो अध्ययन हुए हैं वे ये बताते हैं कि वयस्क आदिवासी ठेके की दुकान पर शराब पीकर अपने गांव में पहुंचते गाली गलौंच करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप गांव में प्रतिष्ठा बिगड जाती है। हाल की कुछ ग्राम पंचायतों में यह निर्णय लिया गया है कि गांव का कोई भी आदमी रात को शराब पीकर गांव में नहीं आयेगा और इस तरह गांव में प्रतिष्ठा बनी रहेगी कहना यह है कि अब गांव के लोग शराब के साथ में प्रतिष्ठा को भी जोडने लगे हैं। पंचायती राज में काम करने वाले कार्मिक अब ठेके की शराब भी नहीं पीते, हुआ यह है कि गांधीजी ने जो आन्दोलन चलाया था अब वह लोगों में लोकप्रिय होने लगा है किसी भी गांव में सार्वजनिक रूप से शराब पीना आदमी को नीचा गिरा देता है और इससे सबसे बडा नुकसान शराब पीने वाले व्यक्ति के परिवार और नातेदारों पर पडता है। वास्तविकता यह है कि शराब पीने वाले के परिवार के साथ कोई विवाह सम्बन्ध नहीं करना चाहता। सबसे बडी बात यह है कि उस परिवार से लडकी लेना नहीं चाहता है तो यह तो कहना सरल है कि शराब पीने से स्वास्थ्य की हानि भी होती है, यह कहना भी बडी हानि विवाह सम्बन्धों की होती है। यह क्षेत्र समाजशास्त्रियों का है और इस पर उन्हें गहराई से अनुसंधान करना चाहिए।

जब हम मद्यपान की बात करते हैं तब हमें समाजीकरण पर विचार करना चाहिए यह सही है कि व्यक्ति पर शराब पीने की आदत का प्रभाव समाज और मित्रों से पडता है। लेकिन हम समझते हैं कि शराब पीने का समाजीकरण परिवार से ही प्रारम्भ होता है। ऐसे परिवार जिनमें शराब पीने की परम्परा होती है। उसमें आये दिन शराब की महफिलें होती रहती हैं। परिवार के सदस्य शराब की महफिलों की व्यवस्था करते हैं और इस तरह इनकी आदत में शराब पीना आ जाता है। समाजीकरण की परम्परा शराब को लेकर परिवार से ही प्रारम्भ होती है। द्विज परिवारों में शराब पीने की परम्परा नहीं होती। इसी कारण इस परिवार के सदस्य शराब पीने की परम्परा को परिवार से बाहर सीख कर आते हैं। लेकिन वे परिवार जैसे कि आदिवासी, राजपूत और कायस्थ जिनमें शराब पीने की परम्परा होती है। उनमें सदस्यों का समाजीकरण यहीं से हो जाता है। ऐसी अवस्था में द्विज परिवार समाजीकरण की चपेट में नहीं आते लेकिन राजपूतों और कायस्थों में तो इनका निर्वाह समाजीकरण के द्वारा ही होता है। इसी कारण जब हम मद्यपान को परिवार के साथ जोडते हैं। तब हमें समाजीकरण का उल्लेख अवश्य करना चाहिए। इसी कारण हमने यह अध्याय मद्यपान और परिवार के साथ जोडा है। ऐसे परिवार जिनमें मद्यपान की परम्परा नहीं होती उनमें मद्यपान का समाजीकरण नहीं आ पाता। अत: हमें मद्यपान से व्यक्ति आदत न मानकर सामाजिक और सांस्कृतिक बात समझनी चाहिए। इस सम्बन्ध में जाति व्यवस्था को जोडना भी बहुत आवश्यक है। वे जातियां जो शराब नहीं पीतीं उनके परिवार में मद्यपान का समाजीकरण तो प्रारम्भ नहीं होता लोग छिपकर चाहे शराब पी लेवें, लेकिन समाजीकरण नहीं हो पाता इसी कारण जब कभी हम मद्यपान की चर्चा करते हैं परिवार अंत में चलकर जाति के सांथ में जुडता है। वे जातियां जो मद्यपान को स्वीकार करती हैं उनके परिवारों में मद्यपान की परम्परा चल निकलती है। ऐसी अवस्था में वे समूह जो मद्यपान का विरोध करते हैं उन्हें परिवार का अध्न अवश्य करना चाहिए। अगर परिवार में मद्यपान पर प्रतिबन्ध लाना है तो हमें जाति व्यवस्था को अवश्य देखना चाहिए जाति ही के भय के कारण आदिवासी भी मद्यपान नहीं करता लेकिन आदिवासी जो मिले जुले गांवों में रहते हैं अर्थात जिनमें अन्य जातियां भी रहती हैं उनमें खुलेआम मद्यपान करना बहुत कठित होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बनर्जी ई ., 1906-1907, द थील्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया, जनरल ऑफ द सोसाइटी ऑफ आर्ट्स व्हाल्युम एल.वी.
2. भट्ट उदयशंकर, जीवन और संघर्ष, कश्मीरी गेट दिल्ली 6: राजपाल एंड संस
3. चटोपाध्याय बसंत कुमार, 1971. भारतीय प्रदेश और उनके निवास, दिल्ली: एन. डी.सहगल एंड संस
4. दीक्षित ब्राह्मदेव, 1964. भारत के आदिवासी, आगरा, जनता प्रेस
5. युग, 1952. मेथर्ड इन सोशल रिसर्च, न्युयोर्क

****

संविधान व संविधानवादः सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. शिप्रा राठौड़*

प्रस्तावना – संविधानवाद एक आधुनिक धारणा है जिसकी व्याख्या भी तभी की जा सकती है जब संविधान की परिभाषा का सुस्पष्ट वर्णन किया जा सके। अरस्तु से लेकर 18वीं 19वीं शताब्दी तक संविधान को अलग-अलग विचारकों ने अपनी व्याख्या से निर्धारित किया है। अरस्तु ने 'Politeia' शब्द का प्रयोग एक राजनीतिक व्यवस्था, नगर राज्यों को संचालित करने का साधन अर्थात 'कॉन्स्टिट्यूशन' के नाम से (मिश्रित संविधान का चित्रण), और शासन व्यवस्था के रूप में इसका प्रयोग किया, तो आधुनिक काल में भी संविधान को सरकार के अंग, उसके संगठन, कार्यालय व अंगों के आपसी संबंधों का निर्धारण करने वाली राजनीतिक व्यवस्था के रूप में व्याख्या की गई है।

इस अध्ययन पत्र में संविधान व संविधानवाद का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया गया है जिससे कि प्रत्येक राज्य अपने संविधान, अपनी सरकार और सामाजिक व्यवस्था में इसके तत्वों को समाहित कर सकें और व्यवहार में आदर्श राज्य व समाज की स्थापना कर सकें।

संविधान : अर्थ एवं प्रकार – 'वे सब कानून संविधान में सम्मिलित होते है जिनका राज्य में प्रभुत्व शक्ति के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।' **– प्रो. डायसी**

प्रत्येक राज्य के दिशा निर्देशन, स्वरूप, सरकार के अंग उनका कार्यक्षेत्र निर्धारण करने के लिए एक नियम समूह की आवश्यकता होती है और 'संविधान' राज्य के उन नियमों समूह का कार्य करता है। यह राज्य का सबसे महत्वपूर्ण अभिलेख होता है। प्राचीनकाल से ही विभिन्न राजनीतिक विचारकों ने इसकी महत्ता को बताया है। अरस्तू ने सर्वप्रथम विभिन्न संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। वर्तमान समय में भी प्रत्येक राज्य द्वारा एक सर्वश्रेष्ठ संविधान निर्माण करने व उसको अपनाकर अपने देश को विकास की ओर अग्रसर करेन की कोशिश रहती है।

अर्थ एवं परिभाषा – मानव शरीर के सम्बन्ध में संविधान के अंग्रेजी पर्याय 'कॉन्सटीट्यूशन' का प्रयोग 'मानव शरीर के ढाँचे' व बनावट के लिए किया जाता है।जिस तरह मानव शरीर के गठन के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है उसी तरह राजनीति विज्ञान में कॉन्सटीट्यूशन का अर्थ राज्य के ढ़ाँचे तथा सगठन से होता है।

निम्न परिभाषाओं से इसका व्यापक अर्थो को समझा जा सकता है-

'वे मौलिक सिद्धान्त जिनके द्वारा किसी राज्य का स्वरूप निर्धारित होता है संविधान कहलाते है'**–गैटेल;**

All rules which directly or indirectly, effect the distribution or the excercise of sovereign power in the state make Constitution of the state" – Dicey.

'संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा कानूनों का समूह होता है जिनके द्वारा सरकार की शक्रियों का विभिन्न अंगो में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किए जाते है'
–गिलक्राइस्ट

उपर्युक्त परिभाषाओं से राज्य के संविधान में तीन तत्व निश्चित किए जाते हैं :-

1. व्यक्ति- व्यक्ति का आपसी संबंध।
2. व्यक्ति- राज्य का परस्पर संबंध।
3. सरकार के संगठन, उसके ढांचे और सरकार के विविध अंगों का पारस्परिक संबंध।

संविधानों का वर्गीकरण

1. उत्पति के अधार पर :निर्मित संविधान(भारत), विकसित संविधान (ब्रिटेन);
2. परम्पराओं व कानून की मात्रा के आधार पर:अलिखित संविधान (ब्रिटेन),लिखित संविधान (भारत);
3. परिवर्तनशीलता के आधार पर कठोर संविधान(अमरीका), लचीला संविधान (ब्रिटेन)

- **विकसित संविधान –** यह संविधान किसी निश्चित समय या सभा द्वारा निर्मित नहीं होते, यह तो इतिहास और विकास का परिणाम होते है। इंग्लैण्ड का संविधान एक विकसित संविधान है जिसका अधिकांश भाग रिति-रिवाजों व परम्पराओं एवं न्यायिक निर्णयों से बना है।

प्रमुख गुण :

1. समयानुकुल परिवर्तित किया जा सकता है।
2. क्रांन्ति होने की सम्भावना कम होती है।
3. प्रगतिशील संविधान होता है।

प्रमुख दोष :

1. अनिश्चित तथा अस्पष्ट चूंकि लिखित अंश कम होता है।
2. न्यायाधीशों की व्यक्तिगत व्याख्या हो सकती है।
3. नागरिकों के अधिकार पत्र के अभाव में अधिकार असुरक्षित हो सकते है।

निर्मित संविधान – ये वे संविधान होते है जिनका निर्माण संविधान सभा जैसी संस्था के द्वारा लिखित रूप से किसी प्रालेख में किया जाता है। सामान्य तौर पर यह कठौर भी होते है जैसे भारत, अमरीका फ्रांस, जापान आदि। निर्मित होने के साथ साथ इन संविधानों का विकास समय के अनुकुल होता

* व्याख्याता एवं विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय, बांसवाड़ा (राज.) भारत

रहता है।

प्रमुख गुण :

1. सुनिश्चित संविधान।
2. स्थिर शासन प्रणाली में सहायक।
3. स्पष्ट प्रावधानों से जटिलताएँ कम होती है।
4. नागरिकों के अधिकार अधिक सुरक्षित।

प्रमुख दोष :

1. समय के साथ नहीं चल पाते।
2. क्रान्ति की संभावना रहती है।

लिखित संविधान वे होते है जिसमें संविधान का अधिकांश भाग लिपिबद्ध हो। ऐसे संविधानों में अनुच्छेद व अनुसूचियों में विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख किया जाता है। विश्व के अधिकांश देश ने लिखित संविधानों को अपनाया है जैस भारत, अमरीका, रूस, फ्रांस आदि।

प्रमुख गुण :

1. निश्चित और स्पष्ट संविधान
2. स्थिर सरकार में सहायक।
3. नागरिक अधिकार सुरक्षित
4. संघात्मक राज्यों के लिए आवश्यक।

प्रमुख दोष :

1. कठोर संविधान-आसानी से समय की मांग के अनुसार बदला नहीं जा सकता।
2. क्रान्ति का भय।
3. जनमत के साथ मेल ना खाए।
4. प्रगतिशील संविधान नहीं।

● **लचीला संविधान –** ऐसा संविधान जहाँ सामान्य और संवैधानिक कानून को बदलने में भिन्न-भिन्न प्रक्रिया ना हो, जहाँ आसानी से संविधान के कानून को संसद सामान्य कानून की तरह संशोधित कर दे उसे लचीला संविधान कहा जाता है जैसे ब्रिटेन का संविधान।

प्रमुख गुण :

1. क्रान्ति से सुरक्षा।
2. समय के अनुकूल।
3. संकटकाल में प्रभावी।
4. प्रगति में सहायक।

प्रमुख दोष :

1. अस्थिरता को बढ़ावा।
2. कानून का वास्तविक स्ववरूप समझने में कठिनाई।
3. राजनीतिक दलों द्वारा दुरूपयोग।

● **कठोर संविधान –** जिस संविधान में परिवर्तन करने में कठिनाई हो, या जहाँ संवैधानिक कानून को परिवर्तित करने के लिए एक निश्चित कठोर प्रक्रिया अपनाई जाए और इस संदर्भ में सामान्य कानून और संवैधानिक कानून में बदलाव के लिए अलग-अलग प्रक्रिया हो, उसे कठोर या अनमनीय संविधान कहा जाता है। भारत, अमरीका, स्विटज़रलैण्ड इसी श्रेणी में आते है।

प्रमुख गुण :

1. सरकार पर अंकुश लगाता है।
2. स्पष्ट और निश्चित प्रावधान होते है।
3. स्थायित्व बना रहता है।
4. नागरिक अधिकार सुरक्षित होते है।
5. सरकार व जनता के पारस्परिक संबंध सुनिश्चित होते है।

प्रमुख दोष :

1. क्रान्ति का भय रहता है।
2. समय अनुकूल नहीं रह पाते।
3. प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।
4. न्यायपालिका को अवांछित महत्व मिलता है।

आदर्श संविधान में आवश्यक लक्षण – उपरोक्त वर्गीकरण के पश्चात यह निर्धारण करना कठिन है कि कौनसा संविधान किसी भी राज्य के लिए श्रेष्ठ है। कोई संविधान ना तो पूर्णतया लिखित होता है ना अलिखित, निर्मित संविधान विकसित भी होता है तो विकसित संविधान में भी कुछ योजनाबद्ध रूप से कानूनों का समावेश किया जाता है। लचीला संविधान बहुमत दल के हाथ का खिलौना भी बन सकता है तो कठोर संविधान समय के साथ -साथ परिवर्तन ना कर पाए तो जन भावना विरोधी भी हो सकती है। अत: एक श्रेष्ठ संविधान में कोई एक श्रेणी वर्णित नहीं की जा सकती है। अत: विविध संविधानों के अध्ययन के आधार पर निम्न लक्षणश्रेष्ठ संविधान के लिए आवश्यक बताए जा सकते है:-

1. संक्षिप्त संविधान – संविधान सूक्ष्म होना चाहिए व शासन संबंधी मौलिक बातों का समावेश होना चाहिए। अत्यधिक व्यापक संविधान में बार बार संशोधन की आवश्यकता पड़ती है जिससे कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है।

2. निश्चित – आदर्श संविधान के लिए उसका स्पष्ट एवं निश्चित होना अनिवार्य है। जिससे न्यायालय की शरण में बार बार जाना ना पड़े। स्पष्टता के अभाव में संविधान से जुड़े हुए विधि पक्षों में विवाद उत्पन्न होते रहने की सम्भावना अधिक हो जाती है। अत: संविधान की भाषा स्पष्ट एवं निश्चित होनी चाहिए।

3. व्यापकता – संक्षिप्तता के साथ संविधान का व्यापक होना भी आवश्यक है। शासन के बनियादी सिद्धान्त तथा नियमों का वर्णन किया जाना चाहिए।

4. मौलिक अधिकार – संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन करने से नागरिकों के अधिकार सुरक्षित रहते है। अत: शासन की मर्यादाओं के साथ, नागरिकों को राज्य के हस्तक्षेप से सुरक्षित करने का लक्ष्य, एक श्रेष्ठ संविधान की आवश्यकता है।

5. परिवर्तनशीलता – अच्छे संविधान के लिए समय के साथ चलना आवश्यक है। वह ना तो इतना लचीला हो कि उसे बार बार बदला जाए और ना ही इतना कठोर कि उसे समय की मांग के बावजूद बदलने में कठिनाई आए।

6. न्यायपालिका की स्वतन्त्रता – आज के लोकतान्त्रिक युग में श्रेष्ठ संविधान के लिए उसकी न्यायपालिका का स्वतन्त्र और निष्पक्ष होना आवश्यक है। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका के अनुचित हस्तक्षेप से संविधान मात्र एक दिखावा बन सकता है, अत: संविधान में स्वतन्त्र न्यायपालिका ही संविधान को सुरक्षित रखने की सच्ची माध्यम है।

संविधानवाद – संविधानवाद मानव जीवन में राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था का महत्व असंदिग्ध है। जिस तरह राज्य में शक्ति एक अनिवार्य तत्व है उसी तरह शक्ति पर अंकुश भी उतनी ही बड़ी आवश्यकता है। संविधान राज्य के पथ प्रदर्शन के साथ साथ राज्य के विभिन्न अंगों की शक्ति को निरूपित एवं निर्धारित करता है और संविधानवाद उसी संविधान के माध्यम

से शासन करने वाली सरकार को नियन्त्रित करने की धारणा है। प्राचीन काल से ही राज्य में विधि की सर्वोच्चता वाले राज्य की अवधारणा और विधि के शासन अर्थात संविधानवाद के विचार को अरस्तू द्वारा सृजित किया गया और इसी लिए इसे संविधानवाद का जनक भी कहा जाता है।

अर्थ एवं परिभाषा – जे. एस. राउसैक के अनुसार, 'एक धारणा के रूप में संविधानवाद अनिवार्य रूप से सीमित सरकार और शासक तथा शासित के उपर नियन्त्रण की एक व्यवस्था है।' अत: संविधानवाद वह राजनीतिक व्यवस्था है जिसका संचालन विधियों और नियमों से होता है। जहाँ लोकतन्त्रिक प्रणाली में शक्ति के केन्द्रीकरण और निरंकुश शक्ति का कोई स्थान नहीं होता। कार्टर व हर्ज के अनुसार, 'मौलिक अधिकार तथा स्वतन्त्र न्यायपालिका प्रत्येक संविधानवाद की अनिवार्य और सामान्य विशेषता है।' संक्षेप में, संविधानवाद ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसके द्वारा शासक वर्ग पर नियन्त्रण लगाने की व्यवस्था है जिससे वे अपनी शासन शक्तियों का दुरूपयोंग ना कर सकें। आधुनिककाल में यह अनुभव किया गया कि शासन और शासक वर्ग पर नियन्त्रण संविधान में ही होना चाहिए और नियन्त्रण की व्यवस्था संस्थागत होनी चाहिए जिससे इसका उल्लंघन करना मुश्किल होगा।

संविधानवाद के तत्व– अरस्तू के मत में संविधानवाद के तीन प्रमुख तत्व है:–

1. यह शासन जनता के या सर्वसाधारण के हित में होता है।
2. यह विधि सम्मत शासन होता है।
3. यह इच्छुक प्रजाजनों का शासन है।

पिनॉक व स्मिथ ने चार तत्वों का उल्लेख किया है:–

1. संविधान में आवश्यक संस्थाओं की व्याख्या होती है।
2. संविधान में राजनीतिक शक्ति को प्रतिबन्धित किया हुआ है।
3. संविधान विकास के लिए मार्गदर्शन का कार्य करता है।
4. संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठन होता है।

संवैधानिक सरकार का अर्थ– संवैधानिक सरकार वह सरकार होती है जो संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार गठित, सीमित तथा नियन्त्रित होती है तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के बजाए,केवल कानून के अनुसार संचालित होती है। संक्षेप में, संवैधानिक सरकार कानून द्वारा नियंत्रित और प्रतिबन्धित सरकार होती है।

संविधान और संविधानवाद में अन्तर :

1. संविधान साधन युकत धारणा है;संविधानवाद साध्य युक्त है।
2. संविधान प्राय: निर्मित होते है;संविधानवाद हमेशा विकास का परिणाम रहा है।
3. संविधान संगठन का प्रतीक है; संविधानवाद विचारधारा का प्रतीक है।
4. संविधान सरकार, व्यक्ति और सामाजिक संगठन का वर्णन करता है; संविधानवाद राज्य के मूल्य, विश्वास और राजनीतिक लक्ष्यों को मिला कर विचारधारा के रूप में प्रवाहित होती है।
5. प्रत्येक राज्य का अपना अलग संविधान होता है;संविधानवाद आदर्शो, मूल्यों, लक्ष्यों की समानता के कारण कई देशों में एक जैसा हो सकता है।
6. संविधान का आधार कानून होता है;संविधानवाद का आधार विचारधारा होती है।

संविधानवाद की प्रमुख विशेषताएँ :

1. **संविधानवाद मूल्य संबंद्ध अवधारणा है –** प्रत्येक राष्ट्र के अपने मूल्य, राजनीतिक आदर्श उसकी जनता के लिए महत्वपूर्ण होते है। संविधानवाद उन्हीं आदर्शो की ओर संकेत करता है और राजनीतिक समाज को प्रभावित करता है।

2. **संविधानवाद संस्कृति संबंद्ध अवधारणा है –** जिस तरह प्रत्येक राज्य की संस्कृति अपने विशेष की एक अलग पहचान रखती है उसी तरह संविधानवाद भी अपने देश की संस्कृति के अनुरूप ही होता है।

3. **संविधानवाद एक गतिशील अवधारणा है –** संविधानवाद एक प्रगतिशील, समय के साथ मूल्यों में परिवर्तन के साथ साथ चलने वाली अवधारणा है। यह वर्तमान के साथ भविष्य की आकांक्षाओं का प्रतीक भी होता है।

4. **संविधानवाद समभागी अवधारणा है –** विभिन्न देशों में राजनीतिक आदर्शो, आस्था में समानताएँ हो सकती है और इसी वजह से इन देशों में संविधानवाद मूलभूत समानताएँ रखता है। जैसे पश्चिमी देशों की संविधानवादी अवधारणा एक समान सी है।

5. **संविधानवाद साध्य संबंधित अवधारणा है –** संविधानवाद एक साध्य संबंधी अवधारणा है जो संविधान को साधन के रूप में प्रयोग कर इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन करता है।

6. **संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है –** लोकतान्त्रिक राज्य के संविधान में उसके मूल्यों व लक्ष्यों का वर्णन किया जाता है और ऐसे संविधान पर ही संविधानवाद आधारित रहता है जो विभिन्न संस्थाओं, संगठन के माध्यम से संविधानवाद की व्यवहारिक रूप प्रदान करता है।

संविधानवाद की अवधारणाएँ – संविधानवाद प्रत्येक संविधान के आदर्शो, मूल्यों व लक्ष्यों से निर्धारित होता है, अत: विभिन्न राष्ट्रों में यह भिन्न भी हो सकता है। यह है गत्यात्मक धारणा है जो भिन्न राष्ट्रों में भिन्न परिस्थितियों व संस्कृति के अनुरूप समान या अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाती है। अत: उद्देश्यों और उनकी प्राप्ति के साधन के आधार पर विभिन्न अवधारणाएँ हो सकती है:–

1. रूढ़िवादी सिद्धान्त – संविधानवाद का प्राचीनतम रूप यूनानियों,रोमन, और मध्ययुगीन इतिहास में मिलता है। युनानी व रोमन काल में संविधानवाद सिद्धान्त से अधिक व्यवहारिक रूप लिए हुए था। स्थिरता एवं शक्ति इस समय बहुत महत्वपूर्ण थे, परन्तु नियंत्रणों को भी अत्यधिक महत्ता दी गई है। युनानी काल में प्लेटों ने 'अति मानव' पर जोर दिया तो अरस्तू ने व्यवहारिक राज्य पर अपने मत प्रकट किए। परन्तु दोनों राज्य के क्षेत्र से बाहर ना निकल पाए जिस कारण संविधानवाद का विचार बहुत पनप ना सका। रोमन संविधान में कानून का संहिताकरण किया गया जो कि उत्तारदायी सरकार की स्थापना में सहयोगी बने। साथ ही कानून, सरकार के साथ धर्म के विचार का भी महत्व इस युग में प्रारम्भ हुआ जिससे संविधानवाद लोकप्रिय सिद्धान्त के रूप में विकसित होने लगा। मध्ययुगीन काल में चर्च का महत्व सर्वाधिक होने लगा व सम्राट को चर्च के अधीन रखने का विचार प्रचलित हुआ। ईसाई धर्म में यह माना जाने लगा कि वे कानून ही श्रेष्ठ है जो धर्म पर आधारित है। संत आग्सटीन एवं एक्वीनास जैसे राजनीतिक विचारको ने धर्म निरपेक्ष सत्ताा को चर्च के अधीनस्थ करने का समर्थन किया। पुनर्जागरण युग में नैतिकता और राजनीति को पृथक किया गया।

2. संवधिानवाद की उदारवादी लोकतन्त्र की अवपवधारणा–पिनॉक

और स्मिथ तथा अन्य कुछ लेखक का मत था कि संविधानवाद की एक ही धारणा हो सकती है और वह है उदारवादी लोकतन्त्र या पाश्चात्य अवधारणा। इस अवधारणा की शुरूआत समझौतावादी विचारक जैसे जॉन लॉक के सिद्धान्त में भी देखी जा सकती है। लॉक ने नियंत्रित सम्प्रभु शक्ति, व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार व कानून निर्माण शक्ति के विभाजन जैसे विचारों से उदारवादी संविधानवाद अवधारणाका प्रतिपादन किया। पश्चिमी विचारक जैसे थामसपेन, जेम्सब्राइस, लास्की, सीएफ स्ट्रांग एवं फ्रेडरिक आदि ने यह मत व्यक्त किया कि संविधानवाद अपने आप में साध्य एवं साधन दोनों ही है, मूल्य मुक्त के साथ साथ मुल्य युक्त धारणाहै जिसमें निर्देशात्मक, व आनुभाविक दोनों ही आयाम है। पाश्चात्य संविधानवाद में साध्य तत्व– व्यक्ति की स्वतन्त्रता और साधन तत्व –समिति सरकार है। संविधानवाद का प्रमुख आधार है– संस्थान एवं प्रक्रियात्मक प्रतिबन्धों से नियन्त्रित सरकार। जनता के अधिकारों की सुरक्षा तब ही हो सकती है जब राजनीतिक शक्ति संविधान के नियम, कानून से प्रतिबन्धित हो।

पश्चिमी संविधानवाद के दार्शनिक आधार है –

1. व्यक्ति की स्वतन्त्रता
2. राजनीतिक समानता
3. सामाजिक एवं आर्थिक न्याय
4. जनकल्याण

इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार की शक्ति को सीमित एवं उत्तरदायी बनाना आवश्यक है। सरकार को निम्न अवस्थाओं द्वारा सीमित एवं उत्तरदायी बनाया जा सकता है :–

1. नियमित चुनाव द्वारा लोकतान्त्रिक प्रणाली को सुदृढ करना।
2. राजनीतिक दलों की स्थापना का वातावरण जिससे प्रतिनिधित्यामक सरकार बने।
3. प्रेस स्वतन्त्रता हो
4. सामाजिक बहुलवाद हो।
5. जनमत का प्रभाव शक्तिशाली हो।
6. विधि का शासन हो।
7. संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान हो।
8. शक्ति पृथकरण एवं नियन्त्रण सन्तुलन हो।
9. स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका हो।

अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड आदि देशों में यह अवधारणा प्रतिबिम्बित होती है।

3. साम्यवादी अवधारणा – साम्यवादी संविधावाद अपने सिद्धान्त की शुरूआत ही पश्चिमी संविधानवाद की आलोचना से करते है। उनके अनुसार पश्चिमी अवधारणा यथा स्थिति समर्थक धारणा है जबकि वे संविधानवाद का लक्ष्य ही सामाजिक रूपान्तरण को मानते है। मार्क्सवादी संविधानवाद को एक साध्य नहीं मानते बल्कि वैज्ञानिक समाजवाद को प्राप्त करने का साधन मात्र मानते है। उनका लक्ष्य है श्रमिक वर्ग की तानाशाही के द्वारा राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना जिसमें ही व्यक्ति आर्थिक उत्पादन में सहभागी हो तथा हर व्यक्ति की आर्थिक इच्छा की पूर्ति हो सकें व कोई भी व्यक्ति का आर्थिक शोषण ना हो। इसलिए वे ऐसे नियन्त्रणें का समर्थन करते है जिससे समाज की आर्थिक शक्ति को नियन्त्रित कर, राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना हो सके। साम्यवादी अवधारणा की मान्यताएँ निम्न है :–

1. सामाजिक जीवन में आर्थिक पहलू की प्रधानता।
2. पूंजीपति वर्ग (आर्थिक शक्ति सम्पन्न) का प्रमुख होना।
3. राजनीतिक शक्ति का आर्थिक शक्ति के अधीन होना।

इन मान्यताओं को ध्यान में रखकर मार्क्सवादी अपने साध्य राज्यविहीन, वर्गविहीन समाज को प्राप्त करने के लिए निम्न व्यवस्थाओं को प्रतिपादित करते है:–

1. उत्पादन व वितरण के साधन पर जन स्वामित्व।
2. सम्पति का समान वितरण।
3. साम्यवादी दल क एकाधिकार।

संक्षेप में, साम्यवादी अवधारणा में राजनीतिक शक्ति पर संवैधानिक नियन्त्रण की संस्थात्मक व्यवस्थाएँ एक औपचारिकता मात्र बनकर रह गई है। साम्यवादी दल के एकाधिकार व अधिनायकतन्त्र के कारण यह व्यवस्थाएं निरर्थक बन जाती है। इसलिए आलोचकों द्वारा इस अवधारणा को संविधानवाद की अवधारणा के अनुरूप नहीं माना गया है।

4. विकासशील लोकतन्त्रों की अवधारणा – विकासशील देशों का संविधानवाद पूरी तरह स्थिर व विकसित नहीं हो सकता है। न तो यह पूरी तरह पश्चिमी अवधारणा की तरह है और ना ही साम्यवादी विचारधारा जैसा। लम्बे समय तक इसके अधिकांश राष्ट्र यूरोपीय साम्राज्य के प्रभाव में रहे व वहाँ की शासन प्रणाली से परिचित थे साथ ही स्थानीय जनता की माँगों के अनुरूप व अपने राजनीतिक संस्कृति और आदर्शो को समाहित करना, उनके संविधानवाद का प्रमुख लक्ष्य रहा है। कई राज्यों ने संसदीय लोकतन्त्र अपनाया तो कुछ राज्यों ने अध्यक्षात्मक प्रणाली। अधिकतर इन राज्यों ने साध्य तो पाश्चात्य अवधारणा के उदारवादी लोकतन्त्र को माना है और साधनों की दृष्टि से कुछ राज्य साम्यवादी अवधारणा के समीप लगे है।

विकासशील देश में संविधानवाद के लक्षण– विकाशील देशो में संविधानवाद के कुछ लक्षण निम्न प्रकार से लक्षित हुए है :–

1. संविधानवाद निर्माण की अवस्था में है।
2. संविधानवाद मिश्रित प्रकृति का है।
3. संविधानवाद प्रवाह के दौर में है।
4. संविधानवाद दिशारहित चरण में है।

विकासशील देशों में यह दुविधा है कि वे कौन सी ऐसी व्यवहारिक पद्धति अपनाएँ जिसमें उनके देशी तत्व भी हो एवं विश्व की समाजवादी पद्धति के भी अंश हो। पश्चिमी अवधारणा के उदारवादी लोकतन्त्र के आदर्श के साथ अपनी मौलिक पहचान, स्थानीय जनता की मांगो के बीच सामंजस्य बैठा सकें। परन्तु आज भी यह देश अपनी राजनीतिक समस्याओं जैसे – आर्थिक पिछड़ापन, राजनीतिक संरचना के विकल्प की समसरूपता, सत्ताा की वैधता को चुनौती व आधुनिकीकरण में रूकावट की समस्या – से संघर्ष के कारण यहाँ संविधानवाद पूरी तरह निश्चित नहीं हो पाया है।

अत: संविधान और संविधानवाद की यह सैद्धांतिक व्याख्या किसी भी राज्य के नीति निर्माताओं व संविधान निर्माताओं के लिये पथ प्रदर्शन कर सकती है व उन के राष्ट्र के लिये एक आदर्श संविधान निर्माण में सहायक हो सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Upreti Nandini ,2007.*Vishwa Ke Pramukh Samvidhan*, Jaipur:Pointer Publishers
2. Bhagwan Vishnoo,Rajani R Shirur,Bhushan Vidya, 1997.

3. *World Constitutions,*Sterling Publishers Pvt. Ltd.
4. Kapur A.C & Mishra K.K, 1956, (1st ed.).*Select Constitutions*,New Delhi: S.Chand Publishing
5. StrongC.F.,1963. *A History of Modern Political Constitutions*,New York:Capricorn Books
6. SinghMahendra P. 2011*Comparative Constitutional Law*2nd Ed
7. डॉ. इकबाल नारायण, 2004 विश्व के प्रमुख संविधान, जयपुर ; ग्रन्थ विकास।
8. डॉ. चडढा पी.के. एवं जैन धर्मचन्द, 2001–02प्रमुख राजनीतिक व्यवस्थाएँ 8 वां संस्करण,जयपुर : युनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा. लिमिटेड
9. डॉ. फडिया, बी.एल., फडिया, कुलदीप, 1997,आधुनिक संविधान जयपुर:कॉलेज बुक हाउस
10. डॉ. जैन, पुखराज, आधुनिक सरकारे , आगरा ; साहित्य भवन पब्लिकेशनस।

****

Sarojini Naidu: Poetic Craftsmanship in Indian Tradition

Dr. Jatinder Kohli*

Abstract - Sarojini's colourful imagination mingled with vivid realism and produced lovely poems about India. India lies revealed poetically and picturesquely in her poetry. Sarojini, the poet is in full possession of rare gifts - a profound awareness of her own tradition, poise, economy, striking rhythm, images, symbol all combining to make beautiful compositions. Behind her poetry is the whole lot of deep and pervasive tradition of classical Sanskrit aestheticians who consider poetry to be an enactment of the paradigmatic essences of beauty. She was greatly influenced particularly by the dominant school known as *rasavada* that considered *shringaara* as the chief of all *rasas* to be invoked in poetry.
Keywords- folklore, tradition, poetics, sringara rasa, rasavad.

Introduction - Sarojini's poetry is perfect English lyric composition delicately tuned to the composite Indian ethos. She draws her artistic sustenance from her heritage. Her songs are organically connected with the Indian songs of folklore. She invests folk personality with lyric grandeur. Folk poems allow her to express spontaneously.

Sarojini presented her poems in a typical Indian graphic framework. Her art involved the extensive use of "tradition" as a framework for conveying experience. Hence, in order to enjoy this art, one must approach it from the standpoint of the tradition which produced it. She used traditions from Sanskrit and Urdu - Persian Poetry in evolving her poetics (Rajyalaxmi *Lyric*). When Sarojini started writing, Hindi and Sanskrit classical poetry was moving from *Prabandha* and *Reeti* towards *Mukta Kavya.* According to *Reeti* poetry it is style that defines poetry. It is the poet's intuitions and insights that constitute his style. Sanskrit Poetics recognises the inter-relation of the creative work with the personality of the creator as also with the socio-political environment, as they give primacy to the aesthetic experience in literature, and to that extent all factors are subordinate. It is imperative to be aware of the poetics that forms the aesthetic back-drop of the poet. And this poetics of the Sarojini must be sought within Indian poetics as the sub-verbal structure of experience relates the artist to his culture. This brings the writer to the orbit of social, racial, national and cultural consciousness. The idioms, images, metaphors, symbols, allusions and the tissues of experiences that constitute the world of Sarojini's work come both from her conscious and the unconscious. In the unconscious, lies in latent form the collective unconscious of her race and her conscious is the active part of what she has acquired from her times and the world. Sarojini uses striking similes, metaphors, images and rhythmic phrases in the Indian context. It would be seen that Sarojini is a supreme artist in words, imagery and patterns, and her canvas is the whole nation.

Her poetry is rich in descriptions of the beauties perceptible to the senses such as form, colour, perfume and music, sights and sounds. The experience we undergo is that of sensuousness or the *sringara.* Sarojini's "Indian Dancers" shows that when viewed from *Alankar* school's point of view, the poem is written in eight-lined stanza with a possible four-syllabic feet predominating the lines. The metre along-with the imagery and figures of speech work in a single unit creating a kind of mosaic:

> Eyes ravished with rapture, celestially panting
> what passionate bosoms aflaming with fire
> Drink deep of the hush of the hyacinth heavens
> that glimmer around them in fountains of
> light;
> And beautiful dancers with houri-like faces bewitch of
> the voluptuous watches of night. (*The Sceptred Flute* 39)

Here in this poem it results from enjoying the descriptions of the bewitching physical details of the beautiful dancers as well as their voluptuous movements. Hence the undulating movement of their eyes, bosoms, lips and limbs, the colour and glitter of their clothes and ornaments, the melody and rhythm of their songs are all devoted to the single purpose of evoking the *sringara rasa:* ''The scent of red roses and sandalwood flutter and / die in maze of their gem-tangled hair," and "Their glittering garments of purple are burning", all such images evoke the experience of beauty in the readers (Sceptred 39). In terms of its suggested meaning it is noticed that at the literal level the poem is about a group of dancers. At the deeper level it describes the vivacious movements of Kathak dance form. The sound and sense are all devoted to *rasadhvani:* "Now wantonly winding, they flash, now they fal- / ter, and, lingering, languish in radiant choir" (Sceptred 39- 40). Similarly all her poems can be studied in the light of one or all of the schools of

*Lecturer, Department of English, Government College, Kota (Raj.) INDIA

Indian Poetics.

An important aspect of Indian poetics is *alankara* or the "beautiful form" in poetry. According to the *Alankara* school of Poetics, the poem, is seen as essentially a linguistic object, which employs a certain type of language characterised by a range of constituting ornamental devices. Sarojini's poetry is of ornamentation and beautiful forms. Every image is embellished elaborately in her poetry. This shows her indebtedness to Indian poetics. She had as Sengupta said, "magical mastery of epithets"(*Naidu* 90). The numerous poetic devices used in her poetry give her poems grace and beauty. Sarojini's sensual descriptions of nature are essentially decorative and derivative: she is following the long established native tradition of *shringaarik* poetry. She is deeply stirred in the presence of natural scenes and sights.

Sarojini has recaptured the early Indian response to our natural environment as they are found reflected in the poetry of Balmiki or Kalidas. She comes very close to the kind of lyric enchantment that one finds Nature exercising over man, bird and beast in Kalidas's works. Her approach to nature is in the traditional Indian manner using the "calling and cooinq" (*The Bird of Time* 24) of various birds like koel, bulbul, peacock and dove.

Her poems on Spring are written in a conventional manner as the poets in Sanskrit and other regional poets in India had been doing. They repeated sentiments, scenes and images. The description of spring season is such that we feel and can hear: "Such exquisite anthems are ringing / Where rapturous bulbul and maina and dove / Their carols of welcome are singing" (*The Broken Wing* 47). The essence of spring is described in lovely image of Spring: "The lilt of a bulbul, the laugh of a rose, / The dance of the dew on the wings of a moonbeam" (*Bird* 39). The coming of spring is depicted beautifully: "the sumptuous peacocks are dancing / In rhythmic delight" (*Bird* 52). Highly sensuous images, vividly recreate the atmosphere of Indian Spring:

Let spring illume the western hills with blossoming brands of fire,
And wake with the rods of budded flame the valleys of the south -. (*Broken* 75)

Sarojini's description of nature in the setting of the Indian spring is fresh and accurate. Such vivid descriptions are the most memorable feature of her style. Her poetry shows India ablaze with colour and light. It is medley of colours and perfumes. She made heavy use of colour and glitter. Her poetry is imaginative and colourful commentary on multitudinous Indian life. They gave the Western readers glimpses of an India ablaze with colour and light. There is a rich texture of colour "In Bazars of Hyderabad" where the merchants are selling :

Turbans of crimson and silver,
Tunics of purple brocade,
Mirrors with panels of amber,
Daggers with handles of jade. (*Bird* 62)

There is a veritable feast of colours, vivifying images making a passionate and glittering world. The images are drawn from "rich red South / and from "the fierce, gray North" (*Feather of the Dawn* 25). As mentioned earlier, much of her poetry is written in the tradition of classical *Shringarik* poetry. The dominant school of Sanskrit aestheticians known as *rasavada* considered *shringara* to be the leading *rasa* to be evoked in poetry.

In her poetry we have an erotic and sensuous picture of the world. In fact she seeks to combine this tradition with the convention of Persian poetry. Her love poems which constitute a major part of her poetic corpus and some of which are built around Radha-Krishna legend, reveal a continuation of the *Shringarik* tradition coupled with the Urdu convention and shows glimpses of Bhakti lyricism amply illustrated in Tagore or Braj poets of Hindi. Indian poetic tradition is more evident in her love poetry. Love, *shringara,* in its many aspects is a perennial theme of lyrical poetry. Love, that is both secure and fulfilled, or thwarted and betrayed, angry and jealous, and above all love in separation are all given glowing or poignant expression in Sanskrit poetry. Kalidas' *Ritusamharam* and *Meghdutam* treat of love in its two conventional aspects, love-in-union and love-in-separation. Sarojini is best in her depiction of *vipralambha* [separation] *sringara,* rather than *samyoga [samyoga*] reminding us of *chiravirahini* like Shakuntla.

She reveals in love poetry an unconscious creative identity with her folk inheritance. It appears in the description of erotic images of the flowers in full bloom, in rustic spectacles, in love poems and in the native folk traditions with the legends of Radha and Krishna. She weaves a colourful but filmy kaleidoscope of conceit, fancy, dream, and poetic ensembles that the reader is struck by the very gloss and glitter of the love vision.

Thus we see that to her delicate fancy and enviable command of the music of words she adds her instinctive sympathy with Indian life and surroundings and as a result we have some exquisite verse that make a special appeal to the Indian mind. There is fusion of English idiom with Indian tradition.

To quote from "Yorkshire Observer" mentioned in "Some Press Opinions" in *The Broken Wing*, "Her songs are children of surprise. They break forth fresh and fragrant ... each is a finished thing and a perfect delight." Her poetry is entrenched in Indian tradition. It is manifestation of Indian sensibility. The great charm of this gifted poetess is that, though she has a perfect mastery of English language, she remains a true Indian in her thoughts and imagery. She combined exquisite fancy and her command of the music of words with her instinctive sympathy, with Indian life and surroundings, and gave us some lovely lyrics that make a special appeal to the Indian mind. Her poems portray the Indian consciousness in its inimitable lyricism reflecting the person and the individual in the poet.

References:-

1. Naidu, Sarojini. *The Golden Threshold* . London: William Heinemann, 1905. New Impression 1914.
2. *The Bird of Time: Songs of Life, Death and the Spring*. London: William Heinemann, 1912.
3. *The Broken Wing: Songs of Love, Death and Destiny. 1915- 916*. London William Heinemann, 1917.
4. *Select Poems*. Ed. H.G. Dalway Turnbull. Calcutta: Oxford University Press, 1930.
5. *The Sceptred Flute: Songs of India*. Allahbad : Kitabistan, 1943.
6. *The Feather of the Dawn.* Col. and Ed. Padmaja Naidu. Bombay: Asia Publishing House, 1961.
7. Rajyalakshmi, P.V. *The Lyric Soring: A Study of the Poetry of Saroiini Naidu.* New Delhi: Abhinav Publishers, 1977.
8. *The Temple: A Pilgrimage of Love: A Commentary*. Guntur: Maruthi Book Depot, 1976
9. Sengupta, Padmini. *Pioneer Women of India*. Bombay : Thacker, 1944.
10. *Saroiini Naidu: A Biography.* London : Asia Publishing House, 1966.
11. *Saroiini Naidu*. New Delhi: Sahitya Akademi, 1981.

****

राजस्थान में लोक सन्त परम्परा का समाज पर प्रभाव

डॉ. मन्जू गुप्ता*

प्रस्तावना – राजस्थान की संस्कृति में लोक सन्त परम्परा का महत्वपूर्ण स्थान है। हर क्षेत्र में लोक रीतियों एवं व्यवहारों के कारण लोक सन्तों की पूजा की जाती है। राजस्थान में संत परम्परा का उद्‌भव एवं विकास विशेष परिस्थितियों में हुआ। देश के साथ राजस्थान में भी मध्यकाल में जहाँ राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों ने संत परम्परा के उदय के लिए पृष्ठभूमि प्रदान की तथा संत परम्परा को गति देने व जन–जन तक पहुँचानें में नाथ पंथ की विशेष भूमिका रही। तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर–पश्चिमी राजस्थान में नाथ पंथ के साधाकों ने निर्गुण भक्ति एवं योग साधाना का प्रचार–प्रसार प्रारम्भ किया। समाज का पद्दलित वर्ग इस ओर आकर्षित हुआ। मध्यकालीन राजस्थान में अनेक रूपों में शक्ति की उपासना प्रचलित थी, जिसके प्रमाण ओसियाँ का सच्चिया माता मंदिर, चित्तौड़ का कालिका मंदिर के रूप में देखे जा सकते हैं। राजस्थान के अनेक राजवंशों ने तो शक्ति पर विश्वास कर उसे कुलदेवी के रूप में स्वीकार कर लिया था। बीकानेर राजपरिवार करणीमाता, जोधापुर नागणेची माता, सिसोदिया नरेश बाणमाता, कछवाहा राजवंश अन्नपूर्णा माता के आज भी परम भक्त हैं। राजस्थान में निर्गुण भक्ति के साथ–साथ सगुण विचारधारा का भी बोलबाला था। सगुण का अर्थ है ऐसा ईश्वर जिसमें सभी गुण सर्वोच्चता में विद्यमान हो। सगुण उपासक निम्न थे – मीरा, निम्बार्क सम्पद्राय, बल्लम सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय आदि। राजस्थान में निर्गुण एवं सगुण विचारधारा के साथ ही इस्लाम धर्म के सूफी (चिश्तियाँ) सम्प्रदाय ने भी हिन्दू एवं मुस्लिम समाज के बीच समन्वय स्थापित करने में महत्वूपर्ण भूमिका अदा की।

राजस्थान में वैष्णव धर्म का सर्वप्रथम उल्लेख द्वितीय शताब्दी ई.पू. के घौसुण्डी के लेख में मिलता है। राजस्थान में वैष्णव धर्म के प्रमाण के रूप में महाराणा कुंभा के समय में खड़िया गाँव में कृष्ण मन्दिर, चित्तौड़ तथा कुंभलगढ़ में कुंभश्याम मन्दिर, उदयपुर में जगदीश मन्दिर, नाथद्वारा का श्रीनाथजी मन्दिर, जोधपुर का घनश्यामजी मंदिर उल्लेखनीय है। नारी संत के रूप में मीरा अपने समय की कृष्ण भक्ति की अनुपम उदाहरण है। बीकानेर के पृथ्वीराज तथा जोधपुर के विजयसिंह और किशनगढ़ के नागरीदास अपने समय के कृष्ण भक्तों में प्रमुख स्थान रखते हैं। कृष्णभक्ति के साथ राम भक्ति भी राजस्थान में सम्मानित पद प्राप्त किये हुये थी। कछवाहा शासक स्वयं को ग्रघुवंशतिलकज् कहते थे।

राजस्थान में जैन धर्म वैश्यों में अधिक प्रचलित रहा है। हालांकि यहाँ के शासक जैन अनुयायी नहीं रहें, परन्तु उन्होंने इस धर्म को सहिष्णुता दृष्टि से देखा। जैसलमेर, नाडौल, आमेर, धुलेव, रणकपुर, आबू, सिरोही आदि स्थानों पर जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ एवं जैन धर्म की प्रभावना से सम्बन्धित अनेक शिलालेख उपलब्ध हैं, जो जैन धर्म की राजस्थान में होने वाली प्रगति पर प्रकाश डालते हैं। राजस्थान को जैन धर्म की सबसे बड़ी देन यह है कि इस धर्म के अनेक विद्वानों ने सहस्त्रों की संख्या में हस्तलिखित ग्रंथों को लिखा, जिनमें निहित ज्ञान हमारे लिए आज भी एक बड़ी निधि है।

इस्लाम धर्म राजस्थान में बारहवीं शताब्दी में अधिक प्रगतिशील बना। प्रसिद्ध सूफी सन्त ख्वाजा मुइनुद्दीन हसन चिश्ती, मुहम्मद गौरी के आक्रमणों के दौरान पृथ्वीराज चौहान तृतीय के शासनकाल में भारत आये थे। इन्होंने अजमेर को अपना केन्द्र बनाया था, जहाँ से इसका जालौर, नागौर, माण्डल, चित्तौड़ आदि स्थानों पर प्रसार हुआ। नागौर में प्रसिद्ध सूफी संत हमीदुद्दीन नागौरी की दरगाह है, जो अजमेर के बाद राजस्थान में इस्लाम के प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात है। सूफी संतों ने अपने चारित्रिक बल से मध्ययुगीन धार्मिक आक्रोश को कम करने में सफलता पायी। इतना ही नहीं राजस्थान के अनेक शासकों द्वारा मस्जिदों को अनुदान दिये जाने के उल्लेख मिलते हैं। अजमेर की दरगाह शरीफ को अजीतसिंह और जगतसिंह द्वारा गाँवों को भेट के रूप में दिये जाने के वर्णन मिलते हैं, जिसके परिणामस्वरूप राजस्थान में 18वीं शताब्दी तक हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य का विशेष रूप नजर नहीं आया।

राजस्थान के लोकमानस में लोक देवों के रूप में एक नयी प्रवृत्ति दिखाई देती है। यहाँ जिन लोगों ने त्याग और आत्म बलिदान से अपने देश की सेवा की अथवा नैतिक जीवन बिताया, उनको देवत्व (लोकदेवता) का स्थान देकर पूजा जाने लगा। ऐसे लोकप्रिय देवों में गोगाजी, पाबूजी, तेजाजी, देवजी, मल्लिनाथ जी प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होंने अपने आत्मोत्सर्ग के द्वारा तथा सादा और सदाचारी जीवन बिताने के कारण अमरत्व प्राप्त किया। लाखों की संख्या में ग्रामीण आज भी तेजाजी का चिह्न गले में पहनते हैं। इन विविध लोक देवों की उपासना वैसे तो अन्धा–विश्वास पर आधारित रही है और बुद्धिजीवियों की इन पर कोई श्रृद्धा नहीं रही, फिर भी इनके प्रति दृढ़–निष्ठा ने लोक मानस को सद्मार्ग पर चलने के लिए निश्चय ही प्रेरित किया है। राजस्थान के जाट परिवार में जन्में धन्ना के विचारों में रहस्यवाद और रूढ़िवाद का समन्वय देखा जा सकता हैं। ये बनारस में जाकर रामानन्द के शिष्य बन गये। इनका मानना था कि प्रेम और मनन से ईश्वर की प्राप्ति सुलभ है। पीपासर में जन्मे जाम्भोजी पँवारवंशीय राजपतू थे। ये साम्प्रदायिक संकीर्णता, कुपथाओं एवं कुरीतियों के विरोधी थे। इन्होंने समाज सुधारक की भाँति विधवा विवाह पर बल दिया। इनके सभी सिद्धान्त 29 शिक्षा के नाम से जाने जाते हैं और इनका पालन करने वाले विश्नोई नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। इनमें अधिकांश जाट हैं। विश्नोई सम्प्रदाय के कई अनुयायियों ने

*सह आचार्य (समाजशास्त्र विभाग) राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.) भारत

जीव कल्याण और पर्यावरण रक्षार्थ अपने प्राण-न्योछावर किये। बनारस में पैदा हुये रैदास चित्तौड़ आये थे तथा इनकी एक छतरी चित्तौड़गढ़ में बनी हुई है। रैदास और कबीर के सिद्धान्तों में बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। रैदास की वाणियों को चैदास की परचीज् कहते हैं।

मीरा नारी सन्तों में ईश्वर प्राप्ति में लगी रहने वाली भक्तों में प्रमुख है। यह रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थी तथा इसका जन्म कुड़की में लगभग 1498-1499 में हुआ था। मीरा का विवाह मेवाड़ के सांगा के ज्येष्ठपुत्र भोजराज के साथ हुआ था परन्तु भोजराज की शीघ्र ही मृत्यु हो जाने से मीरा पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा। मीरा के स्वतन्त्र विचार और सन्त संगति मेवाड़ राजपरिवार के लिए असह्य थे। मीरा के जीवन से कुछ कथानक जुडे हुये है जैसे, जहर पीने के लिए विवश करना, सांप से कटवाना, उसके चरित्र पर राजा द्वारा सन्देह करना इत्यादि, परन्तु कृष्णभक्ति में लगी मीरा के लिए शारीरिक यातनाएँ, वैधाव्य जीवन इत्यादि कोई महत्तव नहीं रखते थे। मीरा कहती थी 'मारो तो गिरिधर गोपाल दूजो न कोई।' मीरा की दृष्टि में समृद्धि, वैभव, संसार के सुख, उच्च पद और सम्मान मिथ्या है। यदि कोई सत्य है तो उसके गिरिधर गोपाल। मीरा की भक्ति की विशेषता यह थी कि उसमें ज्ञान पर जितना बल नहीं था उतना भावना एवं अनुभूति पर था। ऐसा प्रचलित है कि मीरा वृन्दावन में रहते हुए अथवा द्वारिका में रहते हुए 1540 के लगभग नृत्य करते-करते रणछोड़ जी की मूर्ति में लीन हो गयीं।

दादू पंथ के प्रवर्तक दादू धर्म संबंधी स्वतन्त्र विचारकों में प्रमुख सन्त हैं। उनकी मृत्यु 1605 में नारायणा (जयपुर) में हुई थी। नारायणा की गद्दी दादू पंथ की प्रधान पीठ मानी जाती है। इनके 52 शिष्य बावन स्तंभ कहलाते हैं, जिनमें सुन्दरदास, रज्जबजी प्रमुख हैं। दादू आमेर के कछवाहा शासक मानसिंह के समकालीन थे। कबीर की भाँति दादू रूढ़ियों, विविधा पूजा पद्धतियों के विरुद्ध थे। वे कहा करते थे कि ईश्वर एक है, जिसके दरबार में हिन्दू-मुसलमानों का कहि भदे भाव नहीं है। दादू की उपासना निरंजन और निर्गुण ब्रह्म की प्राधान्यता को लेकर है। दादू की सबसे बड़ी विशेषता है, प्रचार में स्थानीय भाषा का प्रयोग। उन्होंने ढूँढाड़ी भाषा को अपनाया। उनकी भाषा में गुजराती, पश्चिमी हिन्दी तथा पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है। इसी कारण हिन्दी सन्त साहित्य में दादू की च्वाणीज् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कबीर और दादू के विचारों में सुधारवादी भावना के रूप में समानता मिलती है। इसके विपरीत कबीर के कहने में उग्रता झलकती है तो दादू में विनम्रता। दादू द्वारा प्रतिपादित पंथ में प्रेम एक ऐसा धागा है जिसमें गरीब व अमीर बांधे जा सकते है तथा जिसकी एकसूत्रता विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

लालदासी सम्प्रदाय के संस्थापक संत लालदास का जन्म धोलीदूब गाँव (जिला अलवर) में हुआ था। इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मो की अच्छाइयों को अपनाकर लोगों को उपदेश दिये तथा साम्प्रदायिक समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत किया। मेव मुसलमान इनको पीर मानते हैं। ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक तथा समाज सुधारक थे। इनका निधान नगला में हुआ।

कामड़िया पंथ के संस्थापक रामदेवजी का जन्म उडूकासमेर (बाड़मेर) में हुआ था। इन्होंने समाज में छूआछूत और ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध रख हिन्दू-मुस्लिम समन्वयता के लिए प्रयास किया। इनका समाधि स्थल रामदेवरा (रूणेचा) में है, जो जैसलमेर जिले में स्थित है। इनकी स्मृतियों में आयोजित रामदेवरा मेले में हजारों लोग प्रतिवर्ष आते है। इस मेले की मुख्य विशेषता साम्प्रदायिक सद्भावना है। इस मेले में कामड़िया पंथ के लोगों द्वारा तेरहताली नृत्य किया जाता है। रामदेवजी को हिन्दू विष्णु का अवतार मुस्लिम रामशाह पीर और पीरों के पीर मानते हैं।

जसनाथी सम्प्रदाय के संस्थापक जसनाथजी का जन्म कतरियासर (बीकानेर) में हुआ था। इस सम्प्रदाय में रात्रि जागरण, अग्नि नृत्य इत्यादि प्रचलित है। संत पीपा खींची राजपूत थे। इनकी छतरी गागरोन (झालावाड़) में है। श्रीकृष्ण के निष्कलंकी अवतार के रूप में प्रतिष्ठित सन्त मावजी का जन्म मावला (डूँगरपुर) में हुआ था। इन्होंने बेणेश्वर धाम की स्थापना सोम-माही-जाखम नदियों के त्रिवेणी संगम पर की।

वर्तमान टोंक जिले के में विजयवर्गीय वैश्य परिवार में जन्मे सन्त रामचरण ने 18वीं सदी के राजनीतिक और धार्मिक ह्रास के काल में जन्म लेकर इस समय की क्षतिपूर्ति की। इन्होंने अपने विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रचलन किया, जिसकी प्रधान पीठ शाहपुरा (भीलवाड़ा) में है। उन्होंने अपने अनुयायियों को ग्राम नाम का मन्त्र देकर मानवता का सन्देश देकर तक फैलाया। ये निर्गुण उपासक थे। अत: रामस्नेही मत को मानने वाले मूर्ति पूजा नहीं करते। इस पंथ में नैतिक आचरण, गुरु महिमा, सत्यनिष्ठा, धार्मिक अनुशासन पर बल दिया जाता है।

धर्म की रूढ़िवादिता और सामाजिक कुरीतियाँ के विरूद्ध उत्तरी भारत में रामानंद, कबीर, रैदास, नानक आदि संतों ने अपनी शिक्षाओं द्वारा जो सुधारवादी आंदोलन शुरू किया, उन्हीं से प्रेरणा लेकर राजस्थान में भी धन्नाजी एवं पीपाजी ने धार्मिक क्षेत्र में निर्गुण विचारधारा को जन्म दिया। धन्नाजी, पीपाजी, जाम्भोजी, जसनाथजी, संत दादू, लालदास, चरणदास एवं राम स्नेही सम्प्रदाय के आचार्यो ने धर्म के आडम्बरों यथा व्रत, तप, उपवास, पूजा-पाठ, मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा करना, संयास लेना, जाति व्यवस्था आदि का विरोध किया और मानव की समानता तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता का प्रचार करते हुए मानव समाज को सहज जिज्ञासा और ध्यान के द्वारा उसकी उपासना करने तथा अन्तर्मुखी होकर नाम स्मरण मार्ग पर चलने का उपदेश दिया।

राजस्थान की संत-संस्कृति का सर्वाधिक उर्वर क्षेत्र परम्परागत सामाजिक-व्यवस्था में सुधार का प्रयास था। व्यक्ति को समाज का आधार मानकर उसके जीवन के नैतिक मानकों की पुन: प्रतिष्ठा इस संस्कृति की श्रेष्ठ उपलब्धियाँ थीं। संत-गणों ने अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर जाति एवं वर्णगत सामाजिक भेद-भाव के उन्मूलनार्थ धार्मिक मत-मतान्तरों और विविध सम्प्रदायों की अनावश्यकता और निस्सारता प्रमाणित करने का प्रयास किया। उन्होंने 'दूई जगदीश कहा ते आया' जैसे सारगर्भित प्रश्न उठाए और लोगों में तत्सम्बन्धी सहज जिज्ञासा की प्रवृत्ति जागृत की। धार्मिक समन्वय और गुणग्राहिता के पक्षपाती इन संतों ने हिन्दू और इस्लाम धार्मों के बीच किसी भी प्रकार के तात्विक भेद को न करने का प्रयास किया। **'राम'** और **'रहीम'** की आराधना समान रूप से व्यक्ति जीवन का लक्ष्य माना। उन्होंने विविध आराधना पद्धतियों को उस चरम सत्य को प्राप्त करने का मार्ग बताया। धार्मिक भेद-भाव और उससे उत्पन्न सामाजिक असंतुलन तथा तनाव को हेय घोषित किया। संतों ने मानव-मानव के बीच किसी भी मानव-निर्मित दीवार को भ्रम माना और उसे मानव-जीवन के लिए हानिकारक और अनुचित सिद्ध किया। संतों तथा वीर पुरुषों द्वारा साधानात्मक एवं व्यावहारिक समन्वय हेतु किए गए भावनापूर्वक प्रयासों ने विभिन्न धार्मो के अनुयायियों को एक-दूसरे की मान्यताओं एवं विश्वासों के प्रति सहिष्णुता, सौहार्द एवं यथार्थ युक्त दृष्टिकोण से विचार करने हेतु प्रवृत्त किया। उनमें

अपने सिद्धान्तोपदेशों के प्रति आस्था जगाकर उन्हें समान विचारधारा वाला समूह बनाते हुए भी परस्पर निकट लाने में विनम्र भूमिका निभाई।

निष्कर्षत: मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन और लोक विश्वासों ने राजस्थानी समाज में न्यूनाधिाक नवजागरण की अलख जगाई। इस काल की धार्मिक सांस्कृतिक गतिविधियाँ ने सभी हिन्दू और दलित जाति को एक वर्ग मानकर, पंथों की सीमाएँ बनायी, जिससे विधर्मी होने के अवसर कम हो गये और भारतीय जनता एक सूत्र में बंधी रह गई। यहाँ तक कि कई पंथों ने तो हिन्दू-मुसलमानों के भेदभाव को अस्वीकृत कर चेतना के स्वर को नव आयाम प्रदान किया। कुल मिलाकर यह युग न केवल राजस्थान की संस्कृति का उज्ज्वल युग है अपितु सांझी संस्कृति का परिचायक भी है, जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दाधीच रामप्रसाद, राजस्थानी संत संप्रदाय, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1995
2. आहूजा डी.आर., राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2011
3. पेमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन, अर्चना प्रकाशन, अजमेर, 1977
4. शर्मा गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010
5. गहलोत महावीर सिंह, राजस्थान के पांच लोक देवता, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1993
6. चन्द्रमणि सिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान पत्रिका, प्रकाशन, 2000
7. जयसिंह नीरज, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परायें, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003

****

जन संचार साधन एवं जनजातीय समाज

डॉ. सुनीता शर्मा *

प्रस्तावना – विकास मानव समाज की श्रेष्ठतम विशेषता है। विकास का प्रभाव समाज के सभी क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से पड़ता है। परम्परागत व्यवसाय के स्थान पर जिस दिन यांत्रिक व्यवस्था ने स्थान बनाया वो उसी दिन निश्चित हो गया कि मशीन ही व्यवस्था का मूल अंग होगी। यांत्रिक विकास का प्रभाव मानव सभ्यताके सभी आयामों पर पड़ा। संचार प्रक्रिया भी उससे अपने को अलग नहीं रख सकी। मशीन युग ने संचार के यंत्रों को विकसित किया।

जनसंचार आधुनिकीकरण के एजेन्ट की भाँति है। नये विचार राजनीतिक ज्ञान एवं मूल्यों के अनुकरण में संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण योगदान है। जनसंचार माध्यम प्रभावी ढंग से राजनीतिक ज्ञान सरकार, नेतृत्व में जुड़े रहते हैं। भारत में स्वतन्त्रता के समय से सामाजिक एवं राजनीतिक स्वरूप का परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण हुआ है। राजनीति में जन भागीदारी एवं समूह के हितों का स्वरूपीकरण प्राचीन संस्थाओं जैसे जाति संघ इत्यादि के स्थान पर हुआ है।

मीडिया लोगों के विचारों मनोवृतियों एवं आकांक्षाओं में परिवर्तन के सम्बन्ध में एक शक्तिशाली उपकरण है। जनसंचार साधनों में टेलीविजन ने व्यक्तिगत जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। जनसंचार माध्यमों के कारण खान–पान, रहन–सहन, व्यक्तिगत आदतों, परिवार के सामाजिक स्तर एवं सामाजिक संबंधों में अन्त:क्रिया आदि तथ्यों में टेलीविजन की भूमिका को देखा गया है।

विल्बर्ट श्रेम ने मीडिया को सामाजिक परिवर्तन के अभिकरण के रूप में स्पष्ट किया है और कहा है कि मीडिया में परिवर्तन लाने की चमत्कारिक शक्ति है। मीडिया परम्पराओं, व्यवहारों और विश्वासों में महत्वपूर्ण परिवर्तन करता है।

परिवर्तन एक अवश्यमभावी सार्वभौमिक घटना है। सामाजिक विकास के लिये परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है। मूरे ने सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि प्रत्येक समाज में अथवा संस्कृति में परिवर्तन नियमित रूप से और बार–बार होते रहते हैं। परिवर्तन के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार के परिणाम हो सकते है तथा कोई सामान्य–सा परिवर्तन भी व्यक्तिगत जीवन व समाज के व्यापक क्षेत्रों को प्रभावित कर सकता है।

प्रचार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने के लिये प्रेरित करता है। प्रचार जनमत निर्माण में सबसे शक्तिशाली साधन के रूप में कार्य करता है। प्रचार के क्षेत्र में जनसंचार के साधन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

वर्तमान युग में हम एक नवीन वैश्विक समाज में जी रहे है। सूचना प्रौद्योगिकी के चलते सम्पूर्ण विश्व एक गाँव की शक्ल में बदल गया है। यह सब सूचना प्रौद्योगिकी और जनसंचार के उन्नत साधनों के सहयोग से सम्भव हो पाया है। जहाँ विश्व में किसी एक स्थान पर घटने वाली प्रत्येक घटना का कुछ ही क्षणों में प्रिन्ट मीडिया व इलेक्ट्रोनिक मीडिया के द्वारा संचार के सभी स्थान पर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

भारतीय जनजातियाँ अपनी विलक्षण विविधता के कारण विश्व के सभी समाजों से पृथक अपनी पहचान रखती हैं, आधुनिक समाज हो या जनजातीय समाज, इनमें परिवर्तन लाने में जनसंचार माध्यम प्रभावशाली एवं सशक्त अभिकरण हैं। जनसंचार के लोगों के दृष्टिकोण, व्यवहार और मनोवृत्ति को नई दृष्टि मिली है।

जन संचार एवं जनजातीय समाज – आधुनिकीकरण के परिणाम स्वरूप संचार साधनों, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और शिक्षा विकास में बहुत कुछ वृद्धि हुई है। इस प्रक्रिया का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव जनजातियों पर भी पड़ा है। यदि राज्य तथा स्वयं सेवी संस्थाओं के कार्यक्रम योजनाबद्ध तरीके से सामाजिक परितर्वन लाने में सहायक है, तो आधुनिकीकरण की ये प्रक्रियाएँ किसी न किसी रूप में जनजातियों में सामाजिक परिवर्तन का कार्य अवश्य कर रही है।

संचार साधनों के साधन विभिन्न समूहों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास करते है। सम्पूर्ण देश में आकाशवाणी के अनेक प्रसार केन्द्र हैं, जो देश की सभी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक तथा भाषायी क्षेत्रों को सम्मिलित करते है। आकाशवाणी अनेक जनजातीय बोलियों में प्रसार करता है। इस प्रसार का उद्देश्य जनजातीय संगीत और संस्कृतिक को विभिन्न समूहों में निकट लाना है। समाचार पत्र और फिल्म भी संचार का बहुत बड़ा साधन है। इन साधनों को भी जनजातीय जीवन को प्रभावित करने वाली सामाजिक शक्तियों के रूप में देखा जा सकता है।

आज शिक्षा और जनसंचार से उत्पन्न जागरूकता ने जनजातीय लोगों के विचार धारणाएँ एवं अभिवृत्ति में मौलिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समाज का अस्तित्व संस्कृति के हस्तानान्तरण पर निर्भर रहता हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पीढ़ी को संस्कृति सिखायी जाये ताकि परम्पराएँ जिन्दा रह सके। परम्पराओं को जीवित रखने में शिक्षा की अहम भूमिका है।

भारत जैसे देश में जनसंचार के साधनों का मुख्य कार्य अपने आसपास की परिस्थितियों को बूझना, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों को उजागर करना और मूल्यों की उस राष्ट्रीय व्यवस्था को प्रस्तुत करना है, जो हमने स्थापित की है। जनसंचार के साधनों से राष्ट्रीय लक्ष्यों की उपलब्धि

* व्याख्याता (समाजशास्त्र) राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

और विकास प्राप्ति अपेक्षित है।

सरकार, स्वयं सेवी संस्थाओं और जनसंचार साधनों ने जनजातीय विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जनसंचार के माध्यमों द्वारा व्यापक सामाजिक परिवर्तन सम्भव है। सामाजिक परिवर्तन के लिये जनसंचार और उससे पैदा हुई जनजागृति की निर्णायक भूमिका रही हैं। जनसंचार साधनों के कारण जनजातीय समाज में जागरूकता और जिज्ञासा बढ़ी है। लोग नई-नई बातें जानना और जो ठीक हैं, उन्हें स्वीकार करना चाहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Keval J. Kumar (2000)- Mass Communication in India, Jaico Publishing House, Mumbai
2. Yogendra Singh - Social Change in India Crisis and Resilience (1993) Har-Anand Publications, New Delhi
3. S.L. Doshi, N.N. Vyas - Tribal Rajasthan: Sunshine of the Aravali
4. रविन्द्र नाथ मुखर्जी-सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा (1993) विवेक प्रकाशन, दिल्ली
5. डॉ. शम्भू लाल दोषी (1992) विवेचनात्मक सामाजिक मानवशास्त्र, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर
6. राम आहूजा - भारतीय समाज (2002) रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

****

Levels Of Demographic Development In Western Rajasthan (A comparative study from 1981 to 2001)

Dr. B.L.Jat *

Introduction of Study area - The study area (western Rajasthan) is a dry and sandy plain. This part of India liesalong western side of Arawali hills in Rajasthan. According to geologists this part of Rajasthan was an extended part of sea. This situation of the study area prevailed during the Eocene and Pleistocene period. The geographical area of western Rajasthan is about 2,05,076 sq. k.m. Extension of the study area from north to south and east to west are 640 km. and 300 k.m. respectively. It includes 12 districts of Rajasthan. (Sriganganagar, Hanumangarh, Jhunjhunu, Sikar, Bikaner, Ghuru, Barmer, Jaisalmer, Jodhpur, Nagaur, Pali and Jalore.) The study area is consist of 84 tehsils according to 2001 census.

Methodology - The present research work, "Population, Resources and Development in Western Rajasthan" has been completed in various stages. The study includes the basic steps of theoretical study of related literature, collection of data, facts and figures, classification of data, preparation of tables, maps, diagrams, and analysis, interpretation of data and report writing. The Tehsils of the Study area are grouped into 4 Geo-Politico economic regions.

Demographic Indicators of Development - Population, in its various aspects, has two-fold relevance to development: it is an integral part of the resource base of the region and in itself, at least partly, an outcome of development. Development can never be thought independent of man, his capabilities and his aspirations.

The inter-relation between man and development is not a static one. It is a dynamic relationship both in temporal and spatial perspectives. The changing numbers and characteristics of population through time, and the spatial variations therein, are vital to the whole process of socio economic advancement.

Population characteristics of an area are undisputedly a manifest expression ofthe level of development. Usually fertility and mortality rates of population are used as indicators of demographic development.

For this study the following 22 indicators from Census data 2001 are considered essential for levels of demographic development. These indicators are related to

Demographic Indicators of Development - Population, in its various aspects, has two-fold relevance to development: it is an integral part of the resource base of the region and in itself, at least partly, an outcome of development. Development can never be thought independent of man, his capabilities and his aspirations.

The inter-relation between man and development is not a static one. It is a dynamic relationship both in temporal and spatial perspectives. The changing numbers and characteristics of population through time, and the spatial variations therein, are vital to the whole process of socio economic advancement.

Population characteristics of an area are undisputedly a manifest expression of the level of development. Usually fertility and mortality rates of population are used as indicators of demographic development.

But for this study the following 22 indicators from Census data 2001 are considered essential for levels of demographicdevelopment.

1. Growth rate
2. Density of population
3. Urbanization and sex ratio
4. Literacy
5. Workforce

Growth Rate of population

Growth rate overall – In 1981 cencus Western Rajasthan had registered a phenomenal increase of 38.54% over 1971 population. Despite this steep rise in population, the area still retains its sparsely populated character,The standard deviations of growth rate in 1971-81 was17.91 and co-efficient of variation was 46.48% in the entire region. The highest growth rate of 154.07% was observed in Anupgarh tehsil and the lowest was in Karanpur tehsil 20.12%, both lies in the Canal region. In the census of 2001, the Western Rajasthanincreases of 29.30% over 1991 population. The standard deviation of growth rate between 1991-01 is 9.89 and co-efficient of variation is 33.78% in the entire region. The highest growth rate of 57.56% was observed in Gharsana tehsil and the lowest in Karanpur tehsil 12.10%, both lie in the Canal region.

Growth rate 1991-01 is grouped in four groups viz. top quartile, upper quartile, middle quartile and bottom quartile. Top quartile ranges from 33.96 to 57.56% growth rate in 22 tehsils out of which, 72.73% tehsils are located in Dry desert

*Lecturer (Geography) S P N K S Govt. College, Dausa (Raj.) INDIA

region, 22.73% tehsils in the Canal region, 4.55% in the seasonal river belt, where as Grey-brown soil belt does not have any tehsil of top quartile. The upper quartile ranges from 26.84 to 33.96% in 21 tehsils out of which, 38.10 tehsils are located in Seasonal river belt, 33.33% in Grey-brown soil region, 28.57% in Canal region and 4.76% tehsils in Dry desert region of upper quartile. The middle quartile ranges from 25.17 to 29.84% growth rate in 21 tehsils out of which, 42.86 tehsils are located in the seasonal river belt, 33.33% in the Grey-brown soil region, 14.29% in the Dry desert region, where as Canal region has 9.52 tehsil of middle quartile. The bottom quartile ranges below 25.17% of growth rate of population 1991-01 in 22 tehsils, out of which, 36.36 tehsils are located in Canal region, 18.18% tehsils in each Dry desert region and Seasonal river belt, while the Grey-brown soil region has 27.27% tehsils of bottom quartile.

A comparative study between the growth rate in 1971-81 and 1991-01 shows that in 2001 Western Rajasthan had -12.21% less growth rates as compared to 1981. The highest positive change 8.52% was observed in Nawa tehsil and the lowest was -120% in Vijaynagar. The comparison of growth rate between 1981 and 2001 is grouped in four groups viz. top quartile, upper quartile, middle quartile and bottom quartile. Top quartile ranges from -3.44 to 8.52% change in 22 tehsils, out of which, 45.45% tehsils are located in Dry desert region, 36.36% tehsils in Grey-brown soil belt and 9.09% in each Canal region and seasonal river belt. The upper quartile ranges from -7.85 to -3.44% in 21 tehsils, out of which, 45.45 tehsils are located in Seasonal river belt, 25% in Grey-brown soil region, 17.39% in Dry desert region and 9.52% tehsils in Canal region ofupper quartile. The middle quartile ranges from -14.52 to -7.85% changes in growth rate in 19 tehsils out of which, 27.27% tehsils are located in seasonal river belt, 25% in Grey-brown soil region, 21.74% in Dry desert region, where as Canel region has 14.29% tehsil of middle quartile. The bottom quartile ranges below -14.52% of change in growth rate of population in 24 tehsils, out of which, 66.67 tehsils are located in Canal region, 17.39% tehsils are in the Dry desert region, 17.39% tehsils in Seasonal river belt, while Grey-brown soil region has 10% tehsils of bottom quartile.

Density of Population

Density of population combined - Despite high growth rate the region by and large, still remains a sparsely populated region. In 1981 the density of population in the area was 56 persons/sq.km. which was quite low as compared to the State average of 100 and National average of 220 persons/sq.km. The highest density of population in the region is 282 persons/sq.km in Sriganganagar tehsil and the lowest in Jaisalmer tehsil, 4 persons/sq.km. The mean of all tehsil wise density is 102 with S.D. 5.9 and coefficient of variation 58.0 S%.

In 2001 the density of population in the Western Rajasthan is 102 persons/sq.km. which is quite low as compared to the State average of 165 and National average of 324 persons/sq.km. The highest density of population in the region is 619 persons/sq.km in Jodhpur tehsil and the lowest 9 persons/sq.km in Jaisalmer tehsil. Density of population is grouped in four categories viz. top quartile, upper quartile, middle quartile and bottom quartile. Top quartile ranges from 190 to 619 persons/sq.km. in 22 tehsils out of which, 68.18% tehsils are located in Grey-brown soil belt, 22.73% tehsils in Canal region, 9.09% in Seasonal river belt while Dry desert region do not have any tehsil of top quartile. The upper quartile ranges from 147 to 190 persons/sq.km. in 21 tehsils, out of which, 42.86% tehsils are located in Seasonal river belt, 33.33% in Canal region, 14.29% in Grey-brown soil region and 9.52% in Dry desert region of upper quartile. The middle quartile ranges from 95 to 147 persons/sq.km. density of population in 22 tehsils, out of which, 42.86 tehsils are located in Seasonal river belt, 28.57% in Dry desert region, 19.05% in Canal region and 9.52% in Seasonal river belt of middle quartile. The bottom quartile ranges below 95 persons/sq.km. density of population in 22 tehsils, out of which, 68.18 tehsils are located in Dry desert region, 22.73% in Canal region and 9.09% in Seasonal river belt, while Grey-brown soil region do not have any tehsil of bottom quartile of density of population.

The change in the density of population in the Western Rajasthan between 1981 and 2001 is calculated. The average change in density of population shows that 62 persons/sq.km. increased as compared to 1981 density of population, while the highest increase in density of population is 257 persons/sq.km in Jodhpur tehsil and the lowest increase in density of population is 5 persons/sq.km in Jaisalmer tehsil.

Sex-Ratio - Western Rajasthan shares a general trend of sex ratio being adverse to women prevailing in other parts of the country. In 1981 Jaisalmer tehsil the leastpopulated tehsil had recorded the lowest sex ratio of 791 and the highest was 1023 in Fatehpur tehsil of Sikar district. The sex-ratio over the entire region was 925, while standard deviation and C.V were 47 and 5 respectively. In 2001 again the lowest sex ratio 775 is observed in Jaisalmer tehsil,while Desuri tehsil has the highest 1036 sex ratio. The sex-ratio over the entire region is 925.Sex ratio is grouped in four categories viz. top quartile, upper quartile, middle quartile and bottom quartile.Top quartile ranges from 959 to 1036 females/1000males in 22 tehsils, out of which, 59.09% tehsils are located in Seasonal river belt, 31.82% in Grey-brown soil belt and 9.09 in Dry desert region, while Canal region does not have any tehsil of top quartile. The upper quartile ranges from 930 to 959 females/1000males in 20 tehsils, out of which, 45% tehsils are located in each Grey-brown soil region, 30% in Dry desert region, 25% in Seasonal river belt and Canal region does not have any tehsil of upper quartile. The middle quartile ranges from 895 to 930 females/1000males in 21 tehsils, out of which, 33.33% tehsils are located in each Canal region and Dry desert region, .19.05% in Grey-brown soil belt and 14.29% Seasonal, river belt. The bottom quartile ranges below 895 females/1000males in 23 tehsils, out of which, 60.87% tehsils are located in Canal

region, 34.78% in Dry desert region and 4.35% in Seasonal River belt, while Grey-brown soil does not have any tehsil of bottom quartile of sex ratio.

Regional pattern of sex ratio in Western Rajasthan shows that the Seasonal river belt is on top having an average of 961 females/1000males followed by 950 in Grey-brown soil region and 903 in Dry desert region, while 885 in Canal region at bottom. The highest sex ratio of Canal region is 917 females/1000males and the lowest is 840 females/1000males. The highest sex ratio of Dry desert region is 966 females/1000males and the lowest is 775 females/1000males, in Grey-brown soil belt the highest is 980 females/1000males and the lowest is 920 females/1000males, while Seasonal river belt has the highest 1036 females/1000males and the lowest 881 females/1000males.

The highest sex ratio in Western Rajasthan is located in Seasonal river belt and the lowest is in Dry desert region. It is evident from above data that Seasonal river belt has more females in comparison to males.

The change in sex ratio of Western Rajasthan between 1981 and 2001 is calculated. The average change in sex ratio shows that 4 females/1000males increased as compared to 1981 sex ratio, while the highest increase is 65 females/1000males in Desuri tehsil and the highest decrease is -51 in Badmer tehsil. Standard deviation and coefficient of variation of Western Rajasthan are 26 and 683 respectively. Regional pattern of change in rural urban of population between 1981 and 2001 in Western Rajasthan shows that Grey-brown soil belt is on top having average 31 females/1000males increased as compared to 1981 sex ratio, followed by 27 in Dry desert region, 24 Canal region and Seasonal river belt at the bottom with 22 females/1000males increase in sex ratio. The highest positive change 41 females/1000males of Western Rajasthan is located in Dry desert region and the highest negative change is -12 in canal region. It is evident from above data that number of females increased in Grey-brown soil belt and Dry desert region in 2001 as compared to 1981 sex ratio.

Literacy

Literacy total - Among the various indicators of population's quality, achievements in the sphere of literacy are the most important in the context of developing areas (Gosal and Gopal Krishan, 198'1). It has been observed that a literate person makes himself a more productive laborer in a factory, a more progressive farmer; keen to use new innovations and technology in farm operations, an enlightened trader and an enterprising individual showing adjustability and sociality. In 1981 average literacy of western Rajasthan was 24.49% with 35.48% deviation and 139.32%, variability. The highest literacy was observed in Jodhpur tehsil (41.24%) and the lowest in Chohtan tehsil of Barmer district (6.67%). In 2001 average literacy of Western Rajasthan raised and become 47.21% having 8.86% S.D and 18.76 C.V. The highest literacy 64.03% is observed in Buhana tehsil and the lowest 28.38 in Poongal tehsil.

It is grouped in four categories viz. top quartile, upper quartile, middle quartile and bottom quartile. Top quartile ranges from 54.40 to 64.03% in 22 tehsils, out of which, 54.55% tehsils are located in Grey-brown soil belt, 27.27% in Canal region, 13.64% in Dry desert region and 4.55% in Seasonal river belt. The upper quartile ranges from 47.14 to 54.40% in 21 tehsils, out of which, 47.62% tehsils are located in Canal region, 28.57% in Dry desert region, 19.05% in Grey-brown soil region and 4.76% in Seasonal river belt. The middle quartile ranges from 40.25 to 47.14% literacy in 21 tehsils, out of which, 47.62% tehsils are located in Seasonal river belt and 9.52% in Canal region. The bottom quartile ranges below 40.25% literacy in 22 tehsils, out of which, 45.45% tehsils are located in Seasonal River belt, 40.91% in Dry desert region and 13.64% in Canal region, while Grey-brown soil belt does not have any tehsil of bottom quartile of literacy.

Regional pattern of literacy in Western Rajasthan shows that Grey-brown soil belt is on top having an average of 54.37% literacy followed by 49.39% in Canal region, 44.16% in Dry desert region and 41.80% in Seasonal river belt at the bottom. The highest literacy of Canal region is 61.31% and the lowest is 28.28%. The highest literacy of Dry desert region is 59.26% and the lowest is 31.53%, in Grey-brown soil belt the highest is 64.03% and the lowest is 40.80%, while Seasonal river belt has the highest 60.66 and the lowest 31.13%. The highest literacy in Western Rajasthan is located in Grey-brown soil belt and the lowest is in Canal region. It is evident from above data that Grey-brown soil belt has the highest literacy.

The change in literacy of Western Rajasthan between 1981 and 2001 is calculated/The average change in literacy shows that 25.86% increase in literacy is observed as compared to 1981 literacy, while the highest increase is 40.84% in Taranagar tehsil and the highest decrease is -11.60 in Poongal tehsil. Standard deviation and coefficient of variation of Western Rajasthan are 7.97 and 30.82% respectively. Regional pattern of change in literacy between 1981 and 2001 in Western Rajasthan shows that Grey-brown soil belt is on top having average 30.58% increase in literacy as compared to 1981 literacy, followed by 27.86 in Dry desert region, 23.68% in Canal region and Seasonal river belt at the bottom with 21.56% increase in literacy. The highest change 40.84% of Western Rajasthan is located in Dry desert region and the highest negative change is -11.55% in canal region. It is evident from above data that literacy increased in Grey-brown soil belt and Dry desert region in 2001 as compared to 1981.

Male and female literacy - The average male literacy of Western Rajasthan is 58.95%, while female literacy is 34.51% only. The highest male and female literacy are 73.55 and 53.96% respectively and both are in Buhana Tehsil. The lowest male literacy 39.50% is located in Poongal tehsil and the lowest female literacy 14.99% in Shergarh tehsil. Regional pattern of male literacy in the Western Rajasthan shows that Grey-brown soil belt is on top having average 65.91% male literacy followed by 59.11 in Canal region,

55.8% both in Dry desert region and Seasonal river belt.

Main Workers and Marginal Workers (Male and Female) - In the working population male workers continue to predominate. In western Rajasthan, the proportion of male main workers is 43.77% which is higher than the National and State average. Obviously, the female worker's proportion is much lower, being only a little less than 16.81% as per 2001 census. It is not surprising that among the total male population of the region one third female population is a part of mainstream of the working population. The distribution of main workers shows that Sadulshahar ranks first in male and Sanchore in female main workers 52.79% and 40.45% respectively. The lowest male main workers are 34.02% in Shergarh and female are 3.68% in Churu.

Regional pattern of male main workers in Western Rajasthan shows that Canal region is on top having an average of 48.31% followed by 43.71 in Seasonal river belt, 43.16% in Dry desert region and 39.79% in Grey-brown soil belt at the bottom. In female main workers Seasonal river belt is on top having average 18.93% followed by 18.19% in Dry desert region and 15.89% in Grey-brown soil belt and 13.97% in Canal region at the bottom.

The distribution of marginal male workers shows that the highest%age is in Sanchore (18.02%) and the lowest in Raniwara (2.48%). The female marginal workers distribution is the highest in Lachhmangarh (33.45%) and the lowest is in Jodhpur (4.22%). The standard deviation and the coefficient of variation are 2.8% and 44.05% respectively for male, while 5.92% and 33.56% respectively for female. The average ratio of male and female marginal worker in Western Rajasthan is 6.35% and 17.63% respectively. In the marginal working population female workers continue to predominate. Regional pattern of male marginal workers in Western Rajasthan shows that Grey-brown soil belt is on top having average 18.93% followed by 18.19 in Dry desert region, 43.16% in Grey-brown soil belt and 13.97% in Canal region at the bottom. In female marginal workers Dry desert region is on top having average 19.89% followed by 17.57% in Seasonal river belt and 17.05% in Grey-brown soil belt and 15.75% in Canal region at the bottom.

Conclusions and Findings :

1. A comparative study of the rural growth rate between 1971-81 and 1991-01shows that in 2001 Western Rajasthan had -7.43% less rural growthrates as compared to 1981.
2. Important features in 2001 there were in all 99 urban centers as against 90 of1981 that show the addition of 9 more urban centers. But still, out of 86 tehsilsin Western Rajasthan, 26 do not have any urban centers including the tehsilheadquarters.
3. The highest sex ratio in Western Rajasthan is located inSeasonal river beltand the lowest is in Dry desert region. The Seasonal river belt has morefemales in comparison to males.
4. The highest literacy in Western Rajasthan is located in Grey-brown soil beltand the lowest is in Canal region. The Grey-brown soil belt has the highestliteracy.
5. In the working population male workers continue to predominate. In westernRajasthan, the proportion of male main workers is 43.77% and thefemale worker's proportion is much lower, being only a little less than 16.81% as per 2001 census.
6. The level of demographic developments is highly co related with 99% level ofsignificance with literacy, urbanization, densityof population, density ofbuffaloes, rural population served by post and telegram facility, ruralpopulation served by power supply facility, villages having power supplyfacility, female other workers, female household workers, net sown area in theregion.

References :-

1. Clark, J.I.:Population Geography, Oxford Pergamon press1984
2. Mitra, A &Pata-k, C.P.:The Status of Wome : Shifts in Occupational Participation 1961-71 (ICSSR, 1980)
3. Census of India:Economic and Socio-Cultural Dimension of 1381 & 2001 Regionalization - Monograph No.7, Office of The Registrar General of India, New Delhi, 1971& 1981.
4. Coilin, Clark :The conditions of Economic Progress Mac Millian, London, 1967
5. Gosal, G.S. & : Regional Disparities In the Levelof Socio-Economic
6. Gopal Krishnan Development in Punjab. Vishal Publications, Kurukshetra, 1984.
7. Sharria. J.R. : Population Resources & Development in Rajasthan Ph.D. Thesis.
8. Krishnamurthy J.: Working force in 1971 Census. Economic and Political weekly. Vol. V No.3 January 1975
9. Bogue :Principals of Demography Prentice Hall 2005.

****

राजस्थानी एवं अवधी के जन्म से यज्ञोपवीत तक के लोकगीतों का तुलनात्मक विवेचन

डॉ. विनीता कौशिक*

प्रस्तावना – 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। सामन्यजन की अवधारणा के रूप में अनेक स्थानों पर ऋग्वेद में इसका प्रयोग हुआ है। वहाँ 'लोक' और 'जन' समानार्थी भाव के घोतक हैं।[1] लोक शब्द लोकृदर्शने धातु में धञ् प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न है।[2] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक शब्द की व्यापक व्याख्या की है। उनका कहना है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।[3]

लोक गीत ग्राम्य संस्कृति के संवाहक है। जीवनपर्यन्त, नवरस, प्रकृति चित्रण, सामाजिक सरोकार, ताल, लय, आरोह, अवरोह, वाद्य यन्त्र सभी कुछ लोक सृजित होकर लोक गंगा में अबाध गति से पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित होते रहते हैं।

श्री गुलाबराय लोक गीतों को लोक भावना की अभिव्यक्ति मानते हैं।[4] देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है कि लोक गीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र हैं।[5] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्राम गीतों को आर्येतर सभ्यता के वेद मानते हैं।[6]

'लोक' सर्वत्र एक सी ही मानसिकता, एक सी ही भावगम्यता लिये ही होता है, भौगोलिक तथा भाषा–बोली की दृष्टि से खान–पान, रहन–सहन, तीज, त्यौहार, व्रत, कथाएँ, लहजा आदि में अवश्य ही परिवर्तन दिखाई देता है। मनोभाव सर्वत्र एक ही रहते है।

प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थानी व अवधी दोनों ही बोलियों के, जन्म से लेकर यज्ञोपवीत संस्कार के लोक–गीतों का संग्रह कर एक ही भाव भूमि को देखने का प्रयास किया गया है। निश्चय ही लोकगीत जनमानस में प्रवाहित होने वाली ऐसी विधा हैं जिसमें परिवार तथा समाज के सभी रिश्ते, जन्म से लेकर–बाल्यकाल, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के समय के भाव के साथ ही त्यौहार व उत्सवों के गीत, ऋतुओं के गीत, प्रेम, प्रकृति के गीत, पशु–पक्षियों के नामोल्लेख के साथ प्रतीक गीत आदि हैं। इसकी दृष्टि से भी लोक गीत नव श्रृंगार से भरा है। अभिव्यक्ति पक्ष भौगोलिक स्तर पर परम्परागत निर्वहन के साथ बोली के रूप में अवश्य बदलता है लेकिन लोकभाव, लोक मानस, लोक गंगा के मंजुल तट हैं।

लोक गीतों के अवधी तथा राजस्थानी दोनों में भाव साम्यता की दृष्टि से जन्म के पूर्व के मनोभावों से लेकर यज्ञोपवीत तक के गीतों को लेकर समझने का प्रयास किया गया है।

संतान की मनोकामना को लेकर देखें तो राजस्थान में नारी जीवन की सार्थकता मातृ–शक्ति प्राप्त करने में है अन्यथा 'बाँझ' का कोई मुँह नहीं देखना चाहता। यह उस स्त्री के लिए गाली ही समझी जाती है, वहीं अवधी में भी 'सोहर' गीतों के अनेक विषय हैं जिसमें पुत्र कामना, बन्ध्यापन से निराश स्त्री का आत्महत्या का प्रयास, गंगा मैया से बालक की मनोकामना, ननद–भाभी के संबंध, छठी पूजन, नेग गीत, बधाई गीत आदि है।

राजस्थान में बाँझ स्त्री–बैमाता देवी, सूर्य, भैरव, सूर्य पत्नी राणकदे से प्रार्थना करती है। उदाहरणार्थ –

छींका तौ पड़ियौ अे माता चूरमौ अे,
ठणकै सिरांवण मांगण वालौ नहीं अे माता राणकदे।
म्हांनै मांणस क्यांनै सिरज्या ?

एक गहरी पीड़ा की अभिव्यक्ति है इस गीत में। स्त्री कहती है बालक के खाने हेतु चूरमा बनाना हमारे वश में है। हमने चूरमा बना दिया, लेकिन हे ! रणकदे माँ कोई चूरमा माँगने वाला तो हो। अपने ईष्ट के प्रति खीज कर कहती है कि हमें मनुष्य हीं क्यों बनाया ?

अवधी में देखें –

गंगा ! गहवरि पिअरी–चढ़उबे होरिल जब होइहैं हो।

गीत की पंक्ति में बांझ स्त्री गंगा से विनती करती है कि उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाएगी तो वह गंगा को पियरी चढ़ावेगी। राजस्थान में सूर्य पत्नी की आराधना है क्योंकि नदियाँ नहीं है और अवधी में गंगा माँ की ही मान्यता सर्वोपरि है।

अवधी के सोहर गीतों में बांझ स्त्री की भावनाओं का बहुत ही कारूणिक और मनोवैज्ञानिक चित्र चित्रित किया गया है –

लीपी पोती 'ओबरिया' (कोठरी) जगर मगर करे,
सखियां बिन रे सन्तति घर सून त मैं केहि का जगायैं।
नोनवा (नमक) तो मिले उधरवा और रानी तेलवा,
रानी कोखियां (गोद) क कौन उधार चहत नाहीं पावें।
बढ़ई गढ़ि लावौ काठ के पुतरिया में पलना झुलावौ।
अरे अरे काठे के पुतरिया तू रोइ सुनोतिउ
पुतरी सुनते नगर कर लोग बझिन घर सोहर।

बांझिन के कलंक से बचने के लिए बढ़ई से काठ का पुतला बनवाती है, उसे चूमती है, उसे रोने को कहती है जिससे उसके घर में सोहर गाया जा सके। कितनी मनोवैज्ञानिकता तथा पीड़ा की अभिव्यक्ति है, इस लोकगीत में।

जन्म संस्कार के गीतों में 'पिपरी' गाया जाता है। राजस्थान में जच्चा को जो मसाले मेवा, गूंद, जीरा, अजवाइन दी जाती है – पीपली इनमें प्रतिनिधि लोकगीत है।

राजस्थान में पीपली गीत –

1. हे म्हारे उत्तर दिखणरी ए जच्चा पीपली।

* सह आचार्य (हिन्दी) राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.) भारत

हे म्हारे पूरब नमि नमि डाल रे।

हे म्हाने घणी ए सुहावे, जज्जा पीपली

2. ढाझै ढाझै म्हारी लाल कदम सी जीभ, पींपरामूल लागै म्हानै चरचरीज अवधी में भी पिपरी, जीरा गाया जाता है –

मतवाली पिपरि मोरे कौन पिये।

सलोने राजा पिपरि मैं न पियेउं, पिपरि मोहे कड़ई लगे।

सलोनी धना देइहौं मैं तिलरि गढ़ाई, सोनखा और गढ़ पिपरी।।

जीरा – जीरा मैं न पियउं जीरा कडुवा लगे।

ढुआरे से आये ससुर राजा ठाढ़े अरज करै हौं।

ओ बहुआ बारे गमुआरे पियैं दुधु, सुहगिन जीरा पियो।।

सभी में जच्चा की मनुहार है कि स्वास्थ्य अच्छा रहे बच्चे को माँ का दूध प्राप्त हो क्योंकि ये सभी वस्तुएँ माँ के दध में वृद्धि करने वाली होती है। 'दाई' धगरिन – राजस्थान में 'दाई' तथा अवधी में धंगरिन का सन्तान जन्म में बड़ा महत्व है। सभी स्थानों में पुत्र जन्मोत्सव की ही चर्चा होती है। राजस्थान में दाई को बुलाने जाने के संबंध में इस प्रकार वर्णन है :–

कंवले तौ ऊभा राजीड़ां री कुल बहू,

कोई कसमस दूखै है पेट

पींड्या तो धण री धगधगै जी

सासूजी म्हारा आला मौला, नणदल बाई राजकुंवार

म्हारी चिंत्या कुण करसी ओ राज

देराणी जेठाणी मांडियौ रूसणौं, म्हारी माय बसै परदेस

थे ई दाई माई भल आविया जी, म्हारै हालरियै रौ नालौ मौलाय

हालरियै रौ नालौ भल मोलियौ जी, म्हारा सासुजी नै बैग बुलाय।

अवधी में दाई को 'धगरिन' कहा जाता है। पुत्र जन्म पर धगरिन कोई साधारण पात्र नहीं है और न ही हंसिया ही साधारण है। सोने की हंसिया, रूपे का सूप, मोती के अक्षत से ही दाई काम करती है। दाई के नखरे इस समय बढ़े रहते हैं –

ऊँच नगरपुर पाटन आले (हरे कोमल) बांसे छाजन (छप्पर)

राम लिहिन अवतार सकल जग जानै

सोने के खड़उवा राजा दसरथ धगरिन बुलावैं चलैं,

धगरिन छिनउ रमन कई नार में सुपवा ओ लारंड (लिटाना)

काहे के हंसिया नरवा छीनहुँ काहे नहवावौं,

धगरिन रूपवा के सुपवा उलारो, मोतिन केर आखत।

अब 'दाई' के नखरे राजस्थानी में देखें –

बैठी दाई तखर बिछाय, बोले दाई गरब भरी

कचमच माच्यौ कीच, पाला नहीं रै चलां।

'दाई' ने पैदल चलने में असमर्थता व्यक्त की है।

दोनों ही स्थानों में भाव साम्यता है।

पुत्र जन्म के पश्चात् भाई के घर से पीला ओढ़ाया जाता है। राजस्थान की ललना पीला ओढ़ने हेतु उत्कंठित रहती है। वह प्रियतम से कहती है – 'कदैई नीं ओढ़ियौ पीलो पोमचो' पति कहता है पुत्र जन्म पर ही पीला ओढ़ने को मिलता है। राजस्थान में सूरज–पूजा के दिन पीला ओढ़ने की परम्परा है –

गाढ़ा मारू म्हानै पीलौ दौ रंगाय

जेठाण्यां देराण्यां पीलै रा बेस

धण रै ई पीलौ लावजौ जी म्हारा राज

देराण्यां जेठाण्यां जाया लाडल पूत

कोई थे धण जाई धीवड़ी जी म्हारा राज।'

राजस्थान में प्रथा के अनुसार नवजात का पद चिन्ह एक श्वेत वस्त्र या कागज पर छाप कर उस कागज या वस्त्र को पितृ गृह भेजा जाता है। शिशु की माँ अपने पति से कहती है कि 'पगलियै' लिखकर मेरे पिता के यहाँ भेजो। पत्र ले जाने वाले को बहुत पुरस्कार मिलेगा।

जच्चा रांणी जायौ है पूत

पगल्या लिख मेलौ भंवरसा म्हारै बाप रै

म्हारा बाभौसा कही जै दातार

घुड़ला तो देसी नाईजी थांनै हींसता।

अवधी में भी पुत्र जन्म के पश्चात् भाई के घर से पियरी जाती है। पियरी अर्थात् पीली धोती, भाई अपनी बहिन के लिये लाता है। पियरी के गीत में सामाजिक विस्तार तो है ही साथ ही एक इच्छा, साध जो पीहर से की जाती हैं, वह भी व्यक्त होती है। बहुत भावुक कर देने वाला यह गीत है –

एक साध मन उपजी जो विधि पुरवई,

राजा हमरे नइहर तक जइओ पियरी लै आवौ।

तुम्हारा तो नइहर दूरि बसे कोसवन को चले,

घरहि में हरदी बढ़इहो पियरि रंगि पहिरो।

तुम्हरी तो पियरी निते केरि नित उठि पहिरब,

बिरना क पियरि सगुन केरि पहिल चौक केरी।

बरहीं बरस जब लौटे मालिन घर उतरे,

मालिन केहि घर बजन बधइया कहिया घर सोहर।

जो मैं अस जनतिउ कि बहिनी कै लाल भै है हमरे भइनै भै है,

मालिन बेचतेऊँ मैं सिर के पगड़िया पियरि ले अउतेउ।

मालिन बेचतेऊँ मैं ठार तखरिया पियरि लइ अवतिउं

बहिनि पहिरउतिहुँ मैं साध–पुरइतिउँ।

भाई के बहिन के प्रति उद्गार सभी क्षेत्रों में समान हैं।

'सोहर' गीतों में रोचना भी गाया जाता है। पुत्र को यदि अपने पिता के घर में रहकर जन्म दिया है तो नाई उसके मामा के घर और यदि ननिहाल में जन्मा है तो नाई बाबा और पिता के घर जाकर 'रोचना' देता है। 'रोचना' अर्थात् नाई माथे पर हल्दी और चन्दन का लम्बा तिलक लगाता व शीश दिखाता है। एक मार्मिक गीत की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है –

छापक (घना) पेड़ छिउलिया (ढ़ाक का) तौ पतवन गहवरि (हरे–भरे)

रामा तेहि तर ठाढ़ि सितल रानी, मने अति अनमनि।

रामा उमड़ि घुमड़ि पिर आवाहि सिता मन अनमनि।

दोनों ही क्षेत्रों में पीहर पक्ष के प्रति भाव, सामाजिक उत्तरदायित्व, रीति–रिवाज आदि समान ही दिखाई पड़ते है।

मुण्डन गीत का महत्व भी दोनों ही क्षेत्रों में समान है। इनमें देवी गीत प्रमुखता से गाये जाते हैं। राजस्थान में जब शिशु एक या डेढ़ वर्ष का होता है तो उसके जन्म के साथ 'बाल केशो' को किसी देवी–देवता को चढ़ाने की प्रथा है जिसे झडूला चढ़ाना कहा जाता है। इस अवसर पर राजस्थान में गीत की परम्परा है। उदाहरण –

सोनै नै रूपा रौ माता मिंदरियौ

जिणमें बिराजी माता करनला

धजा तौ फरूकै माता मोवणी

कोई नगारां री उड़री है घोर, बिराजी माता करनाला
माताजी रै मढ़ री तौ छिब हद सोवणी।
कोई लख आवै, नै लख जाय, बिराजी माता करनाला।
ले लो झडूलौ नारेलां री जोड़रौ
कोई साजौ-ताजौ राख्या लाडल पूत, बिराजी माता करनाला।

अवधी में झडूले को 'मुंडन' कहा जाता है। प्राय: गांवो में स्त्रियाँ इस अवसर पर किसी देवी के मंदिर में या नदी के पास जाकर मुंडन करवाती हैं और गीत गाती हैं।

उदाहरणार्थ -

इन लटुरिन पै बलि जाऊँ, लाल जी केर मूंडना।
दतियन कुरकुर खाय बतासा लाल जी केर मूंडना।
सुरहि गाय का गोबर मंगायेन झुक धरि अंगनि लिपायेन,
नगर बुलौवा देवायेन, लाल जी केर मूंडना।
मोतियन चौक पुरायेन लाल जी केर मूंडना।
चंदन पटुली डरायेन लाल जी केर मूंडना।
चौक ललन बैठारेन लाल जी केर मूंडना।
दादी उनकी लटुरी मुड़ावे, बाबा उनके खर्चे दाम। लाल जी केर मूंडना।

गीत में रीति रिवाज, बालक की अवस्था एक डेढ़ वर्ष की स्पष्ट हो रही हैं जहाँ बताशा कुर-कुर खाने की बात कही गई है। सुरहि गाय गंगातीरी गाय होती है इस गीत के माध्यम से गैया की महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है। दादी अनुभवी है अत: नाई के द्वारा लटुरी (केश राशि) मुड़ाने पर वह स्वयं इस कार्य की मुख्य करता-धरता है वहीं बालक के दादाजी प्रसन्नता से धन खर्च कर रहे हैं।

राजस्थानी तथा अवधी दोनों ही क्षेत्रों में मुंडन संस्कार में उत्साह के साथ साथ ईष्ट देव, अधिकांशत: देवी गीत अवश्य गाये जाते है। जनेऊ धारण करने के अवसर पर राजस्थान में लोक गीत प्रचलित है लेकिन कुछ जाति विशेष में ही इसका संस्कार दिखाई देता है। इन गीतों में प्रमुख रूप से धार्मिक भावों का उल्लेख रहता है। जनेऊ धारण करने वाले बालकों को खान-पान, रहन-सहन के नियम पालन करने होते हैं। मांस-मदिरा का निषेध होता है। सूत से ही जनेउ का निर्माण किया जाता है। एक राजस्थानी गीत देखें -

गले जनेऊ लाडा पाटकै री डोरी
भिक्सा पुरसै बहु सूरज जी री गोरी
गलै जनेऊ लाडा पाटकै री डोरी
भिक्सा पुरसै बहु बरमा जी री गोरी
भिक्सा पुरसै बहु महादेव जी री गोरी।

जनेऊ संस्कार में भिक्षा मांगना और भिक्षा देने की परम्परा में जितनी भी घर की बहुएँ हैं उन सभी के लिए ब्रह्मा जी, महादेव जी की पत्नी के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

अवधी में भी 'सोहर गीतों' के पश्चात् जनेऊ गीतों की महत्ता हैं। जन्म, जनेऊ और विवाह अवध के प्रमुख संस्कार गीत हैं। जनेऊ के गीतों को बरूआ तथा 'भीखी' कहा जाता है, जैसे राजस्थानी में 'भिक्सा' कहा गया है। यहाँ भी ब्रह्मचारी भीख मांगता है - गीत प्रस्तुत है -

मढ़ये मां ठाढ़े चुन्नू राजा हिरि फिरि चितवैं पलक नहिं मारै।
कहां गई आजी हमारि भिक्षा लइ डारो।
छिनु एकु बिलंबौ दुलरूआ धरी एक विलंबौ,
कइलें व सोरहो सिंगारू भिक्षालइ डारव हों।
कहाँ गई है माया हमारि भिक्षा लइ डारै हों।
सातों सूप सजाइ के भिक्षा लइ डारब हों।
पचरतनी सूप सजाई के भिक्षा लईं डारब हों।
मढ़ये माँ ठाढ़े चुन्नू राजा हिरिफिरि चितवैं पलक नहिं मारैं।
कहाँ गैहैं बहिनी हमारी भिक्षा लइडारौ हों।

लूह्मचारी अपने परिवार के सभी संबंधियों से भिक्षा मांग रहा है। दोनों ही क्षेत्रों में जनेऊ संस्कारों के गीतों में पंडितों द्वारा शास्त्रोचित मंत्रों द्वारा यज्ञोपवीत करवाया जाता है।

लेकिन लोक गीतों में भाव साम्य रहते हुए, प्रतीक बदल जाते हैं। जैसे राजस्थानी में किसी भी घर की बहू को ब्रह्मा अथवा महादेव की पत्नी अथवा लक्ष्मी रूप में मानते हुए गीत है तो अवधी में सामाजिक संबंधों को उसी नाम रूप से संबोधित किया गया है।

निष्कर्षत: कहां जा सकता है कि भौगोलिक दृष्टि से, जल-वायु की दृष्टि से, रहन-सहन की दृष्टि से, खान-पान की दृष्टि से, वस्त्र-आभूषण, भाषा, बोली, लहजा आदि की दृष्टि से भिन्नता दिखाई देती है लेकिन भावनात्मक जुड़ाव, भाव आधारित पद्धतियों में जन-मन एक समान है। भारत विविधता में एकता के सूत्र को किस प्रकार जोड़े रखता है, यह लोक-साहित्य अध्ययन से सहज ही समझा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ऋग्वेद - 3। 53। 12।
2. सिद्धान्त कौमुदी-वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई 1989, पृ. 416।
3. जनपद त्रैमासिक, अंक 1, पृष्ठ 66 - लोक साहित्य का अध्ययन।
4. काव्य के रूप, गुलाब राय-पृ. 123।
5. 'आजकल' दिल्ली-संस्करण, नवम्बर 195 ।
6. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, भूमिका, पृ. 5।

****

Psychoanalytic Study of the Female Protagonists in the Select Works of Anita Desai

Ms. Savita Verdia*

Abstract - Indo English writing has attracted a widespread interest both in India and abroad. It has undergone myriad changes since the pre-independence period. The later part of the twentieth century witnessed the growth of an enormous volume of literature primarily written by women and for women. Anita Desai, who received the Sahitya Academy Award in 1978 for her novel *Fire on the Mountain* is one of the most distinguished Indo English women writers. Anita Desai makes an exploration into the human psyche and thus she excels in writing psychological novels. Social, political and moral issues which formed the central theme in the works of the novelists like Mulk Raj Anand, R.K. Narayan, Kamla Markandya, Khushwant Singh are not her concerns. Self-alienation among women forms the central theme in most of her novels. The present paper makes an attempt to do a psychoanalytical study of the female protagonists of Anita Desai's three major novels *Cry, the Peacock, Fire on the Mountain* and *Where Shall We Go This Summer*. The paper focusses on exploringthe psychic condition of the three protagonists in light of the theories propounded by the psychologists, Karen Horney and Abraham Maslow.

Introduction - Anita Mazumdar Desai, born to a German mother and a Bengali father, began her writing career with her first novel, *Cry, The Peacock*, in 1963. She is the writer who influenced by writers like Henry James, Virginia Woolfe, Emily Bronte introduced the psychological novel to Indo English fiction. She is a pioneer of psychological realism in Indian English novels. Being a woman writer, she is more concerned with the thought, emotion and sensation rather than with action, experience and achievement. She in her novels makes a scrutiny of the inner world of her characters. She is not in the least concerned with the external or the outer world. She says:

Writing is to me a process of discovering the truth – that is nine tenth of the iceberg that likes submerged beneath the one-tenth visible portion we call reality. Writing is my way of plunging to the depths and exploring this underlying truth. All my writing is an effort to discover, to underline and convey the true significance of things.

Thus, it can be said that Desai is not interested in external reality or absolute truth existing outside the human situation. The truth for her exists in the dreams and wills of the people she creates.

Psychologists believe that the nature of human being which is intrinsic remains with him forever and struggles for self-actualization. If this inner nature is suppressed it gets sick, if it is encouraged it leads to a healthy personality. Psychology gives us clues to self-actualization and self-alienation.

Anita Desai in her novels talks about the conflicts, complexities and workings of the inner life of her characters and this paper attempts to makes a study of her characters in the light of psychology. Desai's fiction marks an important phase in the growth of psychological fiction in India. *Cry,The Peacock* is "…the first step in the direction of psychological fiction in Indian writing in English" says R.S. Sharma. The thought of exploring the interior world, bringing forth the hidden contours of human psyche was foreign to Indo English novel till Anita Desai came on the scene. Her novels are distinct from the earlier Indo English novels both in theme and technique.

Self-alienation in woman is the central theme in almost all the novels of Anita Desai. Karen Horney deals with the process of alienation. His concept of 'basic anxiety' helps to understand the problem of alienation. Horney describes 'basic anxiety' as "the feeling of being isolated and helpless in a world conceived as potentially hostile." According to Horney, these feeling arise in childhood when one does not get the favourable conditions to grow. As a result of this, the child develops in him a feeling of insecurity, fear and withdrawal. Many factors contribute to such type of conditions in the child. Dominating, over-protective and intimidating parents, irritable, over-indulgent, partial, indifferent and hypocritical elders damage the child's sense of self-reliance. Children who suffer from such type of anxiety disorders cope with their fears by becoming overly dependent on others for support and help. Every child according to Abraham Maslow has psychological survival needs which include need for safety, for love, for belonging, for self-esteem and finally for self-actualization. If these needs are not fulfilled then the frustration of these produces neurotic conditions in the child.

*Lecturer, Govt. M. G. College, Udaipur (Raj.) INDIA

His growth is arrested and he is alienated from his real self. Both Maslow and Horney regard "real self" as the foundation of personality. Favourable environment, affection, inner security and inner freedom provided to the child helps him to live according to his real self. But if these are at stake for a child then he abandons his real self. The characters of Anita Desai tend to forego their vital self somewhere during the journey from childhood to adulthood. Her characters strive to find substitute for their lost self. Because of an over-protective father, Maya in *Cry, The Peacock* ceases to lead an independent existence during her childhood. This dependency continues later in her married life when she leans more and more on Gautam, her husband, thus losing her real self in the bargain. The special attention shown by Maya's father offers her a life of submission rather than of freedom. Sita in *Where Shall we go this Summer,* on the other hand, is in the reverse situation. If Maya's father is overprotective, Sita's father neglects her completely and this develops a feeling of worthlessness in her. It shatters her faith in life and in the goodness of the world. She develops a feeling of being isolated and helpless and this leads to an alienation from her real self. Raka in *Fire on the Mountain* is a typical case of alienated self who is not a normal child. She is a victim of more or less a broken home. Her detachment and loneliness are mainly because she has had no joy of parental love. According to an existential psychologist, family is internalized in each one of us. It is like a flower with mother as the center and the children as petals around it. The most vital link – the mother – is missing in the lives of Maya and Sita. This sow a deep seed of insecurity their lives. Thus, we see that in all the three cases that is of Maya, Sita and Raka, the parents are at fault as they cannot fulfill the basic requirements of their children. According to Horney to cope with these types ofconflicting situations the child withdraws and creates an emotional barrier between himself and others. The strategy of withdrawal saves his individuality.It can be thus concluded that the protagonists in Desai's novels are victims of unhappy and harmful home environment.

Through the female protagonists, Desai in her novels present the problem of alienation, withdrawal and loneliness which is common to most of the Indian women. Her novels present the dilemma of the modern woman effectively. The loneliness of the protagonists in the three novels symbolizes the loneliness of a woman, a wife and a mother in Indian society. A thorough study of her novels shows how well Desai understands the mental, moral and social struggles of a woman. "Her forte is the exploration of sensibility – the particular kind of modern Indian sensibility that is ill at ease" says Iyengar. Her novels reveal the inner realities and psychological state of the characters. Desai lays emphasis on the interior than on the exterior characterization, on the invisible than the visible life. The problem of withdrawal and alienation which Desai portrays in the three novels is better understood when the characters are analyzed psychologically. A psychological study of these novels helps in tracing the origination of alienation and isolation and the transformation of sane, wise and calm individuals to insane and neurotic ones. Desai has made a judicious use of psychological insight in the three novels, to the extent it was essential for recording the psychic state of her characters. She excels in highlighting the miserable conditions of highly sensitive and emotional women who struggle to establish contact with their real selves. This striving of protagonists towards arriving at a more authentic way of life than the one which is available to them is viewed from psychological perspective.

The exploration of the childhood environment and the married lives of the three protagonists- Maya, Sita and Nanda enhances the understanding of the problem of alienation and withdrawal. The problem of alienation is so acute in the characters of Desai that at several specific instances in the novels, they show a sign of neurosis. The neurotic state of these characters is acceptable to its readers when they are made aware of the inner psyche of these characters. Desai in her novels plunges into the interior world of her characters and captures the atmosphere of the mind. That Desai succeeds in probing deep into the psyche of her characters is proved by the in-depth analysis of Maya's vindictiveness, Sita's regressions and Nanda's martyrdom. The elaborate descriptions of the mental agonies of Maya, Nanda and Sita make her novels a fascinating psychological study of their neurotic fears. The literary and artistic devices that she uses in the novels further highlights the problem of alienation more effectively. The use of stream of consciousness technique, interior monologues, various symbols and images lends a vividness to the situations she describes, the characters she portrays and the events she narrates. Imaginative devices that is the use of illusions, fantasies and nightmares in the three novels makes her readers see strange objects, things and events – thus disclosing the invisible life of Maya, Sita and Nanda. It is not only in the use of subject matter, characterization and in presenting the atmosphere of mind but also in the use of narrative technique, symbols, images that Anita Desai's novels deserve to be called psychological novels effectively highlighting the problem of alienation.

References :-

1. Desai, Anita. *Fire on the Mountain.* New Delhi: Allied Publishers, 1977. Print.
2. Desai, Anita. *Cry, The Peacock.* New Delhi: Orient Paperbacks, 1980. Print.
3. Desai, Anita. *Where Shall We Go This Summer.* New Delhi: Orient Paperbacks, 1982. Print.
4. Horney,Karan. *Neurosis and Human Growth.* London: Routledge and Kegan Paul, 1965. Print.
5. Iyengar, Srinivas K.R. "A note on Anita Desai's Novels." *The Banasthali Patrika* 8 Jan. 1969.
6. Sharma, R.S. *Anita Desai* New Delhi: Arnold Heinemann, 1981. Print.

****

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में योग की भूमिका

समरजीत सिंह *

प्रस्तावना – योग भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। गुरूकुल में छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए अन्य विधाओं के साथ योग विद्या का अभ्यास आवश्यक रूप से कराया जाता था। कालांतर में भ्रामक धारणाओं के कारण योग एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित हो गया। परन्तु वर्तमान में योग का प्रचलन जन सामान्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। योग एक जीवनशैली है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सानन्द जीने की शिक्षा प्रदान करती है।

विषय-प्रवेश – विद्यार्थी जीवन में गुरू का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिनकी जीवन शैली बालक के जीवन में आदर्श स्थापित करती है वह न सिर्फ व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है, बल्कि बौद्धिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान के भी पथ पर भी अग्रसर करता है, जो संपूर्ण व्यंतिव विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोशारीरिक रोगों का प्रमुख कारण तनाव है जिनको योगाभ्यास के द्वारा शत-प्रतिशत नियंत्रित किया जा सकता है। योगाभ्यास शरीर के अंगों की कार्यक्षमता का विकास कर शरीर एवं मन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को सुचारू रूप प्रदान करता है। योग कोई धर्म नहीं किन्तु 'स्व' को पहचानने का तथा अपने अन्दर छिपी हुई अनेक गुप्त शक्तियों को जागृत कर उन पर नियंत्रण एवं सकारात्मक मार्ग प्रदान करने का साधन हैं वर्तमान समय में विद्यालय के वातावरण को अनुशासित कर छात्र एवं अध्यापकों के मध्य सामंजस्य बनाने में योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि हम छात्र में मौलिक गुणों अर्थात् नैतिकता, आत्म संयम, आरम्भ अनुशासन, आत्म बल, आत्म विश्वास जैसे गुणों का विकास चाहते हैं, तो योग शिक्षा ही वह सशक्त माध्यम है, जिससे हम छात्र में इन गुणों को प्रतिष्ठित कर पाने में सक्षम हो सकते हैं। उसे सफल एवं शांत जीवन जीने की कला सीखी जा सकती है। चूंकि शिक्षा अपने देश के सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक आदर्शों का दर्पण भी होती है और यह आदर्श वहाँ की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर होते हैं, जैसे आर्थिक स्थिति, सभ्यता के विकास को प्रभावित करती है उसी प्रकार सामाजिक और धार्मिक स्थिति संस्कृति को। मनुष्य जन्म से तो केवल शूद्र पैदा होता है किन्तु संस्कार उसे द्विज बना देते हैं। सभ्यता सामाजिक, आर्थिक विकास की परिचायक है तो संस्कृति व्यक्तिगत उत्थान की।

महाविद्यालयों में योग की आवश्यकता एवं लाभ – प्राचीन समय में शिक्षा का मूल उद्देश्य युवाओं के चरित्र निर्माण द्वारा समाज में व्याप्त बुराईयों, कुरीतियों को दूर कर एक सभ्य समाज का निर्माण करना था। स्वामी दयानंद, श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर, स्वामी विवेकांनद, श्री अरविन्दो घोष आदि अनेक उदाहरण हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सभ्य समाज के निर्माण में लगा दिया। आजकल नैतिक गुणों पर बल न देते हुए, शिक्षा पूर्ण रूप से आर्थिक सम्पन्नता का पर्याय बन गई है। आधुनिक शिक्षा का परिणाम भी समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। वृद्धाश्रमों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, धोखा आदि अनैतिक कार्यो का बोलबाला है। सच कहें तो हमारी सोच, कथनी एवं करनी सभी आदि गये हैं।

समाज का एक वर्ग है छात्र, जो हमारे समाज व देश का भविष्य है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को योग एक दिशा देने का कार्य कर सकता है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में अष्टांग योग के अन्तर्गत सर्वप्रथम स्थान नैतिक मूल्यों अर्थात् यम एवं नियम को दिया है। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रम्हचर्य व अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक संग्रह नहीं करना है) उसी प्रकार नियम में शौच, सन्तोष, तप (छात्र जीवन में नियमित अभ्यास व अध्ययन) स्वाध्याय (स्वयं का अध्ययन कर दोषों को दूर करना) व ईश्वर प्रणिधान (परम सत्ता के प्रति समर्पण की भावना) का उल्लेख किया है उपर्युक्त यम-नियम के पालन करने में आसन, प्राणायाम आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। शरीर के माध्यम से मन पर नियंत्रण प्राप्त करना ही योग की उपलब्धि है। आसन व प्राणायाम मन की एकाग्रता बनाए रखने में सहायक है। एकाग्रता जितनी सूक्ष्म होगी, तल्लीनता उतनी ही स्थायी होगी परिणामस्वरूप कार्य का सम्पादन उतना ही सुन्दर एवं त्रुटिहीन होगा। देश, विदेश में हुए वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी सिद्ध हो गया है कि योग न केवल हमारे स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक है, अपितु भावनात्मक संतुलन द्वारा नैतिक बलों को उन्नत एवं दृढ करने में भी उतना ही सहायक है।

उपर्युक्त वर्णित आसन व प्राणायाम को करने के साथ-साथ यौगिक शुद्धि क्रियाओं का अपना एक विशेष महत्व है। यौगिक ग्रन्थों में इन्हें षट्कर्म, शोधन अथवा शुद्धि क्रिया आदि कहा गया है तथा संख्या में छ: बताई गई है। यथा धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि व कपालभाति। शुद्धि क्रियाओं का अभ्यास वात वित व कफ की शुद्धि के साथ समता प्रदान करता है।

धौति, बस्ति व नौली का संबंध विशेष रूप से अमाशय, बड़ी आंत, छोटी आंत व मलाशय से है। धौति के द्वारा अतिरिक्त पित्त व कफ का प्रकोप शांत होता है। पाचन क्रिया संतुलित होती है, बस्ति का उपयोग कोष्ठबद्धता (Constipation) दूर करने के लिए किया जाता है। नौलि क्रिया के द्वारा पेट की मांसपेशियों पर नियंत्रण प्राप्त कर उन्हें क्रमश: दक्षिण, वाम व मध्य भाग में घुमाकर पेट के अंदर के महत्वपूर्ण अंगों का मर्दन होता है। परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण अंग जैसे – यकृत, क्लोम ग्रंथि, अग्नाशय, आंतों की क्रियाशीलता बढ़ती है और पेट की अतिरिक्त चर्बी दूर होती है।

नेति क्रिया के द्वारा नाक, आंख, कान, सिर के अंगों को लाभ मिलता

* शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

है। दृष्टि तीव्र होती है तथा मन की उसकी चंचलता को दूर कर एकाग्रता के वृद्धि में सहायता मिलती है। कपालभाति के अभ्यास से शरीर में हल्कापन व ओज की प्राप्ति होती है।

निष्कर्ष – इस प्रकार योग हमारे शरीर व मन के साथ–साथ सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निखारने में सहायक है, योग सम्पूर्ण विज्ञान है। अत: छात्रों को शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक रूप से स्वस्थ रखने के उद्देश्य से विद्यार्थियों को निरंतर एवं नियमित योगाभ्यास करना चाहिए। योग की आवश्यकता सभी को है, किन्तु स्कूल एवं महाविद्यालयों में छात्रों के लिए इसकी विशेष आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी वर्ष 1979।
2. स्वामी ओमानन्दतीर्थ, पातंजल योग प्रदीप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर वर्ष 1988।
3. हरिकृष्णदास गोयनका, योगदर्शन, गीताप्रेस, गोरखपुर संवत 2032।
4. स्वामी विवेकानन्द, कर्मयोग, श्रीरामकृष्ण मठ, नागपुर वर्ष 2006।
5. श्रीराम शर्मा, पातंजलि योग का तत्व दर्शन, योग निर्माण योजना, मथुरा वर्ष 1968।
6. नंदलाल दशोरा, पातंजल योग दर्शन, रणधीर बुक सेल्स, हरिद्वार वर्ष 1986।

****

स्वामी दयानन्द का हिन्दी व नारी जागरण और भारतेन्दु युग

दत्तात्रेय गौतम *

प्रस्तावना – शिक्षा आन्दोलन के साथ ही साथ ईसाई मत का प्रचार रोकने के लिए मत मतांतर संबधी आन्दोलन देश के पश्चिमी भागों में चल पडे। पेगम्बरी एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को खिंचते देख स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खडे हुए और संवत् 1920 से उन्होने अनेक नगरो में घूम–घूम कर व्याख्यान देना आरम्भ किया कहने की आवश्यकता नही कि ये व्याख्यान देश में बहुत दूर–दूर तक प्रचलित साधु हिन्दी भाषा में ही होते थे। स्वामीजी ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' तो हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित ही किया, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिन्दी को 'आर्यभाषा' कहते थे।स्वामी जी ने संवत् 1922 में 'आर्य समाज' की स्थापना की और सब आर्य समाजियो के लिए हिन्दी या आर्य भाषा का पडना आवश्यक ठहराया। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बडी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक सम्पर्क से पंजाब वालो को लिखने पढने की भाषा उर्दू हो रही थी। आज जो पंजाब में हिन्दी की पूरी चर्चा सुनाई देती है, इन्ही की बदौलत है।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
(हिन्दी साहित्य का इतिहास ,पृ0सं0–243)

स्वामी दयानन्द का कार्य क्षेत्र 1857 से प्रत्यक्ष रूप में रहा है। इनका जो समाज सुधार का कार्य था वह व्यक्तिगत जीवन से लेकर राष्ट्र सुधार तक फैला रहा। इस समय मुगल साम्राज्य का पतन एवं अंग्रेजों का शासन था दोनो ही शासन ऐश्वर्यवादी और शोषणवादी रहे। विलासिता का जो बादल कवियो के मुगल शासन के दौरान छाया हुआ था वह अब धीरे–धीरे छटने लगा था। स्त्रियाँ के प्रति जो कवि केवल मात्र नख–शिख भावना से काव्य करते थे और बादशाहो को आनन्दित करने का कार्य करते थे वह अब इस 1857 की क्रान्ति ने छीन लिया। दयानन्द एक ऐसा योद्धा हुआ कि उनके समाज सुधार के प्रत्येक बिन्दु पर उस काल के कवि, साहित्यकार विचार करने को मजबूर हो गये थे।1857 से उनकी मृत्यु 1883 तक तो उन्होने हिन्दी साहित्य में अविश्वसनीय परिवर्तन किये किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात जो हिन्दी साहित्य के शेष कवि व साहित्यकार रहे वे सब या तो उनकी संस्था आर्य समाज से प्रभावित था या स्वयं आर्य समाजी या दयानन्द के शिष्यो में से एक। इस दौरान महर्षि दयानन्द के समाज सुधार में जो सुधार उत्थान की घोषणा थी वह प्राय: सभी साहित्यकारो में मुखर हुई। इसके पहले तक साहित्यकार स्त्री के दु:खों एवं उसकी उन्नति के बारे में सोच भी नही सके। उनका ध्यान केवल उस रीतिकाल की पुरानी रीति पर ही था। वे अपनी निजी विचार प्रतिभा प्रस्तुत करने में असक्षम रहे। इस क्रान्ति से पहले जिनका कवि हृदय था वे सब रीति रस में निमग्न होकर काव्य रचना करने में मशगूल थे अचानक आये दयानन्द रूपी तूफान ने श्रृंगारीक रचनाऐ करने वाले साहित्यकारों के पत्ते उडा दिए और दयानन्द के क्रान्तिकारी प्रभाव से सबका ध्यान उनकी ओर गया , जिससे हिन्दी रचनाऔ में श्रृंगार की प्रधानता कम होने लगी और वे सब राष्ट्र जागरण में, स्त्री जागरण में लग गये। उस समय की साहित्य रचनाओं को देखने पर यह मालूम हो जाता है कि सब में कहीं न कहीं स्त्री सुधार की सीख अवश्य दृष्टिगोचर होती है। जो स्वयं भारतेन्दु अपनी रचनाएं श्रृंगारिक लिखते थे उन्होने भी वह चाल बदल दी और नई दिशा की और मुड गये।

गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र, एम.ए, शुकदेव बिहारी मिश्र, बी.ए का मिश्र बन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि किर्तन प्रथम भाग, खण्डवा व प्रयाग हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली प्रथम संस्करण 1970 एक अत्यन्त शोधपूर्ण ग्रन्थ है। जिसमें तीन व्यक्तियों का एक साथ शोध हुआ है। मिश्र बन्धुओ ने अपने इतिहास में पृ0सं0–161 पर दयानन्द काल नाम से लिखा है कि दयानन्द ने 'अपने समाज का यह एक मुख्य नियम कर दिया कि प्रत्येक सहृदय हिन्दी की सहायता करे। स्वामी जी द्वारा हिन्दी का भारी उपकार हुआ है।' तृतीय भाषा पृ0सं0 1174 पर लिखते है– ''इन्होंने जितने भाषा ग्रन्थ लिखे, उनमें वर्तमान शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया। आपकी भाषा बहुत ही सरल होती थी संस्कृत के बडे भारी विद्वान् होने पर भी आपने विशेषतया हिन्दी को आदर दिया और आपने प्राय: सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे।''

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग 1843 ई., 1850 ई.से तथा 1868 ई.[1] तक माना जाता है और यही काल दयानन्द के कार्यो का काल था। हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग भारतेन्दु युग से आरम्भ होता है।जब भारतेन्दु का जन्म हुआ तब दयानन्द अपना तीन चौथाई जीवन पार कर चुके थे तथा भारतेन्दु के युवा काल में दयानन्द ने पाखण्ड, अत्याचार, नारी शोषण के विरूद्ध भारतीय धर्म दिग्गजों या कहे धर्म के ठेकेदारों के बीच अकेले सिंहवत् ''काशी शास्त्रार्थ''[2] किया था। जिसमें हरिशचन्द्र भी मौजूद थे। तब दयानन्द ने मानवता के विरूद्ध दलन जिसमें स्त्री शोषण को भी तृणवत् उखाड फैकने का क्रान्तिकारी फैसला किया था। भारतेन्दु हरिशचन्द्र स्वामी दयानन्द के समकालीन थे। हिन्दी साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन करने वाले भारतेन्दु ने दयानन्द के ही प्रभाव से अपने साहित्य लेखन में कई परिवर्तन किए ''भारतेन्दु के वैचारिक परिवर्तन में स्वामी दयानन्द के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तो ने परोक्ष भूमिका निभाई थी।''[3] यहाँ तक कि स्वामी जी ''संस्कृत के अनुसार हिन्दी में लिंगो का प्रयोग करते थे,

* शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) भारत

भारतेन्दु हरिशचन्द्र व प्रताप नारायण मिश्र ने यही शैली स्वीकार की।''[4]

भारतेन्दु ने तत्कालीन स्थिति को भाँप कर पुष्टिमार्गीय आचार्य वल्लभ के मतानुसार होने पर भी अपने लिखे ग्रन्थो को छोड नवजागरण से सम्बन्ध जोडा और साहित्यक परिवर्तन लाने में धार्मिक पाखण्ड, सामाजिक कुप्रथाओं तथा अन्धविश्वासों के प्रति जो तीव्र कटाक्ष युक्त आलोचना का स्वर मुखर हुआ उसे स्वामी दयानन्द के विचारो का ही प्रभाव समझना चाहिए। 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु हिन्दु समाज में प्रचारित जाति भेद, जन्म पत्र के आधार पर विवाह स्थिर करना, बाल विवाह, कुलीनो के बहु-विवाह, विधवा विवाह निषेध, विलायतगमन निषेध आदि कुप्रथाओं का तीव्र खण्डन करते है। 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' में उन्होने सामप्रदायिक पाखण्डों का पर्दाफाश किया है, जबकी अपने अपूर्ण नाटक 'प्रेम योगिनी' में तीर्थ स्थानों एवं धर्म स्थलों में फैले दुराचार तथा काशी जैसे धर्म स्थानो में विद्यमान पाखण्डों का भण्डा फोड करने में उन्होने यथार्थवादी लेखक की भूमिका निभाई है। यह सब तथ्य इस बात के प्रमाण है कि परम् वैष्णव भारतेन्दु हरिशचन्द्र अपनी वैचारिक उदारता के लिए स्वामी दयानन्द के ऋणी थे।''[5]जिस साहित्यकार के नाम से हिन्दी में युग विभाजन हुआ वह भी दयानन्दीय विचारो से साहित्य लिख रहा था, तो स्पष्ट है कि दयानन्द के भारत के सभी प्रबुद्ध एवं अप्रबुद्ध व्यक्तियो के मन, मस्तिष्क एवं हृदय में झांक चुका था। क्या हम यह मान सकते है कि अगेजो की गुलामी में जब अंग्रेजी शिक्षा आई तो क्या स्त्रियाँ स्वतन्त्र हो गई थी। उनके प्रति नजरिया बदला था? वस्तुत: जो क्रान्ति का उद्‌घोष था उसमें अन्य जागरण के साथ ही स्त्री जागरण भी अहम था उस समय जो साहित्य राष्ट्रहित में लिखा जा रहा था, वह सब जागृति भरने वाला था। चाहे वह भाषा, आडम्बर, पाखण्ड या देश के प्रति बलिदान एवं स्त्री जागरण से सम्बन्धित ही क्यों न हो।

''सन् 1870 में स्वामी दयानन्द पंजाब का दौरा कर रहे थे। वहाँ उनसे आग्रह किया गया कि यदि आप अपने ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू फारसी में कर दें, तो बहुत लोग लाभ उठा सकेंगे। स्वामी ने उत्तर दिया कि दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते है कि जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक हिन्दी अक्षरों का प्रचार होगा। मैने आर्यावृत्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित किये है।''[6] हिन्दी भाषा की दयानन्द की घोषणा को भारतेन्दु ने इस प्रकार पद्य बद्ध कर व्यक्त किया-

''निज भाषा उन्नती अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।''[7] सारे को राष्ट्र उस समय के साहित्यकारो ने एक करने की प्रेरणा दयानन्द से लेकर प्रथम भाषा की एकता का प्रसार किया। भाषा ही वह माध्यम है जिससे राष्ट्र जागरण के विभिन्न पहलुओं को जनता में पहुँचाया जा सकता था।इसमें स्त्री जागरण प्रमुख था। देश की आधी आबादी स्त्रियाँ ही है। राष्ट्र जागरण का उद्देश्य तब ही पूर्ण हो सकता है जब पुरूषो के साथ स्त्रियाँ भी दु:ख रहित हो सकता है तब पुरूषो के साथ स्त्रियाँ भी दु:ख रहित हो। यह लक्ष्य तत्कालीन महापुरूषो का रहा। जिससे दयानन्द प्रथम कोटि के थे।

दयानन्द का प्रभाव भारतेन्दु पर एक ओर प्रमाण से सिद्ध होता है - ''हुगली के इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने 'प्रतिमापूजन विचार' शीर्षक से 1873 ई. में ही लाईट प्रेस बनारस से मुद्रित करा कर प्रकाशित किया था यह आश्चर्य की बात है कि 1870 में जिन हरिशचन्द्र ने 'दूषणमालिका' जैसी पुस्तक लिखकर स्वामी दयानन्द पर अनर्गल आक्षेप वृष्टि की थी, अब वे ही तीन वर्ष पश्चात प्रतिमापूजन का निषेध परक शास्त्रार्थ प्रकाशित करते है।''[8]

इस काल के अनेक लेखको ने हिन्दी की नीव को सुदृढ बनाने में अपना योग दान दिया और उसके बाद तो साहित्य की अनमुक्त धारा अबाध गति से बहने लगी।

इन लेखको में पुरूषो के साथ-साथ स्त्रियो ने भी अपने-अपने रचना कर्म से हिन्दी भाषा को शक्तिशाली बनाने में योगदान दिया। यह अलग बात है कि अधिकांश हिन्दी भाषा के इतिहास लेखको ने स्त्रियों के योगदान पर प्रर्याप्त दृष्टि डालने की आवश्यकता नही समझी। उनकी भूमिका का रेखांकन न किया जाना आश्चर्य में डालने वाला है। किन्तु फिर भी जो भारतेन्दु मण्डल के लेखक थे वे सभी किसी न किसी रूप में स्वामी दयानन्द से प्रभावित अवश्य थे तथा जो स्त्री रचनाकार जिनका हिन्दी साहित्येतिहास में कही वर्णन न हुआ था, ध्यान नही गया, वे तत्कालीन महापुरूष जिसने भारत वर्ष में ही नही बल्कि सम्पूर्ण संसार में अपनी पहचान बना ली थी। उससे प्रभावित हुए बिना न रह सकी। भारतेन्दु मण्डल के लेखको में प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, बद्रीनारायण चौधरी, लालाश्रीनिवास दास, अम्बिका दत्त व्यास, महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी, पं. राधाचरण गोस्वामी, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू तोताराम, पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया, पंडित भीमसेन शर्मा आदि थे।

उस युग में स्त्री लेखिकाओ की रचनाएं भी सामने आती है भले वह भारतेन्दु मण्डल की न हो किन्तु उनके समकक्ष अवश्य थी।

जिनमें श्रीमती प्रताप कुँवरी बाई, महारानी वृषभानु कुँवरी, पंडिता रमा बाई डोंगरे राजरानी देवी, हेमन्त कुमारी चौधरी आदि थी।

हिन्दी प्रचार आन्दोलन पर दयानन्द का प्रभाव संयान्सियो से लेकर साहित्यकारो तक ही सीमित न होकर आमजन तक थी। उनका मत था ' जो इस देश में पैदा होकर अपनी भाषा सीखने में कुछ भी परिश्रम नही उनके बाद भी हिन्दी के प्रचार का कार्य उनकी संस्था आर्य समाज ने इतना किया जितना शायद ही कोई अन्य संस्था कर पाई हो। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'हिन्दी साहित्य उसका उदभव और विकास' में लिखते है- ''आय समाज के आन्दोलनो ने हिन्दी को बहुत बल दिया क्योकि आर्य समाज भी भारतीयकरण का पक्ष पाती था, इसलिए उसको सबसे अधिक लौहा उर्दू भाषा से लेना पडा संयोग वंश उर्दू लिपि का वैज्ञानिक मूल्य कुछ भी नही था, नागरी लिपि की तुलना में संसार की कम लिपियाँ खडी की जा सकती है। फारसी लिपि तो किसी भी प्रकार उसकी प्रतिद्वंदिनी नही बन सकती इस लिपि के जिने का सबसे प्रबल कारण मुस्लिम भावनाएं थी। मुसलमान लोग उसे धर्म लिपि मानते है और आग्रह पूर्वक उसे उतम स्थान देना पसन्द करते है।'' भारतवर्ष के विदेशी शासकों ने मुसलमानों की मनोवृत्ति को सहलावा दिया और इस बात की बिलकुल परवाह नहीं की कि शुद्ध उच्चारण और सुपाठ्य लेखन की दृष्टि से नागरी लिपि उर्दू से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी। इसी कारण से अनेक शासकीय अशासकीय विरोधो अन्तर्विरोधों को झेलने के बाद भी हिन्दी पूरे देश की संवाद एवं जोडने वाली भाषा बनीं।

उन्नीसवीं सदी में समाजोन्नति के प्रश्न को हम हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन की भूमिका को समझ सकते है। यहाँ भारतेन्दु युग के महत्वपूर्ण लेखक राधाचरण गोस्वामी के योगदान को एवं उन पर पडे दयानन्द के प्रभाव को स्पष्टत: देखा जा सकता है। ''पं. राधाचरण गोस्वामी वृंदावन के गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमूख व्यक्ति थे। कालान्तर में वे हिन्दी के प्रमुख लेखक तथा पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। यद्यपि कुल परम्परा में से वैष्णव मतावलम्बी थे, किन्तु स्वामी दयानन्द के देश भक्ति पूर्ण भावों तथा प्रगतिशील विचारों

के प्रति उनके मन में अत्यन्त आदर भाव था। स्वामी जी के सम्पर्क में आने का यह परिणाम निकला कि गोस्वामी जी बाल-विवाह के विरोधी, विधवा-विवाह के समर्थक तथा हिन्दू समाज में प्रचलित अन्यान्य कुरीतियों के कट्टर टीकाकार बन गये। जिस समय स्वामी जी का वृन्दावन में आगमन हुआ उस समय राधा चरण गोस्वामी की आयु केवल 15 वर्ष की ही थी, परन्तु स्वामी जी के सम्पर्क में आने पर वैष्णव गद्दीधारी महन्त के इस किशोर पुत्र में आशातीत वैचारिक परिवर्तन आया।''[11]

राधा चरण गोस्वामी ने 'यमलोक की यात्रा' नाम का व्यंग्य लेख लिखा। अपनी ही-आकस्मिक मौत पर शोक व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं- ''हा! न सारे हिन्दुस्तान में नागरी का दफ्तर और हिन्दी भाषा का प्रसार देखा। न विधवा विवाह प्रचलित हुआ। न विलायत जाने की रोक उठी। न जाति-पाँति का झगड़ा मिटा। न सिविल सर्विस में भर्ती होकर हिन्दुस्तानियों को उच्च पद मिले। न हमारे जीते जी प्रेस एक्ट उठा।''[12]

सन् 1880 में लिखे गये इस लेख में गोस्वामी जी ने अपनी उन सारी आकांक्षाओं को सूत्रबद्ध किया है जो वे पूरी होते देखना चाहते थे। इस सुधार के विषय में उनकी तीन इच्छाएँ व्यक्त हुई हैं-विधवा विवाह का प्रचलन, विदेश यात्रा से रोक हटे, जाति पाँति का झगड़ा मिटे। इन तीन का सम्बन्ध समाज सुधार एवं राष्ट्र उन्नति से था तथा यह दयानन्द के समाज सुधार के विषय भी थे। ''पंडित राधा चरण गोस्वामी दयानन्द के परम् भक्त प्रशंसक थे। इन्होने वार्तालाप के एक प्रसंग में कहा था कि स्वामी दयानन्द के वाक्य मुझे वेद वाक्यवत् मान्य हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे लिए उदाहरण स्वरूप है। कालान्तर में जब लाहौर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'मित्र विलास' में स्वामी दयानन्द के विरूद्ध अनेक पत्र छपे, तो गोस्वामी जी ने उनका मुहँ तोड़ उत्तर दिया था। स्वामी दयानन्द के जीवन काल में ही उन्होंने भारतेन्दु नामक मासिक पत्र (प्रकाशन काल 1882) प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था जिसमें वे यदा-कदा स्वामी जी के विषय में प्रशस्तिपूर्ण उद्गार प्रकट करते रहते थे।''[13]

राधा चरण गोस्वामी ने 'बूढ़े मुँह मुँहासे' (1886) नामक प्रहसन की रचना की जो एक उल्लेखनीय कृति है। इसमें हास्य-व्यंग्य पूर्ण शैली में धार्मिक पाखण्डों एवं स्त्रियों के प्रति सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए गये हैं।

भारतेन्दु काल के ही दयानन्द से प्रभावित कवि ''पं. भीमसेन शर्मा ये पहले स्वामी दयानन्द जी के दाहिने हाथ थे। संवत् 1940 और 1942 के बीच इन्होंने धर्म संबंधी कई पुस्तकें हिन्दी में लिखी और कई संस्कृत ग्रन्थों नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था।'' [14] तथा स्त्री उद्धारक दयानन्द के लिए नारी जागरण के लक्ष्य को हिन्दी साहित्य जगत में प्रचारित किया।

प्रताप नारायण मिश्र ने महर्षि दयानन्द के मार्ग को अपनाते हुए उनके बाल विवाह निषेध तथा विधवाओं की पीड़ा को समझ कर हिन्दी साहित्य में काफी योगदान दिया। स्त्रियों के चरित्र व शिक्षा के प्रति दयानन्द की पीड़ा को इस प्रकार साहित्य में उतारा-

''निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव पहिचानैं,
स्त्रीगण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यश लेवैं।
झूठी यह गुलाब की लाली, धोवत ही मिट जाय;
बाल-ब्याह की रीति मिटाओ, रहे लाली मुँह छाय।
विधवा विलपैं नित धेनु कटें कोउ लागत हाय गोहार नहीं।'

आर्य समाज की धार्मिक क्रान्ति भी इसी युग में हुई थी और उसका स्वर भारतेन्दु युग की कविता में पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है। इस प्रकार दुरंगी विचारधारा का प्रभाव इस युग में लक्षित होता है।''[15]

दयानन्द ने अपने पूना प्रवचन में स्त्रियों को जाग्रत करते हुए निम्न दृष्टांत दिए थे- ''प्राचीन आर्य लोग पूर्ण युवावस्था पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करते थे, बाल विवाह का उस समय कोई नाम तक नहीं जानता था क्योंकि आर्य इतिहास में प्राय: स्वयंवर का ही वर्णन आता हैं। विधवा-विवाह का प्रचार केवल शूद्रों में था। द्विजों अर्थात् ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्यों में नियोग का प्रचार था। विधवा-विवाह से जो लोग विरोध करते हैं, उनकी पुष्टि करके विधवा-विवाह का खण्डन करने की मेरी इच्छा नहीं है। पर यह अवश्य कहूँगा कि ईश्वर के समीप स्त्री-पुरूष दोनों बराबर हैं क्योंकि वह न्यायकारी है, उसमें पक्षपात का लेश नहीं है। जब पुरूषों को पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी जावे तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जावे। प्राचीन आर्य लोग ज्ञानी, विचारशील और न्यायी होते थे आज कल उनकी संतान अनार्य हो गई। पुरूष अपनी इच्छानुसार जितनी चाहे उतनी स्त्रियाँ कर सकता है। देश, काल पात्र और शास्त्र का कोई बन्धन नहीं रहा। क्या यह अन्याय नहीं? क्या यह अधर्म नहीं?''[16]

यह इस बात का प्रमाण हैं कि तत्कालीन बुद्धिजीवी समाज भले ही भारतेन्दु की तरह एकदम पाखण्ड का विरोध करने में सक्षम न रहा हो किन्तु भीतर का विवेक दयानन्द उनका जगा चुके थे। इसी कारण हिन्दी भाषी बुद्धिजीवी कितनी तीव्रता से स्त्री शिक्षा के प्रसार की जरूरत महसूस कर रहे थे। पं. गौरी शंकर की रचना 'देवरानी जेठानी की कहानी' में ऐसी दो बहिनों की कहानी कही गई जिसमें से एक शिक्षित है और दूसरी अनपढ़। यह हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है और इसकी रचना सन् 1870 में हुई थी। पंडित श्रद्धाराम फिलौरी की रचना 'भाग्यवती' जिसका प्रकाशन सन् 1877 में हुआ और जिसे शुक्ल जी ने 'सामाजिक उपन्यास' की संज्ञा दी है, हिन्दी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास माना जा सकता है। उसकी नायिका भाग्यवती भी एक शिक्षित स्त्री है और जो शिक्षित होने के कारण ही बिना किसी सहारे के जीवन यापन में सक्षम होती है और अपने पति के परिवार का संकट के समय नेतृत्व भी करती है। इस उपन्यास की रचना का मकसद ही यह है कि इससे लोगों तक यह संदेश पहुँचाया जा सके कि स्त्री के शिक्षित होने से घर-परिवार को कितना लाभ पहुँचता है। 1912 के पंचम संस्करण में यह सूचना भी प्रकाशित हुई कि यह एक पाठ्य पुस्तक भी है जिसके लिखे जाने का मकसद स्त्री शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ बाल-विवाह का निषेध करना, विवाह में फिजूल खर्ची पर रोक लगाना आदि है। इस दौर में स्त्री शिक्षा के प्रति मध्य वर्ग में जागरूकता व्याप्त होने का कारण दयानन्द का सम्पूर्ण भारत को जाग्रत करने का अभियान ही था भारतेन्दु युग के लेखकों के योगदान के बारे में खास बात जो यहाँ कहने की है वह यह है कि इस दौर के लेखकों ने लेखों और निबंधों के द्वारा ही नहीं बल्कि कहानियों और उपन्यासों के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्री शिक्षा देश और समाज की उन्नति के लिए कितनी आवश्यक है। सन् 1882 में प्रकाशित पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' स्त्री शिक्षा के ठोस परिणामों को हमारे सामने लाती है। यह पुस्तक पंजाब की एक शिक्षित महिला ने लिखी थी जिसने अपना नाम उजागर नहीं किया। हिन्दी जगत के सामने इस किताब को दोबारा लाने का श्रेय डॉ. धर्मवीर को जाता है जिन्होने 1988 में इसको पुन: प्रकाशित करवाया। यह पुस्तक इस बात का ठोस प्रमाण है कि इस अध्याय के प्रारंभ में लिखे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्द पंजाब में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की बदौलत हिन्दी की पैठ हुई यहाँ यह समझने के लिए काफी है कि महर्षि दयानन्द के स्त्री जागरण का प्रभाव हिन्दी साहित्य में किस कदर पड़ा था जिसे गुमनाम हिन्दी स्त्री साहित्यकार से समझा जा सकता है। शिक्षा का

प्रसार स्त्री चेतना को बदलने वाला सिद्ध हुआ है। यह उन्नीसवीं सदी की भारतीय नारी का आजादी का घोषणा पत्र कहा जा सकता है। तत्कालीन स्त्री जाति किस तरह के आर्थिक, सामाजिक और मानसिक बन्धनों में जकड़ी हुई थी उसकी गहरी समझ ही इस अज्ञात महिला को नहीं है बल्कि वह इस बात को पूरे बल के साथ उजागर करती है कि पुरूष प्रधान समाज में किस तरह के दोहरे मापदण्ड प्रचलित हैं वह एक ऐसे समाज की पक्षधर है जिसमें स्त्री और पुरूष के लिए एक से अधिकार और एक से कर्त्तव्य हों। वह उन महान् पुरूषों का आदर के साथ उल्लेख करती है जिन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए प्रयत्न किया और जो स्त्रियोँ को सदियों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील रहे। उक्त पुस्तक में व्यक्त विचार एक स्त्री ही पेश कर सकती है एक अर्थ में इसे हिन्दी की पहली नारीवादी रचना भी कहा जा सकता है। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि यह रचना लम्बे समय तक अज्ञात रही।

इस युग के लेखकों में प्रताप नारायण मिश्र ने 'नारी' बाल कृष्ण भट्ट ने 'बाल-विवाह', 'स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा', 'महिला स्वातंत्र्य' जैसे सर्वाधिक समर्थ निबन्धों के माध्यम से स्त्रियोँ की स्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया है। गोपाल शर्मा शास्त्री ने 'दयानन्द दिग्विजय' (1881), प्रताप नारायण मिश्र ने 'आर्य चरितामृत' (1884), बलभद्र मिश्र ने 'स्वामी दयानन्द महाराज का जीवन चरित्र' (1897) आदि जीवनी साहित्य लिखकर दयानन्द के स्त्री जागरण, राष्ट्र जागरण, भाषा जागरण को बड़ी तत्परता से बल प्रदान किया।

भारतेन्दु युग में जो नव युग की चेतना का प्रसार हुआ जिसमें स्त्री का बालक पति होने का दु:ख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उसके अनेक भावी अमंगल और अप्रीतिजनक परिणाम तथा भ्रूण हत्या, शिशु हत्या आदि को मिटाने के उपाय आदि का जो साहित्य में समायोजन हुआ और तत्कालीन कवियों ने इस स्त्री दु:ख को सम्पूर्ण साहित्य में अंगीकार किया उसे पहले ही दयानन्द पूना प्रवचन पुस्तक में कह चुके थे। उनकी स्त्रियोँ के प्रति पीड़ा देखने योग्य है- ''प्राचीन आर्य लोगों में गार्गी, मैत्रेयी आदि कैसी-कैसी विदूषी स्त्रियाँ हो गई है। आज कल स्त्री को विद्या पढ़ने का अधिकार नहीं वह शूद्र के समान है। यदि स्त्रियाँ पढ़ी लिखीं होती, तो इन पंडितों की बड़बड़ाहट का खण्डन करके एक घड़ी में इनका मुँह बन्द कर देती। यदि इस समय हम लोगों में बाल विवाह प्रचलित न होता, तो विधवाओं की संख्या कभी इतनी न होती और न इतने गर्भपात और भ्रूण हत्याएं होती और न इतने रोगों की अधिकता होती । प्राचीन समय में यदि धनाढ्य पुरूष नि:संतान होता, तो आर्य सभा की व्यवस्था से उसका दायद वारिस नियत होता था।'' विवाह में परस्पर स्त्री-पुरूषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि दोनों के मन चित्त आदि एक होंगे और वे कभी एक दूसरे के विरूद्ध कोई काम न करेंगे। बचपन में विवाह होने से भला लडका-लड़की इन बातों को क्या जान सकते हैं और उन मंत्रो का अर्थ करके कोई समझाता भी नहीं है। पंडित लोग कहते है कि केवल मंत्र के सुनने से पुण्य होता है, चाहे मंत्र बोलने वाला उसका अर्थ समझे या न समझे। ब्राह्मण को दक्षिणा दे दी कि सब विधान ठीक-ठाक हो गया। वाह रे! तुम्हारा सामाजिक प्रबन्ध। इस अन्ध परम्परा को देखकर तो मानना पड़ता है कि इससे विधवा-विवाह सब प्रकार अच्छा है। ''नियोग का उस समय प्रचार था। पुनर्विवाह की अधिक आवश्यकता ही नहीं होती थी। अब इस समय में नियोग और पुनर्विवाह दोनों के बन्द होने से आज कल के आर्य लोगों में जो-जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है, वह आप लोग देख ही रहे हैं। हजारों गर्भ गिराये जाते हैं, भ्रूण हत्याणं होती हैं।'' इस प्रकार भारतेन्दु काल के साहित्यकारों के मस्तिष्क में जो नव जागरण के पुनरूत्थानवादी वैज्ञानिक विचार आए वे सब महर्षि दयानन्द की वैज्ञानिक दृष्टि की ही उपज थे।

स्त्री शिक्षा का असर इस रूप में भी दिखाई देता है कि सदी के अन्त तक हिन्दी में स्त्री लेखिकाएं भी सामने आने लगी थी। इसके अतिरिक्त दयानन्द काल में उनके विचारों से प्रेरित लेखन करने वाली महिला रचनाकार ऐसी कई महिलाएं भी थी जिनका नाम हिन्दी के साहित्य इतिहासों में लगभग नहीं के बराबर है। ''श्रीमती राज रानी देवी का जन्म अगस्त में सन् 1869 में मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर जिले में पिपरिया नामक ग्राम में हुआ था एक शिक्षित परिवार में जन्म लेने वाली राज रानी देवी का विवाह मात्र 13 वर्ष की अवस्था में लक्ष्मी प्रसाद के साथ हुआ था। लक्ष्मी प्रसाद सरकारी नौकरी में थे। जिसके कारण राजरानी के भीतर छिपे लेखन के बीज का अंकुरण हुआ। मध्य प्रदेश के विभिन्न नगरों में रहने और वहाँ के अनुभवों ने राजरानी को गहरे तक प्रभावित किया और वे लेखन कार्य में जुट गई थीं। अपने समय की स्त्रियोँ की दुर्दशा देखकर उनका मन हाहाकार कर उठता था। भारत की महिलाओं को सम्बोधित करती हुई उनकी पंक्तियों का उद्धरण दृष्टव्य है:-

देवियों क्या पतन अपना देखकर,
नेत्र से निकतले हैं नहीं।
भाग्य हीना क्या स्वयं का लेखकर,
पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं।।

श्रीमती राजरानी देवी की रचनाओं में भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय चेतना और समाज की विसंगतियों का मुखर चित्रण हुआ है। यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात किया था उसी प्रकार राज रानी देवी ने स्त्री रचनाकारों में अपनी एक अलग पहचान बनाई थी। इनकी 'प्रमदा प्रमोद' व 'सती संयुक्त' उस समय की पत्रिकाओं 'चादे', 'मनोरमा' व 'उषा' आदि में प्रकाशित होती रहती थी।' यह एक उदाहरण मात्र है यहां कई गुमनाम स्त्री लेखिकाएं अनुसंधान करने पर इस युग में प्राप्त है जिनका साहित्य भारतेन्दु युग में स्वामी दयानन्द के हिन्दी व स्त्री जागरण की प्रेरणा से विशालता लिए हुए है जो तत्कालीन युग के स्त्री विमर्श पर अनुसंधान करने को प्रेरित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं.डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं-447
2. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती: डॉ.भवानीलाल भारतीय, पृ.सं-137
3. महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी: प्रो.भवानीलाल भारतीय, पृ.सं-14
4. निष्काम परिवर्तन पत्रिका, सितम्बर 2008, पृ.सं-4
5. महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी, प्रो भवानीलाल भारतीय, पृ.सं-15-16
6. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द: वासुदेव वर्मा, पृ.सं-38
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास: आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पृ.सं-263
8. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती: डॉ. भवानीलाल भारतीय,पृ.सं-201
9. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द: वासुदेव वर्मा, पृ.सं-39
10. पं.हजारीलाल दिवेदी ग्रन्थावली-3, पृ.सं-481
11. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती: डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं-208-209

12. राधा चरण गोस्वामी की चुनी रचनाएं, पृ.सं-27
13. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती: डॉ. भवानीलाल भारती, पृ.सं-218
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं-261
15. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां: डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल, पृ.सं-405
16. उपदेश मन्जरी: स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृ.सं-119
17. वही, पृ.सं-119-122
18. हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास: नीरजा माधव, पृ.सं-79

****

A Study of Relationship Between Over Buying from Malls and Financial Distress

Nalini Udaram Lambat *

Introduction - Marketing refers to activities undertaken by a company to promote the buying or selling of a product or service. Marketing includes advertising, selling, and delivering products to consumers or other businesses. Service quality, features & consumer satisfaction plays vital role in Marketing. Customer satisfaction leads to customer buying behaviour & consumer buying behaviour further leads to buying pattern. Indian Retail Industry has huge potential as India has the second largest population with prosperous middle class, rapid urbanisation and solid growth of internet.

Technological impact of globalization in India: Globalization has a significant impact on people, there is an access to television grew from 20% of the urban population (1991) to 90% of the urban population (2009). Satellite television has a grown-up market in rural areas. We can see Internet facility in urban area and extension of internet facilities even to rural areas.

Initially the retail industry in India was in the unorganised form, but post liberalization era and with the change of taste and fondness of the consumers, the retail industry is getting more and more popular now a days and also getting organised as well. Shopping malls can be seen in Tire I & Tire II cities.

Marketing Strategies: "Now a day's business is becoming tough. One needs to have a strong strategy, a vision where you want to go plus a strong organization, persistence & patience in order to succeed".

The growing intensity of retail competition due to emerging new trends, formats, technology plus shifts in consumer needs is forcing retailers to devote more attention to long term strategic thinking. The retail strategy provides the direction to the retailers to deal effectively with the customers & competition.

Origin of Research Problem: There was a debate on the emerging format of retailing i.e. Organised retailing

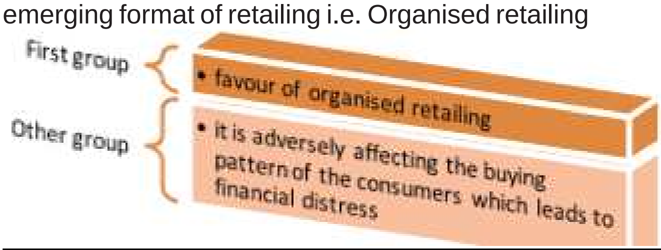

Due to difference in opinion it was worth to study the topic in-depth.

Issue of over buying has become a social issue resulted in financial distress

It's becoming an economic issue

Objectives of the Study:

Objective 1: To study how financial distress is a social issue

Objective 2: To study the factors that leads to over buying

Objective 3: To study the various marketing strategies adopted by Malls to attract consumers

Research Methodology:

Selection of topic: Looking to the structure of current scenario of shopping malls and impact of it on the consumers and their buying patterns the topic appealed the researcher and the said topic was finalised followed by formation on objectives and Hypothesis.

Sources used for Data collection:

Primary Data: Primary data was collected through questionnaire: The questionnaires were aimed at getting the information from the customers purchasing essential commodities and house hold items from wither formats. At the same time researcher has personally visited the Malls and the information solicited has been judiciously utilised to support the interpretation of the questionnaire.

Secondary Data: The researcher reviewed the secondary data in the form of articles, advertisements from the newspapers; pamphlets and leaflets inserted in the newspapers and websites of the organised retailers. In

*Research Scholar, C.P. and Berar College, Mahal, Nagpur (Mh.) INDIA

addition to the secondary data the researcher personally visited the malls to get the insight of the subject. Through the researcher's personal experience; observations during the mall visits, the researcher has acknowledged various marketing strategies adopted by the malls and over buying. Researcher reviewed various Books, Journals, reports, articles published in the newspapers, Internet, literature regarding international marketing, role of Multinationals in India etc.

Sampling & Data analysis:

- The consumers of shopping malls are the universe of the research
- sampling method used : Random sampling method
- sample size: 100

Objective 1: To study how financial distress is a social issue.

Now a day's people are more inclined towards maintaining their social, financial and emotional status for that they don't feel spending their hard earn money which ultimately leads to over buying and ultimately leads to financial distress.

Economic hardship and financial distress can have shocking effects on families.

Common responses to such devastation include:

1. anxiety
2. depression
3. post-traumatic stress
4. severe grief
5. alcohol or drug abuse
6. overwhelming levels of stress
7. feelings of detachment
8. feeling surreal
9. and other physical and mental symptoms of stress and depression

Above are some of the factors which directly or indirectly responsible for financial distress and the reason becoming a serious social issue as, depressed, anxious, alcoholic people can't make strong positive impact on society.

Objective 2: To study the factors that leads to over buying after in depth study it has been observed that following factors leads to over buying.

There are various reasons for temptation of over buying like variety of products available on display so automatically consumers get attracted, product available in less than maximum retail price, various schemes offered, products are easily available on discounts with easy finance facility so if a person don't have enough money to purchase, he opts finance option.

Malls are successful in attracting consumers by adopting various marketing strategies .It has been observed that a person is happy or in stress prefers to do shopping because shopping makes them feel relaxed but it comes with a cost as knowing or unknowingly it leads to over shopping.

Sometimes people make a purchase to impress/attract someone or to have something bigger and better than others. To look like an expert; to meet a standard of social status, often exceeding what's realistically affordable to make it at least *seem* like you operate at a higher level.

Sometimes people purchase due to peer pressure because their friends want you to.

Addiction**,** this is outside the range of the normal human operating system, but it certainly exists and accounts for over buying

Objective 3: To study the Various marketing strategies adopted by Malls to attract consumers

Various Marketing Strategies adopted by Malls:

1. **Aggressive Marketing:** It has been observed that all Malls are using the aggressive marketing strategy. Malls have been using Newspapers, Banners, TV commercials, Pamphlets, Hoardings, Ratio jingles etc.

It has also been observed that local newspapers are flooded with advertisements mentioning various schemes, offers. Well-designed attractive pamphlets are also distributed along with newspapers through local distributers. Special supplements spanning a few pages of newspapers are published through a special arrangement with the newspapers. Radio commercials and sponsoring particular programme on local FM channels are the ways of marketing.

2. **Differentiated pricing:** Considering the consumer behaviour of the Indian customers, they are shopping mostly on weekends or the evening hours of the week days, to spread the peak hour/day rush to off peak/day small malls use the differed pricing strategy. Price of commodities are lower in off peak hours and days than pick hours and days. For eg: Big Bazar: has adopted the same strategy by keeping Wednesday as a lowest price day with the punch line " HaftekaSabseSasta din".

3. **Finance facilities:** Malls are making tie ups with various financial institutions for eg: Bajaj Fin serve, HDFC etc. thus finance facilities are made available for customers to purchase high values consumer durables like TV, Washing machine, microware or items like furniture.

4. **Long operation hours:** We can see that Malls are open 365 days and almost 12 hours a day for convenience of the customers.

Mall timings	:	
Big Bazar	:	10am to 10 pm
Pantaloons	:	10:00am to 10:00pm

5. **Trained technical staff:** Malls management emphasising on recruiting technically sound staff or in case of freshers technical training is provided. These trained employees assist and guide the customers in case of purchase.

6. **Selling on Less MRP:** Maximum malls charge the price less than maximum retail price printed on the pack.

Big Bazar offers product on discounted prices under various schemes or in case of festivals & weekends.

7. **Festival discounts and special offers:** India being a democratic country having various religions, caste and creed, there are various occasions and festivals for celebrations. Also, it's a human tendency that we like to get something

free of cost or with some discount.

Taking advantage of the human nature Malls prepare their yearly marketing calendar to take the maximum benefit of the opportunities available attached with the festivals and different occasions for eg: Festivals like Republic day Holi, Diwali, RakshaBandhan, Independence day, Ganesh festival, X'mas etc.

8. Bulk purchase and additional discounts: One of the important strategies of Malls are to make their customers buy more than their need. "Buy two get one free" or "Buy one get one free", strategy is further stretched where discounted prices are available on bulk purchase.

9. Exchange offers: Usually people buy some product use them and at the end of the life of the product or good throws them away or if possible, sale them away. For eg: Newspapers, Books, Cloths, consumer durables like furniture, TV, Fridge come under the category that bought and sold as scrap. Due to the fast-changing technology there is one class who buys the product use it for short duration say some months or years and replace it with new one having advance technology and latest features.

Taking all the above facts into consideration Malls come up with the lucrative "Exchange offer "schemes.

10. Free Home delivery: Malls provide the free home delivery service. The free home delivery service is given on certain conditions like the purchases should be more than stipulated amount / or limited to certain distance.

Big Bazar: Home delivery facility is available on purchase on and above

Rs. 2000/- & distance not more than 5 km's

11. Loyalty schemes: Various efforts are taken by organised retailers to retain their customers by offering additional benefits than the normal customer. The additional benefits are in the form of loyalty bonus, additional discount cards, club memberships, etc.

Big Bazar: Free talk time on specific amount of purchase on T24 mobile sim card

12. Community Services: Some Malls are providing space in their retail outlet for commodity activities. In this activity separate notice boards are made available for the customers to post information/queries related to buy or sell of consumer durable items, automobiles etc.

13. Customer Help Desk: Customer Help desk is available in Malls to serve/help customers.

The researcher through the in-depth study of the organised retailers in the study area observed that Malls in the study area adopt one or more of the above marketing strategies to attract consumers.

So, we can say that Over buying is a social issue

Hypothesis

H_1: "Malls always motivates consumers to buy more than the need

Revenues for any outlet/shop increases if the management is successful and effective in making the customer buy more than their need or than their intended purchase. This has multiple benefits of increasing the volume of sales, eliminating competitor's business, increasing bargaining power during purchasing from manufacturers. Adopting the various marketing strategies malls tempt customers to buy more than their need.

The researcher to gain an insight related to Malls success in motivating the customers to buy more than their need tested the hypothesis:

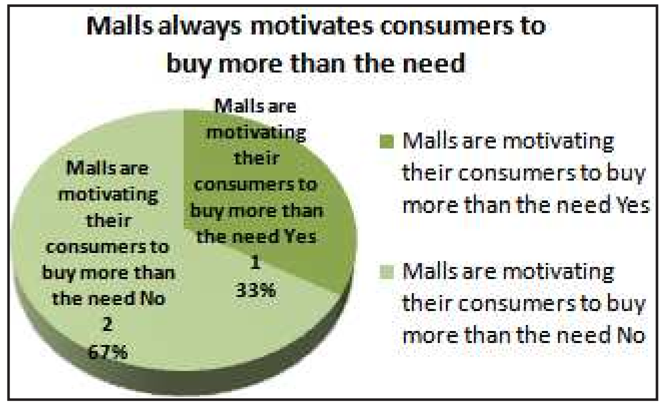

The above table and graph revels that 67% respondents are of the opinion that various schemes offered by the malls make them buy more than their need and 33% respondents are of the opinion that various schemes offered by malls does not attract them to buy them more than their need.

So, we can say that Malls always motivates consumers to buy more than the need.

Conclusions and findings:

- Through the in-depth study it has been observed that organized retailers adopt one or more marketing strategies to attract their consumers
- The above facts and discussion also confirm that marketing strategies of malls have considerable impact on the customers
- Over buying leads to financial distress and becoming a serious social issue which needs to be addressed

Solution to avoid financial distress

- Self-realisation that it's not going to affect my financial status at all
- Focus on priorities
- Focus on savings & future
- Government can play a vital role by social awareness campaign educating people
- Department of Consumer Affairs to take a lead through championing like " JagoGrahakJajo" or similar one highlighting,
- "One of the major effects is that people tend to spend more than their pocket leaving them with major debts and no savings"

What Does "JagoGrahaoJago" Does

- The department of consumer affairs runs a "jagograhakjago" multimedia campaign to create awareness amongst consumers about their rights, redressal mechanisms available to them as well as their duties.

"Jagograhakjago" campaign stated in the year 2005

References :-

1. Market information survey of household report Saxena R. Marketing Management New Delhi, Tata Macgraw-hill Y.K. Singh &RuchiraNath: Research Methodology, New Delhi http://www.siu.edu.in/
2. Chetan Bajaj, RajnishTuli, NidhiShrivastava, Retail Management, Oxford University press.
3. https://www.civilserviceindia.com/subject/General-Studies/notes/effects-of-globalisation-on-indian-society.html
4. https://www.civilserviceindia.com/subject/General-Studies/notes/effects-of-globalisation-on-indian-society.html
5. https://study.com/academy/lesson/what-is-customer-satisfaction-definition-examples-quiz.html
6. https://en.wikipedia.org/wiki/Jago_Grahak_Jago
7. https://www.google.co.in/search?q=jago+grahak+jago+campaign& source=lnms&tbm=isch&sa=X&ved=0ahUEwjOoL3UyPziAhXWZSsKHSo5AZwQ_AUIECgB &cshid=1561188598460845&biw=1366&bih=625
8. https://www.google.co.in/search?biw=1366&bih=625&tbm=isch&sa=1&ei=P9kNXZatMpP39QPz0pbACg&q=customers+purcashing+from+malls&oq=customers+purcashing+from+malls&gs_l=img.3...5180.16791..17599...5.0..1.387.8805.0j25j11j5......0....1..gws-wiz-img.....0..0j0i67j0i8i30j0i24.V94uya1HrVc
9. https://www.aamft.org/Consumer_Updates/Financial_Distress.aspx
10. https://www.van-haaften.nl/customer-satisfaction/customer-satisfaction-models/59-conclusion-customer-satisfaction-research
11. https://www.cxotoday.com/story/atm-maker-diebold-banks-on-india-market-demonetization-for-growth/
12. https://www.clickz.com/what-makes-people-buy-20-reasons-why/49355/
13. https://www.investopedia.com/terms/m/marketing.asp

****

एलोरा गुफा चित्रों का सौन्दर्य

डॉ. निशा गुप्ता*

शोध सारांश – एलोरा भित्ति चित्र में अजन्ता गुफा चित्रों के समान ही अलंकरण व सुन्दरता का संसार बसा हुआ है। एलोरा भारतीय पाषाण शिल्प व स्थापत्य कला का सार है। ये गुफाएँ महाराष्ट्र के ज्वालामुखीय बेसाल्टी संरचनाओं से काट कर बनायी गयी है। जिन्हें दक्खन ट्रेप कहा जाता है जिन पहाडियों को काटकर गुफाएँ बनायी गयी है वे दक्कन की सह्यादि पर्वतमाला का हिस्सा है तथा भूवैज्ञानिक कालवधि के अनुसार क्रिटेशियस युग के समकालीन है यह क्षेत्र अपनी प्राचीनता के कारण भी प्रसिद्ध है। यह अति प्राचीन समय से ही आबाद हो गया था। पूर्व पाषाणकाल, मध्य पाषाणकाल में काम आने वाले पत्थर के औजार इस तथ्य का प्रमाण देते हैं।
शब्द कुंजी –अलंकरण, सौन्दर्य, कैलाश, आकर्षक, राष्ट्रकूट।

प्रस्तावना – अन्य राजवंशो की भाँति ही राष्ट्र कूट वंश (8वीं शती से 10वीं शती तक) का उदय एवं विकास पौराणिक गाथाओं में उलझा हुआ है। दन्तिदुर्ग इस वंश का प्रथम शक्तिशाली राजा हुआ और उसने वातायी चालुक्यों को हराया। गुर्जर प्रतिहार, मालवा, लाल, कांची, कलिंग, कौशल जैसे राजवंशो के नरेशो को परास्त किया। उसके पश्चात उसका चाचा कृष्ण राज्य का उत्तराधिकारी बना। कृष्ण ने एलोरा में प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर बनवाया। उत्तरोत्तर काल में अन्य राष्ट्रकूट राजाओं ने उत्तर भारत के कई राजाओं का अभिमान चूर किया। अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कक्क द्वितीय था जिसकों चालुक्य राजा तैलय द्वितीय ने 973 में आक्रमण करके नष्ट कर दिया था।

स्थानीय रुप से वैरुल श्रेणी नाम से जानी जाने वाली एलोरा गुफाएँ महाराष्ट्र राज्य में औरंगाबाद से 29 कि0मी0 तथा अजन्ता से 135 कि0मी0 दूर है। एलोरा बौद्ध ब्राह्मण व जैन तीनों धर्मो की पावन त्रिवेणी हैं, यहाँ तीनों धर्मो की 34 गुफाएँ है। जिसमें गुफा संख्या 11 से संख्या 12 तक बौद्ध गुफाएँ है जो 350 से 700 तक उत्खनित हुई थी, दूसरे समूह गुफा संख्या 13 से संख्या 29 तक ब्राहमण धर्म सम्बन्धी गुफाएं है जो 8वीं शती से 10वीं शती के मध्य बनाई गयी थी तथा तृतीय समूह में संख्या 30 से 34 तक की जैन गुफाएँ है जिनका निर्माण 9वीं शती से 12वीं शती के मध्य हुआ। इस प्रकार प्राय: 900 वर्षो तक ऐलोरा में कला की अविरल धारा प्रवाहित होती रही।

यहाँ प्राप्त शिला लेख के अनुसार इस स्थान का प्राचीन नाम ऐलापुर– अचल था। कालान्तर में इस ऐलापुर का मुखसुखी रुप ऐलोरा के नाम से व्यवहार में आने लगा। ऐलोरा नाम ही प्रत्येक को प्रेरित करता है क्योंकि यह सम्पूर्ण विश्व में सबसे बडी चट्टान को काट कर बनाए गये मठ मन्दिर परिसरों में से एक है।

एलोरा में भित्तिचित्र कई गुहा मन्दिरों में मिलते है। काल चक्र के अनुसार प्रारम्भिक भित्ति चित्र ब्राहमण गुफाओं में सिरमौर कैलाश गुहा मन्दिर में मिलते है। भित्ति चित्रों के रंगो से सुसज्जित होने के कारण मन्दिर के मुख्य भाग को रंगमहल भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण मन्दिर एक पहाड़ी चट्टान को काटकर एकाश्मक शैली में बनाया गया है। इस शैल मन्दिर को राष्ट्रकूट राजा कृष्ण प्रथम ने बनवाया था। सम्पूर्ण मन्दिर कैलाशपति शिव को समर्पित है।

पर्सी ब्राउन की अवधारणा है– 'कैलाश एक ऐसा उदाहरण है जब मनुष्य का चित्त, हृदय व हाथ एक साथ मिलकार एक उच्च आदर्श की स्थापना हेतु कार्य करते है।'

कैलाश मन्दिर संसार में अपने ढंग का अनूठा वास्तु जिले मालखेड स्थित राष्ट्रकूट वंश के नरेश कृष्ण प्रथम (760 – 753 ई0) ने निर्मित कराया था यह एलोरा स्थित लयण श्रंखला में है। अन्य लयणों की तरह भीतर से कोरा तो हो ही गया, बाहर से मूर्ति की तरह समूचे पर्वत को तराश कर उसे द्रविड शैली के मन्दिर का रुप दिया गया है। अपनी समग्रता में 276 फिट लम्बा व 154 फिट चौड़ा यह मन्दिर एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। इसका निर्माण ऊपर से नीचे की ओर किया गया है। इसके निर्माण के क्रम में अनुमानत: 40 हजार टन भार के पत्थरों को चट्टान से हटाया गया है। फिर इस पर्वत खण्ड को भीतर बाहर से काटकर 90 फिट ऊँचा मन्दिर गढ़ा गया है।

कैलाश मन्दिर में अंकित प्रमुख चित्र इस प्रकार है –

1. कमल पुष्प पत्र के आंलकारिक आलेखन में हस्ति आकृति
2. नटराज की एक आकर्षक चतुरा मुद्रा
3. लक्ष्मी नारायण गरुड़ पर सवारी करते हुए
4. बादलों मे विचरते विद्याधर
5. युद्ध दृश्य

कैलाश मन्दिर के भित्ति चित्रों के बाद 10वीं 12वीं शती में निर्मित जैन गुफाएं किसी समय पूर्ण रूपेण चित्रित थी। इन गुफाओं की रूप रौनक को धुएं की कालिख ने सदैव के लिए समाप्त कर दिया इस समूह में इन्द्र सभा नाम की एक सुन्दर दुमंजिली गुफा है। जहाँ कालिख के झीने परदे में से झांकती हुई कुछ चित्र छवियाँ देखने को मिलती है।

1. महिष पर आरूढ यम का चित्र
2. कल्पसूत्र से समबन्धित कथाओं का चित्रण
3. कमल युक्त अलंकृत बेलि।

* एसोसिएट प्रोफेसर, जे0के0पी0 पी0जी0 कॉलेज, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) भारत

ऐलोरा के भित्ति चित्रों में अपभ्रंश वाले लक्षण दिखाई देने लगे थे और अजन्ता वाली उदात्त गरिमा लोप हो गयी थी। जैन मन्दिरों की छतों में चित्रकारी मिलती है। 9वीं शती में निर्मित इन्द्र सभा नामक मन्दिर में काफी चित्र नष्ट हो चुके है। इनमें एक चित्र विशेष रुप से ऐलोरा चित्रों की विशेषता को प्रकट करता है तथा बहुत सुन्दर है। जो कि जैन धर्म से सम्बन्धित है। इसमें कुछ दिव्य आकृतियाँ बनी हुई है। एक मुकुटधारी पुरूष आकृति के दोनो ओर दो महिलायें है एक ने अपना बायां हाथ पुरूषाकृति के गले में डाला हुआ हे। तथा आभूषणों से युक्त है। दूसरी महिला हाथ में कुछ लिए हुए साथ ही हैं नीचे एक बौना बना हुआ है।

पृष्ठ भूमि में बादल बने हुए है। लगता है ये दिव्य आकृतियाँ आकाश में उड रही है। कुछ कमल पर आधारित आलेखन भी है।

ऐलोरा के भित्ति चित्रों की विशेषताएं :

1. यहाँ दो प्रकार के चित्र है। एक तो बिल्कुल अजन्ता शैली से मिलते है और दूसरे चित्रों में ह्रास के दर्शन होते है। कमल सरोवर में हाथी तथा इन्द्र सभा में चित्रित दिव्य आकृतियाँ बहुत सुन्दर है तथा अजन्ता के ही स्तर की प्रतीत होती है। परन्तु गरूड़ पर आरूढ़ वैष्णवी में हमें अपभ्रंश शैली के दर्शन होते है।
2. आकृतियों का अलंकरण भी दो प्रकार का है। एक बहुत सुंन्दर दूसरा वहीं अपभ्रंश शैली जैसा
3. बादल रूई के ढेर से लगते है। यद्यपि उन्हें रेखाओं द्धारा बांधा गया है।
4. अपभ्रंश शैली का प्रारम्भ यहीं से होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. आर0 ए0 अग्रवाल – कला विकास
2. मदनजीत सिंह – अजन्ता
3. लोकेश चन्द्र शर्मा (1995) – भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास गोयल पब्लिशिंग हाऊस मेरठ।
4. डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा – भारतीय चित्रकला का इतिहास
5. डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला

****

मादक द्रव्यों का सेवन एक मनौवैज्ञानिक समस्या

डॉ. सरिता माथुर*

प्रस्तावना –

1. सॉरी आज नहीं आ पाउगा,
2. सिर भारी हो रहा है,
3. मम्मी सोने दो ना अब,
4. रात को कार में टक्कर लग गई,
5. सुबह से उल्टी हो रही है, कल रात को मोनू ने बहुत पिला दी,
6. हैंगओवर हो रहा है,
7. नहीं बेटा, आपको होमवर्क में हेल्प नहीं कर पाउंगा। मुझे पता है कल तुम्हारा टेस्ट हैं,
8. सॉरी पापा, आपकी दवाई नहीं ला पाया, रात को अमित के यहां थोडी ज्यादा हो गई, कितनी बार मैने कहा है कि तुम्हारी मम्मी की तबीयत पूछने आज नहीं जाएंगे, मै खुद ठीक फील नहीं कर रहा हूँ,
9. नहीं अभी नहीं जाउंगा, यह टाइम घर पर चिल करने का हैं।

हमारे घरों में या रिश्तेदारों के यहां इस तरह अनगिनत बातें और बहाने हम सुनते है। क्या हमारे समाज में इन बातों पर विचार हो रहा है?
शायद नहीं।
क्या कारण है?

क्या है यह नए? हम इस पर जरा मनन करें। वैसे तो मादक पदार्थो के बहुत प्रकार होते है, यथा चरस, गांजा, हशीश,अल्कोहल, तंबाकू एवं अन्य विश्राति दायक दवाएं। जिस समाज में हम रहे है वहां शराब एवं तंबाकू का प्रचलन सदियों से चलता आ रहा है। समाज के प्रत्येक वर्ग में इसका चलन होता है, जिसके पीछे प्रारंभ में:-

1. जिज्ञासावश,
2. सामाजिक बनने के लिए,
3. दिखावे के लिए,
4. जीवन की विभिन्न समस्याओं को भूलने और

भय, चिंता, तनाव को दूर करने के लिए और उल्लास के भाव उत्पन्न करने के लिए आदि आदि कारणों से नशे का सेवल अधिक मात्रा में करते करते धीरे-धीरे उन्हें आदत हो जाती है और अगर पीने को ना मिले तो वह व्यक्ति व्याकुल, चिडचिडा गुस्सैल और आक्रमक हो जाता है।

प्राय: हम देख रहे है कि इसका वंशानुगत कारण भी है परिवार के बडे बुजुर्ग नशे के आदी हो गए है तो उनके बच्चे भी उनका अनुसरण करने लगते है और कुछ समय में वह अपनी वास्तविक जगत की असफलताओं वह निराशा से अपने को मुक्त कर के काल्पनिक दुनिया में पहुंच जो है, जहां उनके दुख, चिंता,भय प्रसन्नता एवं उल्लास में परिवर्तित हो जाते है और धीरे-धीरे उन्हें आन्नद की अनुभूति होती है।

मद्यपान के दुरूपयोग एवं निर्भरता की चर्चा करते हुए हम कैसे पहचान करे कि हमारे घर के व्यक्ति नशे पर निर्भर हो रहे है। अधिकांश समय मादक पदार्थ को प्राप्त करने में या उसके प्रभाव से मुक्ति पाने में बीतता हो, उसे परिवार में जहां शराब पार्टी ना हो वहां जाने में आनाकानी करना, व्यक्ति उस परिस्थिति में मादक पदार्थ का सेवन जारी रखता हो जबकि उसके सेवन से दैहिक समस्यांए उत्पन्न हो जाती है मादक द्रव्य की मात्रा बढाने पर भी नशे का प्रभाव पहले की तुलना में कम होता है, नशे का सेवन न करने पर नींद ना आना, शरीर दुखना, सिर भारी होना, नशे का उपयोग कई घंटे तक करना, रिश्तेदारों के कार्यक्रम में सम्मिलित होने की आवृत्ति में कमी होना, लोगो से मिलना जुलना कम करना। जब व्यक्तियों के रक्त में अल्कोहल की मात्रा 0.01 प्रतिशत हो जाती है तो वह मदहोशी के अवस्था होती है, 0.03 प्रतिशत उनके चिंतन एवं भावनाओं में हल्का फुल्का परिवर्तन, 0.06 प्रतिशत मानसिक जोश और बातुनी होने पर व्यक्ति को प्रदर्शित करता है, 0.07 प्रतिशत काफी बिगड जाता है। अति हमेशा बुरी होती है। वास्तविकता यह है कि पीने वाले को यह एहसास नहीं हो रहा है, सबसे अधिक प्रभावित माता-पिता एवं पत्नी, बच्चे होते है, यदि पारिवारिक कलह से बचना है तो जीवन समझौता वादि स्थिति में चलता रहता था और चल रहा है पर नई पीढी की स्त्रियों को पति का व्यवहार उचित नहीं लगता, तनाव बढना एवं परिवार टूटने की नौबत भी आने लग गई है। चिंता का विषय यह है कि समाज में अधिकांशत नौकरी पेशा मध्यम तथा उच्च मध्यम वर्ग के लोग है जो अपने परिश्रम की कमाई का बडा हिस्सा इन मादक पदार्थो पर लूटा रहें है। हमारे समाज में समाजोपयोगी कार्य में योगदान देने का प्रतिशत लगभग नगन्य है। इससे समाज में अधिक प्रगति तो कतई नहीं हो रही है, और तो और शादी ब्याह में यह स्टेटस सिंबल है कि 'कितनी बोतल खुली' यह पैसा वर वधू के के आर्थिक भविष्य को संवारने में लगाएं तो कितना अच्छा होगा क्योंकि हमारे लिए अब सरकारी नौकरी नहीं है वह जमाना वास्तव में चला गया जहॉं हर घर में एक सरकारी इंजीनियर डॉक्टर होते थे। इस आलेख को सरल भाषा में लिखने का उद्देश्य मात्रा इतना है कि समय रहते हम जग जाए और आने वाली पीढियों को अच्छा और सुरक्षित भविष्य दे सकते है वरना अपने पूर्वजों की कोठियों, संपत्तियों को बेचकर दिखवा पसन्द शादियों में पानी की तरह अल्कोहल को बहा बहा कर क्षणिक सुख पा सकते है। नशे को छोडना कठिन है, असंभव नहीं है। इस आदत को कम भी किया जा सकता है यदि व्यक्ति स्वयं में इच्छाशक्ति को मजबूत करें। डिटॉक्सिफिकेशन जिसमें चिकित्सक की निगरानी में दवाइयों के द्वारा नशे से मुक्ति पाई जा सकती है। नशा मुक्ति

* व्याख्याता (मनोविज्ञान) राजकीय एसएमएम महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.) भारत

केन्द्र से संपर्क करके, मनौवैज्ञानिक सलाह द्वारा भी नियंत्रण किया जा सकता है और समाज में समय-समय पर जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन करके तथा समाज के प्रबुद्ध सदस्य एक कठो नियमावली बनाएं जैसा अन्य जाति व समाज में होता है उसमें प्रत्येक आयोजन पर खर्च करने वाली राशि का उच्चतम् सीमा का निर्धारण करें। प्रत्येक खर्च की सीमा निर्धारित करके अनावश्क खर्च पर अंकुश लगाया जाए। इस सम्बन्ध में लघु कथा के माध्यम से आलेख को समाप्त करना चाहूँगी कि एक 'क' व्यक्ति जिनकों बहुत खांसी हो रही थी तो सामने वाले 'ख' व्यक्ति ने कहा कि एक चम्मच ब्रांडी ले लो तो 'क' ने कहा क्या एक चम्मच से खांसी जा सकती हैं 'ख' ने कहा कि मेरा तो रूपया, पेसा, राज पाट सब चला गया, तुम्हारी खांसी क्या चीज है। कहने का तात्पर्य यही है कि जहां चाह वहां राह।

अपनी राहें नव प्रकाश से प्रशस्त करें और समाज में नशे के दुरूपयोग से मुक्त होकर धन संचय कर एक दूसरों को आर्थिक सामजिक संबल प्रदान करें। सम्यंत वर्तमान की दुखद स्थिति में सुधार हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान: Modern Abnormal Psychology, Year 2012
2. https://www.apa.org >topics >trauma

****

भारत की सामाजिक परम्पराओं मे परिवर्तन

डॉ. हरिचरण मीना*

शोध सारांश – भारत मे परम्पराओं का सदैव ही महत्व रहा है। परम्पराएं परिवर्तनशील हैं। परिवर्तन एक सार्वभौमिक तथ्य है और कोई भी समाज इससे अछूता नहीं रह सकता, चाहे वह आदिम हो या आधुनिक परिवर्तन की अवधारणा सर्वव्यापक है। इसके रूप और घटक समय और स्थान के अनुसार भिन्न हो सकते हैं।

परम्पराए एक समय एवं स्थान सापेक्ष होती हैं। एक निश्चित सामाजिक परम्परा के संबंध में परिवर्तन को समय और इतिहास के तत्वों के संदर्भ में देखा जाता है। मैकाइवर और पेज ने कहा है 'समाज का अस्तित्व समय की एक श्रृंखला मात्र के रूप में हैं। यह परिणत हो रहा है, अस्तित्वपूर्ण वस्तु नहीं है। वर्तमान संबंधसूत्रता की प्रक्रिया और परिवर्तित संतुलन है, अधिकतर लोग परिवर्तन का स्वागत करते हैं क्योंकि परिवर्तन वर्तमान पद्धतियों में विविधता लाता है और विविधता को जीवन का आनन्द माना जाता है। किन्तु आकस्मिक और तीव्र परिवर्तन के क्षणों में यथास्थिति में लौटने की इच्छा या गृहातुरता दिखाई देती है। भारत में सामाजिक परिवर्तन के दो पहलू हैं। इनमें प्रथम है, देश के बाहर से पढ़ने वाले प्रमुख प्रभाव और दूसरा है, भीतरी विकास, बाहर से जितने भी हमलावर यहाँ आये उन सभी ने देश के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पहलुओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। विश्व के अधिकतर अन्य क्षेत्रों में उभरती सभ्यताओं ने अपनी पूर्ववर्ती सभ्यताओं का स्थान ले लिया, किन्तु भारत में पुरानी और नई सभ्यताएं साथ–साथ चलती रही हैं। यहां तक कि आज भी एक तरह की विषमता विद्यमान है। इसका कारण यह है कि विविध सांस्कृतिक रूपों को स्वीकार करना भारत की मूल प्रवृत्ति रही है। सभ्यताओं का स्वांगीकरण या एकीकरण भारत में महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया।

शब्द कुंजी – सामाजिक परम्परा, सदैव,परिवर्तन, सर्वव्यापक, संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, छोटी और बड़ी परम्पराए, बहुदेववादी, जादुई और गैर दार्शनिक, प्रभुत्व सम्पन्न।

प्रस्तावना – परिवर्तन प्रकृति का अटल एवं शाश्वत नियम हैं। परिवर्तन एक सार्वभौमिक तथ्य है और कोई भी सामाजिक परम्परा इससे अछूती नहीं रह सकती, चाहे वह आदिम समाज की परम्परा हो या आधुनिक समाज की परम्परा हो। परिवर्तन की अवधारणा सर्वव्यापक है, इसके रूप और घटक समय और स्थान के अनुसार भिन्न हो सकते हैं। भारत में सामाजिक परिवर्तन के दो पहलू हैं। इनमें प्रथम है, देश के बाहर से पढ़ने वाले प्रमुख प्रभाव और दूसरा है, भीतरी विकास, बाहर से जितने भी हमलावर यहाँ आये उन सभी ने देश के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पहलुओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। विश्व के अधिकतर अन्य क्षेत्रों में उभरती सभ्यताओं ने अपनी पूर्ववर्ती सभ्यताओं का स्थान ले लिया, किन्तु भारत में पुरानी और नई सभ्यताएं साथ–साथ चलती रही हैं। यहां तक कि आज भी एक तरह की विषमता विद्यमान है। इसका कारण यह है कि विविध सांस्कृतिक रूपों को स्वीकार करना भारत की मूल प्रवृत्ति रही है। सभ्यताओं का स्वांगीकरण या एकीकरण भारत में महत्तवपूर्ण नहीं माना गया।

एक निश्चित समाज या सामाजिक अवधारणा के संबंध में परिवर्तन को समय और इतिहास के तत्वों के संदर्भ में देखा जाता है।

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने भारत में सामाजिक परम्पराओ मे परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए प्रमुख रूप से निम्नांकित अवधारणाएं और दृष्टिकोण बताए हैं:

रोबर्ट रेडफील्ड ने छोटी और बड़ी परम्पराओं की अवधारणाओं का इस्तेमाल मैक्सिको समुदायों में सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण करने के लिए किया। इस फ्रेमवर्क का इस्तेमाल करते हुए मिल्टन सिंगर और मैकिम मैरिअट ने भारत में कुछ अध्ययन किए। 'परम्परा का सामाजिक संगठन' सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का आधार है। सिंगर और मैरिट के अनुसार भारतीय सभ्यता का स्वरूप मौलिक रूप या देराज है। इस पर सामाजिक परिवर्तन के बाहरी या विजातीय घटकों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है।

भारत की मौलिक सभ्यता को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है : (1) छोटी परम्परायें और (2) बड़ी परम्परायें। छोटी परम्पराओं के अंतर्गत लोक अथवा अनपढ़ ग्रामवासियों में प्रचलित सांस्कृतिक प्रक्रियाएं आती हैं, जबकि बड़ी परम्पराओं के अंतर्गत आभिजात्य अथवा गिने चुने समृद्ध लोगों में प्रचलित सांस्कृतिक प्रक्रियाएं शामिल हैं। छोटी और बड़ी परम्पराओं के बीच लगातार सम्पर्क बना रहता है। तार्किक दृष्टि से लोक और आभिजात्य के बीच विचारों का निरन्तर प्रवाह और सामाजिक संबंधों का निर्वहन होता है। रोबर्ट रेडफील्ड के अनुसार 'किसी भी सभ्यता में गिने चुने विचारशील लोगों की महान परम्परा और असंख्य सामान्य जनों की छोटी परम्परा होती है।'

महान परम्परा का पोषण स्कूलों और मंदिरों में होता है। जबकि छोटी परम्परा का निर्वाह अनपढ़ ग्रामीण समुदायों द्वारा किया जाता है। दार्शनिकों, ईश–चिन्तकों और शिक्षित लोगों की परम्परा सावधानीपूर्वक पोषित और हस्तान्तरित होती है। छोटे लोगों की परम्परा सामान्यत: तथ्य रूप में मान ली जाती है और उसकी अधिक जांच–पड़ताल नहीं की जाती अथवा उसे अधिक

* व्याख्याता (समाजशास्त्र) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर (राज.) भारत

परिष्कृत या महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता। छोटी परम्परा और बड़ी परम्परा की अवधारणा की विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. दोनों परस्पर आश्रित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इन्हें विचार और कार्य की दो धारायें कहा जा सकता है जो अपनी विशिष्टताएं एक दूसरे में प्रवाहित करती हैं।

2. बड़ी परम्परा का अध्ययन छोटी परम्परा का विकास है, इसलिए वे एक-दूसरे का आयाम हैं।

3. दोनों परम्पराओं में बड़ी परम्परा को अधिक आधुनिक माना जाता है, यह प्रामाणिक समझी जाती है और आभिजात्य वर्ग के लेखन और कार्यो में यह विशेष रूप से व्यक्त होती है और सामाजिक प्रतिष्ठा इसे स्वीकार करने पर निर्भर है। छोटी परम्परा लोकप्रिय अंतर्धारा का अंग है, जिसकी प्रभावशीलता शिक्षित समाज द्वारा महसूस की जाती है, लेकिन आधिकारिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है या कम करके आंका जाता है। बड़ी परम्परा की परिकल्पनाओं को विश्वास कहा जाता है जबकि छोटी परम्परा की परिकल्पनाओं को अंधविश्वास माना जाता है। वास्तव में, किसी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा इनमें से उस परम्परा पर निर्भर हो सकती है, जिसे वह अपने जीवन में अपनाता है। प्रोफेसर जीवोन ग्रुनेवॉम ने 'दराल इस्लाम' में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि समाज में इन परम्पराओं/प्रक्रियाओं के साथ मूल्यों की उच्चता या निम्नता जुड़ी हुई है।

4. रोबर्ट रेडफील्ड के अनुसार भारत की छोटी परम्पराओं का विश्वव्यापी रूप कुल मिलाकर बहुदेववादी, जादुई और गैर दार्शनिक है जबकि महान् वैदिक परम्परा के सूत्रों के माध्यम से अलग-अलग बौद्धिक और नैतिक पहलुओं पर जोर दिया गया है। देव बहुदेववादी और काव्यात्मक है, उपनिषद अद्वैती और आस्तिक है। वैष्णववाद और शैववाद ईश्वरी और नैतिक है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 'रामायण' का गहरा प्रभाव है। वाल्मीकि कृत 'रामायण' संस्कृत ग्रंथ है जबकि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना हिन्दी की एक बोली 'अवधी' में की। समय और स्थान के अन्तरों के फलस्वरूप राम की कथा समझने में कठिन होती गई और इस तरह विभिन्न स्थानीय भाषाओं में उसे लिखा गया।

5. महान परम्परा, यानी संस्कृत परम्परा स्थानीय समुदायों के जीवन रखती है। मौलिक और अभि समूह के प्रति आम लोगों का भारत में व्यक्ति की सांस्कृतिक अनुमानों में भागीदारी को उसकी हैसियत से सम्बद्ध माना जाता है। उन्नीथान, योगेन्द्र सिंह, इन्द्रदेव और एसएल श्री वास्तव ने बड़ी परम्परा को आभिजात्य परम्परा कहा है। उनके अनुसार आभिजात्य और लोक परम्पराएं, जनजातिय संस्कृति सहित भारतीय संस्कृति की दो उपसंस्कृतियां है। ये दोनों एक दूसरे को पूरक है और एक का अस्तित्व दूसरी के बने रहने के लिए अनिवार्य है। अभिजात्य परम्परा अधिक व्यवस्थित विशिष्ट और स्वयं सजग है। जबकि लोक संस्कृति उतनी व्यवस्थित और विशिष्ट नहीं है। लोक संस्कृति आभिजात्य परम्परा से कुछ तत्व ग्रहण करके एक तंत्र के जरिय लोगों में उनका संचार करती है। आभिजात्य परम्परा भी लोक परम्परा से कुछ तत्व उधार लेती है और उन्हें उपर्युक्त परिष्कार के साथ अपनी प्रणाली का हिस्सा बना लेती है।

मैकिम मैरिअट ने किसान गढ़ी में इन दो परम्पराओं के बीच अंतर्सम्बंध का अध्ययन किया। उन्होंने छोटी और महान परम्परा के बीच संचार का वर्णन करते हुए सार्वभौमिकीकरण और स्थानीयकरण की अवधारणा प्रस्तुत की है। सार्वभौमिकीकरण का अर्थ है छोटी स्तर के तत्वों का प्रसार, जो सांस्कृतिक अथवा महान परम्परा का हिस्सा भी बन सकते है इसमें न केवल सांस्कृतिक जागरूकता का बल्कि सांस्कृतिक विषयवस्तु का भी प्रसार होता है। मैरिअट का मानना है कि दीपावली और रक्षाबंधन के पर्वो की लोक परम्परा में गहरी पैठ है। किन्तु श्रीवास्तव की राय इस बारे में भिन्न है। उनका मानना है कि इन त्यौहारों की उत्पत्ति के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। स्थानीयकरण की प्रक्रिया का अर्थ है संस्कृत रूप का विश्वसनीयता के अभाव और उपेक्षा की वजह से कम व्यवस्थित और कम मौलिक रूप में सीमित रहना हैं। इसके अन्तर्गत बताया जाता है कि किस प्रकार बड़ी परम्परा के तत्वों का क्षय होता जाता है और ये लोक परम्परा का हिस्सा बन जाते हैं। मैरिअट इसके लिए गोवर्धन पूजा और नवरात्र उत्सव का उदाहरण देते है। उनका कहना है कि ये स्थानीयकरण की अवधारणा के अंग है शुरू में ये उत्सव आभिजात्य वर्ग द्वारा मनाए जाते थे, लेकिन धीरे- धीरे ये छोटी परम्परा के साथ एकीकृत हो गए और आज केवल लोक अथवा कृषक समुदाय द्वारा ही इन्हें मनाया जाता है। हालांकि किसी विशेष सांस्कृतिक की उत्पत्ति का यह पता लगाना बड़ा कठिन होता है कि उसका सूत्रपात बड़ी परम्परा में हुआ या लोक परम्परा में।

विविध परम्पराएँ – कुछ समाजशास्त्रियों का विचार है कि भारतीय परम्परा के ढाँचे के जटिल स्वरूप को समझने के लिए परम्पराओं का द्विभागीकरण पर्याप्त नहीं है। एस सी दूबे का विचार है कि भारतीय समाज में परम्पराओं की एक व्यवस्थित श्रंखला है। संस्कृतिकरण और प्रभुत्वसंपन्न की अवधारणाओं की भी आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि संस्कृति की अवधारणा में विद्यमान संगठनात्मक गतिशीलता अवास्तविक लगती है वे भारत में परम्पराओं को छह वर्गो में विभाजित करते हैं। ये इस प्रकार है:-

1. शास्त्रीय परम्परा
2. उभरती हुई राष्ट्रीय परम्परा
3. क्षेत्रीय परम्परा
4. स्थानीय परम्परा
5. पश्चिमी परम्परा
6. सामाजिक समूहों की स्थानीय और उप सांस्कृतिक परम्पराएं।

संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणा – भारत में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण अवधारणा को पहली बार प्रोफेसर एम. एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक 'कूर्ग इन मैसूर' में प्रस्तुत किया। संस्कृतिकरण की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा कि 'यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निम्न जातियां या जनजातियां अथवा अन्य समूह उच्च कही जाने वाली जातियों, विशेषकर द्विज जातियों के रीति- रिवाजों कर्मकांडों, विश्वासों, विचारधारा और जीवन पद्धति को अपना लेते हैं' निचली जातियों के लोग उच्च जातियों के लोगों की जीवन शैली की नकल करते हैं और जाति-तंत्र में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अपनी कुछ ऐसी परम्पराओं का त्याग कर देते हैं, जिन्हें उच्च जातियों द्वारा अपवित्र समझा जाता है। सांस्कृतिक एकजुटता की इस प्रक्रिया को दर्शाने के लिए श्रीनिवास पहले ब्राह्मणीकरण शब्द का प्रयोग किया और फिर इसे बदलकर संस्कृतिकरण का नाम दिया। कई अध्ययनों से पता चला है कि निचली जातियों ने कई ऐसे समूहों की भी जीवन पद्धतियों का अनुकरण किया, जो अनिवार्यतः ब्राहमण नहीं थी' योगेन्द्र सिंह के अनुसार, संस्कृतिकरण के दो पहलू हैं : (क) ऐतिहासिक और (ख) संदर्भागत। ऐतिहासिक अर्थ में संस्कृतिकरण भारतीय समाज के समूचे इतिहास में

सामाजिक एकजुटता की प्रक्रिया रहा है। जबकि संदर्भागत अर्थ में संस्कृतिकरण परिवर्तन की एक प्रक्रिया कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया का प्रभाव अलग-अलग क्षेत्र में भिन्न-भिन्न होता है। यहां तक एक गांव से दूसरे गांव में भी इसमें अन्तर हो सकता है। यह अन्तर निर्भर करता है संदर्भ के आन्तरिक घटकों और बाहरी घटकों पर संस्कृतिकरण की प्रकिया दो बातों की सूचक है पहली यह कि भारतीय समाज के कुछ वर्ग सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षित रहे हैं, दूसरी यह कि संस्कृतिकरण के लिए आदर्श बनने वाले कुछ जाति समूहों की स्थिति विशेषाधिकार पूर्ण रही है। एक हद तक इसे 'प्रभुत्व सम्पन्न जातियों' के वर्चस्व पर हमला कहा जा सकता है। श्रीनिवास ने 'प्रभुत्व सम्पन्न जातियों' को गांव के स्तर पर आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक स्तर के अनुरूप परिभाषित किया है। किन्तु आजकल किसी जाति- समूह की संख्या और उसके राजनीतिक अधिकारों को भी जाति प्रभुत्व में जोड़ा जा सकता है। कुछ भागों में कुछ जातियों के अपसंस्कृतिकरण और जनजातीयकरण की प्रक्रियाएं भी दिखाई देने लगी हैं।

श्रीनिवास के अनुसार पश्चिमीकरण से अभिप्राय उन परिवर्तनों के साथ है, जो पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क, विशेषकर 150 वर्ष से अधिक से ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप आये। इस दौरान विभिन्न जाति समूहों विशेषकर उच्च वर्गो ने ब्रिटिश सांस्कृतिक शैली को अपना लिया। सांस्कृतिक अनुकरण के अलावा पश्चिमी विज्ञान, प्रौद्योगिकी, शैक्षिक विचारधारा और मूल्यों के क्षेत्र में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। इससे देश में वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी संबंधी और शैक्षिक संस्थानों को स्थापना हुई और राष्ट्रवाद तथा नए नेतृत्व का उदय हुआ। मानवतावाद और तर्कवाद के मूल्य पश्चिमीकरण की अवधारणा का आधार हैं। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण की तुलना करते हुए श्रीनिवास उपरोक्त मूल्यों की वजह से पश्चिमीकरण को प्राथमिकता देते हैं। उनका तर्क है कि आधुनिकीकरण में लक्ष्यों की युक्तिसंगतता पूर्वानुमानित होती है, जिसे अंतिम विश्लेषण में आवश्यकता नहीं कहा जा सकता। चूंकि मानवीय लक्ष्य मूल्य प्राथमिकताओं पर आधारित होते हैं और केवल साधनों की ही युक्तिसंगतता पूर्व निर्धारित की जा सकती है, सामाजिक कार्रवाई की छोटी और बड़ी परम्पराएं परिणति की नहीं। श्रीनिवास के अनुसार पश्चिमीकरण के तीन स्तर हैं : प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक प्राथमिक स्तर का पश्चिमीकरण उन लोगों में हुआ, जो अंग्रेजों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आये माध्यमिक स्तर का पश्चिमीकरण उन लोगों में हुआ, जो प्रत्यक्ष लाभ उठाने वाले लोगों के सम्पर्क में आये और तृतीयक स्तर का पश्चिमीकरण इस प्रक्रिया का दूर से लाभ उठाने वाले लोगों का हुआ। श्रीनिवास का मानना है कि कुछ हद तक पश्चिमीकरण से संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में तेजी आती है। उदाहरण के लिए भारत में पश्चिमीकरण की देन कही जाने वाली डाक, रेल और बस सुविधाओं तथा समाचार पत्रों के माध्यम से अब पहले के मुकाबले अधिक संगठित धार्मिक तीर्थयात्राएं बैठकें आदि आयोजित की जा सकती हैं तथा जातीय प्रतिबद्धताओं का निर्वाह किया जा सकता है। संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण अवधारणा की सीमाएं इस प्रकार हैं :

1. संस्कृतिकरण से केवल सामाजिक सांस्कृतिक गतिशीलता स्पष्ट होती है और वह भी बड़े सीमित तरीके से। यह निचली जातियों के स्तर पर संसाधनों की उपलब्धता, गतिशीलता और पहुंच पर निर्भर है।
2. पश्चिमीकरण से नया वर्ग भेद पैदा हुआ और पहले से विद्यमान जाति-भेद दूर करने में कोई मदद नहीं मिली।
3. जिन जातियों का संस्कृतिकरण हुआ, उन्हें प्रभुत्व सम्पन्न जातियों की चुनौती का सामना करना पड़ सकता है। इसके फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली में नए दबाव पैदा हो सकते हैं।
4. श्रीनिवास का विचार है कि संस्कृतिकरण की प्रकिया के फलस्वरूप स्थितिगत परिवर्तन होते हैं। लेकिन ये स्थितिगत परिवर्तन केवल जाति प्रणाली के भीतर होते हैं, न कि समूची व्यवस्था में जाति स्वयं नहीं बदलती परिवर्तन जाति के भीतर होता है। समस्त परिवर्तन, वास्तव में स्थितिगत परिवर्तन है, इनसे सामाजिक गतिशीलता के चैनलों (माध्यमों) का इस्तेमाल करने में थोड़ा सुधार हो सकता है।
5. श्रीनिवास इन दो अवधारणाओं का इस तरह विश्लेषण करते हैं, जैसे इनके माध्यम से समग्र सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता हो किन्तु, कृषि, उद्योग, राजनीति के क्षेत्रों में मूलभूत ढाँचागत परिवर्तनों, अमीर और गरीब, भूस्वामी और किरायेदार तथा प्रभुत्व सम्पन्न और कमजोर वर्ग के बीच बदलते संबंधों को श्रीनिवास के सांस्कृतिकगत परिदृश्य के दायरे में शामिल नहीं किया जा सकता।

दूबे के अनुसार, 'इनमें से सभी परम्पराओं का अध्ययन ग्रामीण और शहरी संदर्भों में किया जाना चाहिए। परिवर्तन का मूल्यांकन किया जा सके भारतीय समाज के जटिल स्वरूप को शामिल करने की दृष्टि से इस दृष्टिकोण को व्यापक क्षेत्र माना जाता है।' योगेन्द्र सिंह का कहना है कि यह वर्गीकरण भी तदर्थ है ठीक उसी तरह जैसे संस्कृतिकरण की अवधारण तदर्थ है। यह स्वत: शोध प्रणाली है दूबे ढाँचे की बजाय संस्कृति पर अधिक बल देते हैं।

ढांचागत दृष्टिकोण – ढांचागत संरचनागत विश्लेषण सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए आकस्मिक भिन्नताओं की पहचान करते हैं इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक दृष्टिकोण की बजाय सामाजिक संबंध सूत्रता के नेटवर्क पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। यह संबंध सूत्रता रीति रिवाजों, मूल्यों वैचारिक अवधारणाओ उसके एकीकरण और परिवर्तन पर निर्भर है। अध्ययन की इकाई विचार मानदण्ड और मूल्य नही बल्कि भूमिकाएं और निर्भरता है इस प्रकार लोगों के समूह, वर्ग, जाति, गोत्रता, वर्ग, व्यावसायिक समूह, फेक्ट्री और प्रशासनिक ढांचे से संरचनागत वास्तविकताओ का गठन होता है। जो सामाजिक अन्तर सम्पर्क के विशिष्ठ क्षेत्रों के साथ समझौता करती है ये वास्तविकताएं और मनुष्य की अनिवार्य स्थितियों से उभरती है और इनकी तुलना अंतरसांस्कृतिक और प्रति सांस्कृतिक आधार पर की जाती है।

संज्ञानात्मक ऐतिहासिक / वैचारिक दृष्टिकोण – इस दृष्टिकोण का समर्थन लुई डूमोट ने किया। उन्होंने परम्परागत वैचारिक ढांचे में अनुकूली और रूपान्तरकारी प्रक्रियाओं के संदर्भ में परवर्तन पर बल दिया। सामाजिक ढांचों में पतिवर्तन लाने के लिए सांस्कृतिक या वैचारिक बदलाव पूर्व शर्त है। डूमोट भारतीय समाज पर संबंध सूत्रता की प्रणाली के संदर्भ में नहीं बल्कि विचार या मूल्य प्रणाली अथवा संज्ञानात्मक संरचनाओं के संदर्भ में विचार करते है। उनके अनुसार इस बात पर ध्यान देने की आवश्कता है कि पश्चिमी संस्कृति के उद्धाटित होने पर भारतीय मस्तिष्क पर क्या प्रतिक्रियाएं होती है और किस प्रकार पश्चिमी संस्कृति के संज्ञानात्मक तत्वो जैसे स्वतंत्रता लोकतंत्र के प्रभाव से भारतीय परम्परा की संज्ञानात्मकता उन्हें स्वीकार करती है या अस्वीकार करती है। भारतीय और पश्चिमी संज्ञानात्मक प्रणालियों में जो विषमता है। वह भारतीय संस्कृति के समष्टिगत स्वरूप और पश्चिमी संस्कृति के वादी स्वरूप में निहित है। यह विषमता भारत में परम्परा और आधुनिकता के बीच तनाव की समस्या को भी जन्म देती है।

गुन्नर मिर्डिल का संस्थागत दृष्टिकोण – गुन्नर मिर्डिल आर्थिक विकास में रुकावट के रूप में गैर–आर्थिक घटकों की भूमिका पर प्रकाश डालते है। आर्थिक विकास को वांछित दिशा प्रदान करने के लिए जीवन है।

कार्य संस्थानों के प्रति दृष्टिकोण में अवश्य परिवर्तन आना चाहिए। द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक दृष्टिकोण इस दृष्टिकोण के प्रमुख सूत्रधार कार्ल मार्क्स है। मार्क्स की योजना में सामाजिक परिवर्तन के चार चरण है:
(क) एशियाटिक, (ख) प्राचीन, (ग) सामन्तवादी और (घ) उत्पादन

आधुनिक बुर्जुवावादी साधन मार्क्सवादी दृष्टिकोण के साथ भारत में सामाजिक परिवर्तन संबंधी अध्ययन के अंतर्गत जाति और राजनीति, उत्पादन के तरीकों, वर्ग संबंध और संसाधनों तथा अवसरों के विवरण तक पहुंच का विश्लेषण किया जाता है।

समन्वित दृष्टिकोण – योगेन्द्र सिंह ने भारत में सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण करने के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण का सुझाव दिया है। वे परिवर्तन के स्रोतो सांस्कृतिक ढांचे छोटी और बड़ी परम्पराओं और सामाजिक ढांचे (सूक्ष्म और बृहद ढांचे) पर बल देते है। विजातीय या बाहरी परिवर्तनों के संदर्भ में सांस्कृतिक संरचना के स्तर पर इस्लामीकरण और प्राथमिक पश्चिमीकरण (छोटी परम्परा) तथा गौण इस्लामी प्रभाव और गौण पश्चिमीकरण या आधुनिकीकरण (महान परम्परा) का अध्ययन किया गया है। सामाजिक संरचना के स्तर पर भूमिका भिन्नताओं सूक्ष्म स्तर पर नई तर्कसंगतता और बृहत् स्तर पर राजनीतिक नवीनताओ अभिजात्य नौकरशाही उद्योग आदि के नये ढांचे का अध्ययन किया जाता है।

सांस्कृतिक ढाँचे के स्तर पर नियत विकास संबंधी परिवर्तनों के संदर्भ मैं संस्कृतिकरण अथवा परम्पराकरण (छोटी परम्परा) और सांस्कृतिक पुनर्जागरण (महान परम्परा) होता है। सामाजिक संरचना के स्तर पर पद्धति पुनरावृत्ति, मजबूरन आप्रवासन अथवा सूक्ष्म स्तर पर आबादी स्थानान्तरण और आभिजात्य प्रसार का अध्ययन शामिल है। बृहत् स्तर पर राजाओं के राज्यारोहण का अनुक्रम, शहरों और व्यापार केन्द्रों के उदय और पतन का अध्ययन ही शामिल है। योगेन्द्र सिंह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक प्रणाली अथवा परम्परा के भीतर और बाहर किसी प्रकार सामाजिक परिवर्तन घटित होते हैं। उनके समन्वित दृष्टिकोण के अंतर्गत परिवर्तन के स्रोतों सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं के बीच तथा वास्तविक सामाजिक परिवर्तन के सूक्ष्म और बृहत् स्तरों के बीच संतुलन कायम करने का प्रयास किया जाता है।

निष्कर्ष – भारत में सामाजिक परम्पराओ मे परिवर्तन का अध्ययन करने अनेक समाजशास्त्रियो द्वारा किया गया हैं। जिनमे एम.एन.श्रीनिवास, योगेन्द्र सिंह, मैकियम मैरिट, इरावती कर्वे, जी.एस.घूर्ये, आर.के.मुखर्जी इत्यादि प्रमुख हैं। अधिकतर विद्वानों के दृष्टिकोणों में सांस्कृतिक पहलुओं पर जरूरत से अधिक बल दिया गया है और ढांचागत पहलू छूट गए हैं। फिर भी उपरोक्त दृष्टिकोण अत्यधिक विविधता वाले समाज में सामाजिक परम्पराओ मे परिवर्तन की जटिल अवधारणा का समुचित विश्लेषण करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. योगेन्द्र, सिंह, 'मोडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन' पृ. सं. 11–15
2. मजूमदार, डी.एन. 'कास्ट एण्ड कम्यूनिकेशन इन एन इंडिया विलेज' पृ.सं. 335–338
3. आहूजा, राम, 'इंडियन सोशल सिस्टम' रावत प्रकाशन जयपुर 1995 पृ.सं. 207–209
4. बी.कृपास्वामी, 'सोशल चेंज इन इंडिया' पृ.सं. 64
5. श्रीनिवास,एम.एन. 'रिलीजन एण्ड सोसाइटी एमोंग दा कूर्गस ऑफ साउथ इंडिया' 1952 पृ.सं. 28–32

****

Problems in Adoption of Improved Agro-Techniques of Mustard Crop by the Farmers of Pisagan Panchayat Samiti Block in Ajmer District

Dr. Govind Prakash Acharya*

Introduction - Mustard plays a significant role in the national economy by occupying the second largest position in area and production next to groundnut. China is the largest producer of rape and mustard and together with India and Pakistan. At present rapeseed and mustard are being grown in an area of 5.72 million ha with a production of 5.15 million tonnes in India. The present supply of edible oil provides only 13.5 gm per day per capita against the minimum requirement of 18 gm per day and per capita basis. Rajasthan state continues to be the highest rape/ mustard producer with the estimated output of 19.7 lakh tonnes against 17 lakh tonnes during 1992-93 followed by Uttar Pradesh state 10 lakh tonnes against 8.5 lakh tonnes. Major diseases of this crop are *alteraria blight, white rust downy mildew and powdery mildew*. In recent years, however, these diseases have become major disease of crucifer crops.

Rapeseed mustard group of crops are attacked by several insects pests i.e. aphid, leaf miners, painted bug, hairy caterpillar and sawfly. They are important pests limiting the production of basic crops in the state. Knowledge is one of the important components of behaviour, one knowledge is acquired it leads to adoption of technology.

Methodology: The present investigation was undertaken in Pisagan panchayat samiti area in Ajmer district of Rajasthan state. Among all the villages of selected Pisagan panchayat samiti 10 villages were selected randomly and 12 respondents were selected from each village. Thus 120 identified respondents were selected for investigation. Constraints faced by the farmers were measured with the help of three point rating scale. The constraintwise total score were worked out and mean score computed. Finally, rank positions were assigned accordingly.

Results And Discussion: Constraints refer to difficulties faced by the farmers in adoption of recommended mustard technology. The data presented in Table-1 reveal that inadequate availability of improved seed (MS = 2.45), lack of knowledge about plant protection measures (MS = 2.26) and high cost of fertilizers (2.01) were the major constraints realised by the farmers and were ranked 1, 2 & 3. Inadequate knowledge regarding different aspects of mustard cultivation viz. improved seed, chemical control of weed and fertilizers was another obstacle in adoption of Mustard cultivation technology.

Table-1: The constraints faced by farmers in adoption of improved Mustard Crop cultivation practices (Arranged in the descending order):

S.	Particular	Mean Score	Rank
1	Inadequate availability of improved seed	2.25	1
2.	Lack of knowledge about plant protection	2.16	2
3.	High cost of fertilizers	2.01	3
4.	Lack of knowledge about improved seed	1.97	4
5.	Lack of knowledge about chemical control of weeds	1.87	5
6.	High cost investment for plant protection	1.86	6
7.	Lack of knowledge about fertilizers	1.80	7
8.	Lack of irrigation facility	1.56	8
9.	High cost involved for chemical control of weed	1.50	9

Conclusion And Implications: It can be concluded that among all the constraints, inadequate availability of improved seed, lack of knowledge about improved seed and plant protection measures and high cost of fertilizers were major constraints in adoption of improved mustard cultivation practices. In order to overcome these constraints it could be suggested that there should be provision for availability of improved seed directly from research stations of SAUS or some Govt. agencies. Similarly emphasis should be given on organisation of training programme regarding mustard cultivation.

References:-

1. Girase, K.A. and Kamble, L.P. (1991). "Constraints in adoption of fertilizers and plan protection measures in

*Lecturer (Agricultural-Extension) Govt. College, Uniara, Distt. Tonk (Raj.) INDIA

dryland bajra cultivation”. Maha. Jr. of Extn. Edu. X (1) : 41-44.

2. Singh, D., Singh, R.K. and Chaturvedi, J. (1998). “Adoption of improved groundnut production technology in Rae Bareli. Agriculture Extension Review, X (1): 28-30.
3. Chaturvedi, D. (1970) “A Study on knowledge and Adoption of Improved practices of caulifower among farmers of Udaipur district. M.Sc.(Ag) Thesis, RAU, Bikaner.
4. Phadtare, V. R., Chapirikar, B.P. and Patil, R.Y.(1992) “Constraints face by the farmers in Adoption of drip irrigation system. Maha. J.Extn. Edu Vol. XI, 344-347
5. Khurana, G. S. and Sharma, D.D. (1995) “Constraints in Mushroom Cultivation” Maha. Jour. of Extn. Edu. Vol. XIV : 189-192.

✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲